श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी ग्रन्थमाल

प्रकाशन–पांचवां

श्रीमद् राजचन्द्र

जीवन-साधना

मुकुलभाई कलार्थी

अनुवादक
पं. गुणभद्रजी जैन
कविरत्न

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वन्दन अगणित।

—श्रीमद् राजचन्द्र

देह रहते हुअे भी जिसकी आन्तरिक दशा देहरहित है,
अुस ज्ञानी पुरुषके चरणोंमें अगणित वन्दन हो।

श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी ग्रन्थमाला

प्रकाशन-पांचवां

श्रीमद् राजचन्द्र

जीवन-साधना

मुकुलभाई कलार्थी

अनुवादक
पं. गुणभद्रजी जैन
कविरत्न

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वन्दन अगणित।

—श्रीमद् राजच

देह रहते हुअे भी जिसकी आन्तरिक दशा देहरहित है,
अुस ज्ञानी पुरुषके चरणोंमें अगणित वन्दन हो।

प्रकाशक :
त्रिकमलाल महासुखराम शाह
प्रमुख–श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडल,
श्री राजचन्द्र पाठशाला, पंचभाईकी पोळ,
अहमदाबाद–१

आत्मशान्ति जिस जीवनका ध्रुव काँटा है
वह जीवन चाहे तो अेकाकी और
निर्धन, निर्वस्त्र हो तो भी
परम समाधिका स्थान है।

लोकसंज्ञा जिसके जीवनका ध्रुव काँटा है,
वह जीवन चाहे जैसी श्रीमन्तता, सत्ता या
कुटुम्ब परिवार आदि योगवाला हो तो भी
वह दुःखका ही हेतु है।

श्रीमद् राजचन्द्र

मूल्य : रु. १–२५

मुद्रक :
मोहन परीख
सुरुचि छापशाला
बारडोली–२

सं. २०२३
प्रत : ५,०००
प्रथम आवृत्ति

श्रीमद् राजचंद्र

वर्ष २४ वाँ

वि. सं. १९४७

'सत्'

महात्माओंने किसी भी नामसे
और किसी भी आकारसे
अेक 'सत्'को ही प्रकाशित किया है।
वही जानने योग्य है,
वही विश्वास योग्य है,
वही अनुभवरूप है, और
वही परमप्रेमपूर्वक सेवन करने योग्य है।
हम अुस 'परमसत्'की ही अनन्य प्रेमसे
भक्ति चाहते हैं।

अुस 'परमसत्'को
परमज्ञान कहो, चाहे तो परमप्रेम कहो,
और चाहे तो 'सत्–चित्–आनन्द स्वरूप' कहो,
चाहे तो आत्मा कहो, चाहे तो सर्वात्मा कहो,
चाहे तो अेक कहो, चाहे तो अनेक कहो,
चाहे तो अेकरूप कहो, चाहे तो सर्वरूप कहो,
परन्तु जो 'सत्' है वह 'सत्' ही है, और
वही सब प्रकारसे कथन योग्य है—
कहा जाता है। सर्व यह ही है, अन्य नहीं है।
अैसा वह परमतत्त्व, पुरुषोत्तम, हरि, सिद्ध, ईश्वर, निरंजन,
अलक्ष्य, परमब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर और भगवत् आदि
अनन्त नामोंसे कहा गया है।
हम जिस समय परमतत्त्वको कहनेकी इच्छा करके
किसी भी वैसे शब्दका प्रयोग करते हैं तो
यही है, दूसरा नहीं।

—श्रीमद् राजचन्द्र

जीवन दृष्टि

अेक पर राग और अेक पर द्वेष,
अैसी स्थिति अेक रोममें भी असे प्रिय नहीं है।
अधिक क्या कहें?
परके परमार्थ सिवायकी यह देह भी अच्छी नहीं लगती तो?

*

आत्मेच्छा अैसी रहती है कि
संसारमें प्रारब्धानुसार कैसा भी
शुभाशुभ अुदय आये,
परन्तु अुसमें प्रीति अप्रीति करनेका
हमें संकल्प भी नहीं करना चाहिअे।

*

जिसे अपना या पराया कुछ भी नहीं है,
अैसी दशाकी प्राप्ति अब समीपमें ही है।
(इसी देहसे है) और अुस कारणसे
परेच्छासे प्रवृत्ति करते हैं।

*

पूर्वकालमें जिस-जिस विद्या, बोध, ज्ञान
और क्रियाकी प्राप्ति हो चुकी है,
अुन सबका इसी देहसे विस्मरण करके
निर्विकल्प हुअे विना छुटकारा नहीं है;
और अुस कारणसे ही अैसा आचरण करते हैं।

—श्रीमद् राजचन्द्र—

जीवन निर्धार

आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, यह तो निःसंशय है।
ग्रन्थीभेद हुआ यह तीनों कालमें सत्य बात है।
सभी ज्ञानियोंने भी इस वातको स्वीकार किया है।

*

देहके रहते हुअे भी मनुष्य सम्पूर्ण वीतराग हो सकता है,
अैसा हमारा निश्चल अनुभव है;
क्योंकि हम भी निश्चय
अुस ही स्थितिको प्राप्त होनेवाले हैं।
इस प्रकार हमारा आत्मा अखंडरूपसे कहता है।
और अैसा ही है, अवश्य अैसा ही है।
पूर्ण वीतरागकी चरणरज निरन्तर मस्तक पर हो,
अैसा रहा करता है।
अत्यन्त विकट वीतरागत्व अत्यन्त आश्चर्यकारक है;
फिर भी अुस स्थितिकी प्राप्ति होती है,
सदेह प्राप्ति होती है, यह निश्चय है।
प्राप्त करनेके लिअे पूर्ण योग्य है,
अैसा निश्चय है।
सदेह वैसा हुअे विना हमारी
अुदासीनता दूर हो अैसा नहीं मालूम देता,
और वैसा होना संभवित है, अवश्य अैसा ही है।

*

इस जगत्‌के प्रति हमारा परम अुदासीनभाव है,
यदि वह अेकदम सुवर्णमय वन जाय तो भी हमें तृणतुल्य है;
और परमात्माकी विभूतिरूपमें हमारा भक्तिधाम है।

श्रीमद् राजचन्द्र

श्रीमद्की समदृष्टि

जैसी दृष्टि इस आत्माके प्रति है,
वैसी दृष्टि जगत्के सर्व आत्माओंके प्रति है।

जैसा स्नेह इस आत्माके प्रति है,
वैसा स्नेह सर्व आत्माओंके प्रति रहता है।

इस आत्माकी जैसी हम सहजानन्द स्थिति चाहते हैं,
वैसी ही स्थिति सर्व आत्माओंके प्रति चाहते हैं।

जो जो इस आत्माके लिअे चाहते हैं,
वह सभी आत्माओंके लिअे चाहते हैं।

जैसा भाव इस देहके प्रति रहता है,
वैसा ही सर्व देहोंके प्रति रहता है।

जैसा सर्व देहोंके प्रति आचरणका भाव रहता है,
वैसा ही इस देहके प्रति आचरणका प्रकार रहता है।

इस देहमें अधिक बुद्धि (भाव)
और अन्य देहोंके प्रति विषम बुद्धि
प्रायः कभी भी नहीं हो सकती।
मात्र आत्मस्वरूप कार्यमें प्रवृत्ति होनेके कारण,
जगत्के समस्त पदार्थोंके प्रति जैसी अुदासीनता है
वैसी ही अपने माने गये स्त्रीआदि पदार्थोंके प्रति है।

*

सर्वात्ममें समदृष्टि दीजिये, इस वचनको हृदयमें लिखो।

श्रीमद् राजचन्द्र

ॐ

આત્મસિદ્ધિ.

જે સ્વરૂપ સમજ્યા વિના, પામ્યો દુઃખ અનંત,
સમજાવ્યું તે પદ નમું - શ્રી સદ્ગુરુ ભગવંત. ૧

વર્તમાન આ કાળમાં, મોક્ષમાર્ગ બહુ લોપ,
વિચારવા આત્માર્થીને, ભાખ્યો અત્ર અગોપ્ય. ૨

કોઈ ક્રિયાજડ થઈ રહ્યા, શુષ્કજ્ઞાનમાં કોઈ,
માને મારગ મોક્ષનો, કરુણા ઊપજે જોઈ. ૩

બાહ્ય ક્રિયામાં રાચતા, અંતર ભેદ ન કાંઈ,
જ્ઞાનમાર્ગ નિષેધતા, તેહ ક્રિયાજડ આંઈ. ૪

બંધ મોક્ષ છે કલ્પના, ભાખે વાણી માંહિ,
વર્તે મોહાવેશમાં, શુષ્કજ્ઞાની તે આંહિ. ૫

વૈરાગ્યાદિ સફળ તો, જો સહ આતમજ્ઞાન,
તેમ જ આતમજ્ઞાનની, પ્રાપ્તિતણાં નિદાન. ૬

ત્યાગ વિરાગ ન ચિત્તમાં, થાય ન તેને જ્ઞાન,
અટકે ત્યાગ વિરાગમાં, તો ભૂલે નિજભાન. ૭

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मंडल

समीपवर्ती सहजज्ञान, वैराग्यमूर्ति श्रीमद् राजचन्द्रकी जन्म-शताब्दी सं. २०२४ कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन आ रही है। इसको लक्ष्यमें रखकर इस पवित्र पुरुषके अुपकारकी लेशमात्र पुनीत स्मृतिके लिअे इस 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मंडल'की स्थापना हुई है।

श्रीमद् राजचन्द्रका विश्व-अुपकारी परम करुणामय साहित्य, इनके जीवनके प्रसंग इत्यादि भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्रकाशित कर, विशाल जनसमुदायको अुसका लाभ मिल सके इस प्रकारसे प्रचार करनेका अुद्देश है।

मंडलको ट्रस्ट अेक्ट अनुसार रजिस्टर किया गया है।

नियमपूर्वक व्यवस्थाके लिअे अेक ग्यारह सभ्योंकी व्यवस्थापक समिति और प्रकाशनके कार्यके लिअे पाँच सभ्योंकी अेक प्रकाशन समिति वर्तमानमें काम कर रही है।

अुद्देश्यको ध्यानमें रखकर प्रारम्भित प्रकाशन कार्यका 'राजपद' यह प्रथम प्रकाशन है। 'कर विचार तो पाम' यह दूसरा प्रकाशन है। 'जीवन-साधना' तीसरा प्रकाशन है। 'राजपद' (नागरी लिपिमें) चौथा प्रकाशन है और यह 'जीवन साधना' (हिंदी) पांचवां प्रकाशन है। अन्य प्रकाशनोंका कार्य चालू है।

विशेष आनन्द तो यह है कि श्रीमद्के प्रति भक्तिभाववाला विशाल जनसमुदाय और श्रीमद्की स्मृतिरूप स्थापित अनेक संस्थायें इस कार्यमें अच्छे अुल्लाससे प्रेमपूर्वक सहयोग दे रही हैं और यही इस मंडलकी अुपयोगिता है।

श्रीमद्के प्रति भक्तिभाव रखनेवाले सभीसे इस कार्यमें सहयोग देनेकी नम्र प्रार्थना है।

ता. १०-१२-६६

श्रीमद् राजचन्द्र पाठशाला,
पंचभाईकी पोळ,
अहमदाबाद-१.

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मंडल
कारोबारी समितिकी ओरसे
त्रिकमलाल महासुखराम शाह, प्रमुख.

प्राक्कथन

लोकोत्तरकी जीवनचर्या

लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।

श्रीमद् राजचन्द्र जैसे पुरुषविशेषकी चरित-कथा लिखना दुष्कर है। हमारी इन्द्रियदर्शनावलम्बी बुद्धि ख्याल कर सके, समझ सके और अंगीकार कर सके अैसी महत्ता — विशेषता इनके जीवनमें रही हुई है; जैसे कि इनकी असाधारण स्मृति, अल्पवयमें प्रज्ञाकी परिपक्वता, व्यवहार-नीतिका आग्रह, कार्यकुशलता, शास्त्र-निपुणता, गुजराती गद्यमें मौलिक प्रभुत्व, सदाचारनिष्ठा, सत्य-शोधकता, वैराग्य, आत्माके मनन, श्रवण और निदिध्यासन, अुसके लिअे निवृत्तिकी अुत्सुकता, निर्भयता इत्यादि। इन सभी गुणोंको प्रगट करनेवाले प्रसंग, घटनायें, समागमोंका भी प्रामाणिक वर्णन करना सुगम नहीं, परन्तु शक्य तो है ही।

परन्तु श्रीमद्के इन सब आविर्भावोंके सिवाय दूसरे कितने ही आविर्भावोंको — जिन्हें अपेक्षासे बाह्य कहा जाता है, अैसे आविर्भावोंकी मूलशक्ति जैसे हैं और जिनका वर्णन अुनके स्वयंके शब्दोंमें हुआ है —समझना दुष्कर, अत्यन्त दुष्कर है। अुनको माननेका प्रश्न तो अुनको समझनेके बाद ही आये अथवा जब वह बुद्धितर्कको शान्त करके अेक मात्र श्रद्धाका विषय बने। अुदाहरणके तौर पर

'पुनर्जन्म है, जरूर है। इसके लिअे "मैं" अनुभवसे हाँ कहनेमें अचल हूँ।' यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समयका सिद्ध हुआ लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादिभाव किये हैं, अुस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर वह वाक्य लिखा गया[1] है।' श्रीमद्के इस अनुभवको किस प्रकारसे समझना? मनोविज्ञानके ढांचेमें यह कैसे बैठे? अथवा

[2]धन्य रे दिवस आ अहो, जागी रे शान्ति अपूर्व रे;
दस वर्षे रे धारा अुलसी, मटचो अुदय कर्मनो गर्व रे।
ओगणीसेंने एकत्रीसे, आव्यो अपूर्व अनुसार रे,
ओगणीसेंने बेंतालिसे, अद्भुत वैराग्य धार रे,
ओगणीसेंने सुडतालिसे, समकित शुद्ध प्रकाश्युं रे,
श्रुत अनुभव वधती दशा, निज स्वरूप अवभास्युं रे।

* * *

आवी अपूर्व वृत्ति अहो, थशे अप्रमत्त योग रे,
केवल लगभग भूमिका, स्पर्शीने देह वियोग रे।

इसमें 'दश वर्षे रे धारा उलसी' अर्थात् दस वर्षमें धारा प्रगट हुई इसका क्या अर्थ और यह कौन-सी मनोवस्तुको सूचित करती है? 'अपूर्व अनुसार'—अपूर्व अनुसार आया अर्थात् क्या आया? हम लोग वैराग्यको तो समझते हैं, परन्तु अद्भुतका क्या अर्थ? — शुद्ध सम्यक्त्व प्रकाशित हुआ अर्थात् क्या हुआ? जड़ और चेतन ये दोनों भिन्न हैं ऐसी श्रद्धा या मान्यता सम्यक्त्व या समकित है, परन्तु प्रकाशित हुआ, इससे विचार सिवाय दूसरा क्या हुआ? 'निजस्वरूप अवभास्युं' इससे मनुष्यको 'अहं'का वेदन होता है, इसके सिवाय दूसरा क्या अवभासित हुआ? 'केवल लगभग भूमिका'के स्पर्शसे किसका स्पर्श करता है?

१ श्रीमद् राजचन्द्र सं. २००७की आवृत्ति, पत्र ४२४
२ अेजन. पत्र ९६०-१ (३२)

संवत् १९५३में २९ वर्षकी उमरमें यह बात श्रीमद्ने अपने लिअे लिखी है, अुसमें अुस अुन घटनाका वर्षके अनुसार कथन किया है। अैसे अनेक विषय, जिनका जीवनचरितमें घटनाओंके रूपमें कथन हो, अुसकी बुद्धिग्राह्य कथा कैसे लिखी जाय? इस विज्ञानके युगमें अभी तक अैसी बावतोंका अन्वेषण नहीं हुआ है। हम जो कुछ जानते हैं अुसे या तो श्रद्धाके रूपमें कहा जाता है या वहमके रूपमें कहा जाता है या कविकी कल्पनाके रूपमें अुसका आस्वाद लेते हैं। यही नहीं अमुक वर्षमें श्रीमद्ने जवाहिरातका व्यापार प्रारम्भ किया यह घटना जिस सरलतासे समझमें आवे अुसी प्रकारसे श्रीमद्को अमुक सालमें 'धारा प्रगटी' या 'अपूर्ववृत्ति आई' या 'पूर्वभवके योगका स्मरण हुआ' क्या इन घटनाओंको सरलतासे समझ सकते हैं?

श्रीमद्का हृदय अुनके व्यवहारजीवनसे और अुनके दार्शनिक सूक्ष्मतापूर्ण लेखोंसे जो समझमें आता है उस परसे कह सकते हैं कि वे अैसे व्यक्ति नहीं थे कि कल्पनामें आकर, या किसी प्रकारकी भ्रमणासे प्रेरित होकर अथवा अपनी महिमा वतानेकी वृत्तिसे, ऐसा माननेके लिअे या लिखनेके लिअे प्रेरित हुअे हों। इनके गाढ़ परिचयमें आये हुअे गाँधीजीका इस सम्बन्धमें बहुत स्पष्ट अभिप्राय है: 'अुनके लेखोंकी अेक असाधारणता यह है कि स्वयं अुन्होंने जिसका अनुभव किया है, वही लिखा है। अुसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरे पर प्रभाव डालनेके लिअे अेक पंक्ति भी लिखी हो अैसा मैंने नहीं देखा।'[1]

अर्थात् इनके मनकी पद्धत्ति बुद्धिप्रधान तार्किक की है, अपने मनका सूक्ष्मतासे निरीक्षण कर सकें इस प्रकारका यह चित्त है। जिस समय स्वयंको 'हरिरस'की तत्परता हुई है और ऐसी 'मस्ती' आई है अुस समय भी ये अपनी वृत्तियोंके निरीक्षक दिखाई देते हैं। अर्थात् अेक ओरसे लिखनेवाला स्वस्थ बुद्धिका अनाडंबरी सूक्ष्म

१ 'श्रीमद् राजचन्द्र अने गांधीजी' पृ. ४६

निरीक्षक हैं और दूसरी ओरसे इनकी नोंधें और लेख अैसी मनोदशा —मानसवस्तु—मानसघटनाको अुपस्थित करते हैं जो विज्ञानगम्य नहीं है, इन्द्रियज्ञानावलम्बनवाली बुद्धिको गम्य नहीं है।

इस कारणसे श्रीमद् जैसे पुरुषविशेषकी जीवनकथामेंसे यदि अैसा समस्त भाग छोड़ दिया जाय, तो भी इसके छोड़ देने पर भी इसमें सदाचारनिष्ठ बहुत कुछ निरूपण किया जा सकता है।

और यहीं जीवनचरित लिखनेमें बड़ी अुलझन आती है। जो अनुभव चरितनायकके जीवनके आधारभूत बने दिखाई देते हैं, यदि अुनको छोड़ दें या गौण कर दें तो अुनका जीवन कैसे लिखा जा सकता है? अैसे गूढ़स्तरके अनुभवकी बात न हो वहाँ भी चरितनायककी यदि प्रेरणारूप श्रद्धा हो, अुसको ध्यानमें रखे बिना किस तरहसे यथायोग्य समझ सकते हैं? अुदाहरणार्थ महात्मा गांधीकी ईश्वर प्रति श्रद्धा—

'I am surer of His existence than of the fact that you and I are sitting in this room. Then I can testify that I may live without air and water but not without Him.'[1]

इनकी अैसी और दूसरी लोकोत्तर श्रद्धा और प्रेरणाके बिना गांधीजीके आचार-विचारोंको समझनेका और अुनके पालन करनेका प्रयत्न कितनी विषम स्थिति — हास्यकी और दुःखकी — अुत्पन्न करता है यह हम आज देखते हैं। यो यच्छ्रद्धः स अेव सः (भ. गी. १७–३) जो जैसी श्रद्धा रखता है वह वैसा होता है।

परन्तु श्रीमद् या रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि या श्री अरविन्द जैसोंके आन्तरविश्व faith-श्रद्धासे भी किसी अन्य प्रकारके दिखाई देते हैं। इनके आन्तरविश्वोंमें इस श्रद्धाके पदार्थोंके 'अनुभव', 'दर्शन' या 'समापत्ति' होते हैं, इस कारणसे अैसे

1 My Religion p. 43

पुरुषोंके जीवनचरित 'अनुभव घटनाओं'के कथनके बिना निष्प्राण हो जाते हैं।

तो दूसरी ओर चमत्कारकी लोलुपता हो जानेका, वहमके कुहरेमें भटकनेका, बुद्धिग्राह्यको भी अतीन्द्रिय कोटिमें रख देनेका भय होता है।

जीवनचरितके लेखकके लिअे इन दोनों कोटिओंमेंसे बचनेका मार्ग, तटस्थभावसे अैतिह्य प्रमाणोंकी बराबर छान-बीनकरके, जो लौकिक या लोकोत्तर भाव-अर्थ-घटनायें अुत्पन्न हों अुनका निरूपण करना है। लेखकके स्वयंके अनुभवमें न हो, अथवा उसके ज्ञानको संभवित न लगता हो, यदि अैसे विषय भी अैतिह्य प्रमाणसे सिद्ध होते हों तो अुनका त्याग नहीं किया जा सकता अैसा आधुनिक अैतिह्य परीक्षकोंका भी मत है।[1]

श्रीमद्जीका अैसे संशोधनपूर्वक अुत्पन्न हुआ जीवनचरित लिखाना अभी बाकी है। अैसा चरित लिखनेसे पूर्व क्या करना चाहिअे यह गांधीजीने सूचित किया है। 'यदि जीवनचरित लिखना हो, तो मैं अुनकी जन्मभूमि ववाणिया बन्दरगाहमें कितना ही समय व्यतीत करूं, अुनके रहनेके मकानको देखूं, अुनके खेलने और घूमनेके स्थानोंको देखूं. अुनके बालमित्रोंसे मिलूं, अुनकी पाठशालामें जाकर आअूं, अुनके मित्र, अनुयायी और सगेसम्बन्धियोंसे मिलूं. अुनसे जानने योग्य बातोंको जान लूं, अुसके बाद ही लिखना प्रारम्भ करूं।[2]

आधुनिक युग अैसे संशोधनोंको आवश्यक मानता है। इसके

1 F. H. Bradley-The Presuppositions of Critical History (pp. 63 Collected Essays vol. 1) અને G. J. Garraghan S. J. A Guide to Historical Method pp. 298-303

२ 'श्रीमद् राजचन्द्र अने गांधीजी' पृ. ४१

सिवाय श्रीमद्‌जीके स्वयंके लेख, नोंधपत्र, ग्रन्थ इत्यादि साहित्य भी विवेचक दृष्टिसे अवलोकन करना आवश्यक है।

श्री मुकुलभाईने 'श्रीमद् राजचन्द्रकी जीवन साधना'के लिखनेसे पहले ये सभी साधना की है या नहीं, अुसे मैं नहीं जानता। इसके लिअे समय साधन इत्यादि चाहिअे; इससे मैं इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका अवलोकन नहीं कर रहा हूँ। परन्तु इस ग्रन्थके पढ़नेवालेको श्रीमद्‌जीके जीवनका थोड़ा बहुत ख्याल आ सके यह दृष्टि रखी है। इस प्रकारसे देखने पर इस ग्रन्थसे आम तौरसे मुझे सन्तोष हुआ है। श्री मुकुलभाईने श्रीमद्‌जीके लौकिक जीवनके प्रसंग और घटनाओंको सादी, स्वच्छ और मधुर भाषामें लिखा है। इनके आन्तरिक जीवनके प्रसंगोंको भी इन्होंने नहीं छोड़ा है, परन्तु स्वस्थतासे लिखा है। इसके पीछे रहे हुअे वस्तुसत्यका विवेचन करना यह किसी भी लेखककी मर्यादाके बाहरकी बात है, सिवाय कि स्वयं उस लोकोत्तर मार्गका विहारी हो। इससे अैसे किसी शक्ति अुपरान्तके अहापोहमें पड़े बिना श्रीमद्‌जीके लेखोंके आधारसे और अुनके समागममें आये हुअे व्यक्तियोंके कथनके आधारसे श्री मुकुल-भाईने यथायोग्य निरूपण किया है। इनके निरूपणमें चरितनायकके प्रति इनका आदरभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यदि यह न हो तो अैसा श्रम व्यर्थ है। जिनका स्वयंको ज्ञान न हो अैसे प्रसंग, घटना और अनुभवको दूर रखनेकी या छुपानेकी चपलता इन्होंने नहीं की है। श्रीमद्‌जीके लेखोंमेंसे अनुमानित और समागमियोंके कथनसे समर्थित जीवनदर्शन श्री मुकुलभाईने कराया है।

अैसे लोकोत्तर पुरुषके जीवन समक्ष तो भवभूति द्वारा कथित नम्रता ही योग्य है: लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।

ता. २२-४-६५

११ भारती निवास सोसायटी
अेलिसब्रिज, अहमदाबाद-६

रसिकलाल छो. परीख

पुरुषोंके जीवनचरित 'अनुभव घटनाओं'के कथनके बिना निष्प्राण हो जाते है।

तो दूसरी ओर चमत्कारकी लोलुपता हो जानेका, वहमके कुहरेमें भटकनेका, बुद्धिग्राह्यको भी अतीन्द्रिय कोटिमें रख देनेका भय होता है।

जीवनचरितके लेखकके लिअे इन दोनों कोटिओंमेंसे बचनेका मार्ग, तटस्थभावसे अैतिह्य प्रमाणोंकी बराबर छान-बीनकरके, जो लौकिक या लोकोत्तर भाव-अर्थ-घटनायें अुत्पन्न हों अुनका निरूपण करना है। लेखकके स्वयंके अनुभवमें न हो, अथवा उसके ज्ञानको संभवित न लगता हो, यदि अैसे विषय भी अैतिह्य प्रमाणसे सिद्ध होते हों तो अुनका त्याग नहीं किया जा सकता अैसा आधुनिक अैतिह्य परीक्षकोंका भी मत है।[1]

श्रीमद्‌जीका अैसे संशोधनपूर्वक अुत्पन्न हुआ जीवनचरित लिखाना अभी बाकी है। अैसा चरित लिखनेसे पूर्व क्या करना चाहिअे यह गांधीजीने सूचित किया है। 'यदि जीवनचरित लिखना हो, तो मैं अुनकी जन्मभूमि ववाणिया बन्दरगाहमें कितना ही समय व्यतीत करूं, अुनके रहनेके मकानको देखूं, अुनके खेलने और घूमनेके स्थानोंको देखूं, अुनके बालमित्रोंसे मिलूं, अुनकी पाठशालामें जाकर आअूं, अुनके मित्र, अनुयायी और सगेसम्बन्धियोंसे मिलूं, अुनसे जानने योग्य बातोंको जान लूं, अुसके बाद ही लिखना प्रारम्भ करूं।[२]

आधुनिक युग अैसे संशोधनोंको आवश्यक मानता है। इसके

1 F. H. Bradley–The Presuppositions of Critical History (pp. 63 Collected Essays vol. 1) અને G. J. Garraghan S. J. A Guide to Historical Method pp. 298–303

२ 'श्रीमद् राजचन्द्र अने गांधीजी' पृ. ४१

सिवाय श्रीमद्‌जीके स्वयंके लेख, नोंधपत्र, ग्रन्थ इत्यादि साहित्य भी विवेचक दृष्टिसे अवलोकन करना आवश्यक है।

श्री मुकुलभाईने 'श्रीमद् राजचन्द्रकी जीवन साधना' के लिखनेके पहले ये सभी साधना की है या नहीं, अुसे मैं नहीं जानता। इसके लिअे समय साधन इत्यादि चाहिअे; इससे मैं इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका अवलोकन नहीं कर रहा हूँ। परन्तु इस ग्रन्थके पढ़नेवालेको श्रीमद्‌जीके जीवनका थोड़ा बहुत ख्याल आ सके यह दृष्टि रखी है। इस प्रकारसे देखने पर इस ग्रन्थसे आम तौरसे मुझे सन्तोष हुआ है। श्री मुकुलभाईने श्रीमद्‌जीके लौकिक जीवनके प्रसंग और घटनाओंको सादी, स्वच्छ और मधुर भाषामें लिखा है। इनके आन्तरिक जीवनके प्रसंगोंको भी इन्होंने नहीं छोड़ा है, परन्तु स्वस्थतासे लिखा है। इसके पीछे रहे हुअे वस्तुसत्यका विवेचन करना यह किसी भी लेखककी मर्यादाके बाहरकी बात है, सिवाय कि स्वयं उस लोकोत्तर मार्गका विहारी हो। इससे अैसे किसी शक्ति अुपरान्तके अहापोहमें पड़े बिना श्रीमद्‌जीके लेखोंके आधारसे और अुनके समागममें आये हुअे व्यक्तियोंके कथनके आधारसे श्री मुकुल-भाईने यथायोग्य निरूपण किया है। इनके निरूपणमें चरितनायकके प्रति इनका आदरभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यदि यह न हो तो अैसा श्रम व्यर्थ है। जिनका स्वयंको ज्ञान न हो अैसे प्रसंग, घटना और अनुभवको दूर रखनेकी या छुपानेकी चपलता इन्होंने नहीं की है। श्रीमद्‌जीके लेखोंमेंसे अनुमानित और समागमियोंके कथनसे समर्थित जीवनदर्शन श्री मुकुलभाईने कराया है।

अैसे लोकोत्तर पुरुषके जीवन समक्ष तो भवभूति द्वारा कथित नम्रता ही योग्य है: लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।

ता. २२-४-६५

११ भारती निवास सोसायटी
अेलिसब्रिज, अहमदाबाद-६

रसिकलाल छो. परीख

हिन्दी संस्करणके बारेमें :

सत्पुरुषोंके चरित्रोंका स्मरण करना;
सत्पुरुषोंके लक्षणका चिन्तन करना;
अुसके मन, वचन, कायाकी हरअेक चेष्टाके
अद्‌भुत रहस्योंका बारबार निदिध्यास करना।

—**श्रीमद् राजचन्द्र**

जिनके विशुद्ध सान्निध्यके सेवनसे अनादि कालके अनंत दुःखों और क्लेशोंसे मुक्ति दिलानेवाला आत्मज्ञान प्रकट होता है, अैसे परमपुरुष श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनप्रसंग और परिचय देनेवाली मुकुलभाअी कलार्थी द्वारा लिखी गअी 'जीवन-साधना' नामक पुस्तक श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडलकी ओरसे प्रकाशित हुअी है।

हिन्दी-भाषी जनता श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनका परिचय प्राप्त कर सके अिस अुद्देश्यसे गुजराती 'जीवन-साधना'का यह हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया जाता है।

अगास स्टेशनके पास श्रीमद् राजचन्द्रके पुनित संस्मरणरूप अेक सुंदर 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' अुनके अनन्य भक्त श्रीमद् मुनिश्री लघुराज स्वामीकी प्रेरणासे अुपस्थित है। श्रीमद्‌के साहित्यके सम्यक् अनुभवी मुनिश्री लघुराज स्वामीके सान्निध्य और परिचयमें अिस आश्रममें बरसों तक रहकर श्रीमद्‌के साहित्यकी अुपासना करनेवाले पं. गुणभद्रजीने अीस 'जीवन-साधना'का हिन्दीकरण किया है। वे

जैन साहित्यके अच्छे अभ्यासी हैं और अुनकी मातृभाषा भी हिन्दी है। अिस स्वाभाविक सुमेलसे प्रकटित यह हिन्दी 'जीवन-साधना' श्रीमद् राजचन्द्रका यथार्थ परिचय कराकर आत्मकल्याणका कारणरूप बने अैसी आशा रखी है।

श्रीमद्जीने विशुद्ध आत्मानुभवको अपने साहित्यमें सचोट और आन्तरदर्शक शैलीमें गाया है। शैली और भाषा दोनों अैसे गंभीर, प्रौढ़, तलस्पर्शी और भाववाही हैं कि अुन्हें किसी दूसरी भाषामें अुतने ही भाववाही रूपमें अनुवादित करना कोअी सरल बात नहीं है। अिस अनुवादमें भाषा, व्याकरणादिकी शुद्धि रखनेका काफी प्रयत्न किया गया है, और साथ ही श्रीमद्के शब्द और शैलीको भी यथाशक्य ज्यों का त्यों बनाये रखनेकी भी दृष्टि रखी है ताकि श्रीमद्का आंतरभाव समझनेमें सरलता रहे। आशा है, यह पद्धति वाचकवर्गको रुचिकर और हितकर होगी।

अिस हिन्दी संस्करणको शुद्ध करनेमें बडौदा निवासी भाअी कंचनलाल परीखकी जो मदद मिली है वह अुल्लेखनीय है।

अिस त्रस्त जगतके जीवोंको श्रीमद् राजचन्द्रके निम्न लिखित परमकरुणामय अुद्गार परमसुखके पथप्रदर्शक हों यही अभिलाषा—

'संसार-तापसे त्रसित और कर्मबंधनसे मुक्त होनेकी अिच्छावाले परमार्थ-प्रेमी जिज्ञासु जीवोंकी त्रिविध तापाग्निको शान्त करनेके लिअे हम अमृतसागर हैं; मुमुक्षु जीवोंका कल्याण करनेके लिअे हम कल्पवृक्ष ही हैं।'

ता. ९-१-१९६७
दांडिया बजार
बडौदा-१

श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडल
प्रकाशन समितिकी ओरसे
सोभागचन्द चुनीलाल शाह,
प्रमुख

अन्तः उद्‌गार

परम पूज्य श्रीमद् राजचन्द्रजीका जीवनचरित लिखनेका पवित्र सुअवसर 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडल'ने मुझे प्रदान किया है, इसे मैं अपने जीवनका अेक धन्य अवसर ही मानता हूँ। इसके लिअे मैं श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडलका आभार मानता हूँ।

श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनचरितको यथार्थ रूपसे लिखनेके लिअे तो सुयोग्य अधिकारकी आवश्यकता है। सुपात्र अधिकारी ही श्रीमद् राजचन्द्रके आभ्यन्तर जीवनमें प्रवेश करके इसका सुन्दर और श्रेयार्थीको सहायक हो अैसा निरूपण कर सकता है।

इस अधिकार–सुपात्रता सम्बन्धी श्रीमद् राजचन्द्रजीकी व्याख्या भी लक्ष्यमें लेने योग्य है :

'कषायनी उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भवे खेद, प्राणीदया, त्यां आत्मार्थनिवास।

दशा न अेवी ज्यां सुधी, जीव लहे नहीं जोग;
मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अन्तर रोग।

आवे ज्यां अेवी दशा, सद्‌गुरुबोध सुहाय;
ते बोधे सुविचारणा, त्यां प्रगटे सुखदाय।

ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निजज्ञान;
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण।*

कषाय जहाँ शान्त हो गये हैं, जिसे केवल अेक मोक्ष-पदकी ही अभिलाषा है, संसार पर जिसे वैराग्य है, और प्राणीमात्र पर जिसे दया आती है, अैसा जीव आत्मार्थी है।

जब तक जीव अैसी योग-दशाको नहीं पाता, तब तक अुसे मोक्ष-मार्गकी प्राप्ति नहीं होती और आत्म-भ्रान्तिरूप अन्तरंग रोग भी दूर नहीं होता।

जहाँ अैसी दशा प्राप्त होती है, वहाँ सद्‌गुरुका बोध सुशोभित होता है—सफल होता है और अुस बोधके सफल होनेसे सुखदायक सुविचारणा प्रगट होती है।

जहाँ सुविचार-दशा प्रगट हो वहीं आत्मज्ञान अुत्पन्न होता है और अुससे मोहका क्षय होकर जीव निर्वाणको प्राप्त करता है।

इस दृष्टिसे जब मैं अपना विचार करता हूँ तो मुझे नम्रता-पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि मुझमें अैसी सुपात्रता लेश मात्र भी नहीं है।

परन्तु अैसे पवित्र महात्माका जीवनचरित लिखनेके कारण मुझे अुनके जीवन तथा दर्शनका अभ्यास करनेका समय मिले तथा इस प्रकारसे श्रेय-पन्थमें गमन करनेका अल्प भी पाथेय मिले, अैसी विशुद्ध-बुद्धि रखकर 'अल्पविषया मतिः' होते हुअे भी इस पवित्र कार्यको मैंने अपने हाथमें लिया है। श्रेयार्थीको श्रीमद् राजचन्द्रजीकी इस जीवन-साधनाको पढ़कर उनकी उपदेश-समृद्धिका अनुशीलन करनेकी प्रेरणा प्राप्त हो तो मैं अपने इस नम्र प्रयासको सफल मानूंगा।

* 'आत्मसिद्धिशास्त्र'

अन्तः उद्‌गार

परम पूज्य श्रीमद् राजचन्द्रजीका जीवनचरित लिखनेका पवित्र सुअवसर 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडल'ने मुझे प्रदान किया है, इसे मैं अपने जीवनका अेक धन्य अवसर ही मानता हूँ। इसके लिअे मैं श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी मंडलका आभार मानता हूँ।

श्रीमद् राजचन्द्रके जीवनचरितको यथार्थ रूपसे लिखनेके लिअे तो सुयोग्य अधिकारकी आवश्यकता है। सुपात्र अधिकारी ही श्रीमद् राजचन्द्रके आभ्यन्तर जीवनमें प्रवेश करके इसका सुन्दर और श्रेयार्थीको सहायक हो अैसा निरूपण कर सकता है।

इस अधिकार–सुपात्रता सम्बन्धी श्रीमद् राजचन्द्रजीकी व्याख्या भी लक्ष्यमें लेने योग्य है :

'कषायनी उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भवे खेद, प्राणीदया, त्यां आत्मार्थनिवास।

दशा न अेवी ज्यां सुधी, जीव लहे नहीं जोग;
मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अन्तर रोग।

आवे ज्यां अेवी दशा, सद्‌गुरुबोध सुहाय;
ते बोधे सुविचारणा, त्यां प्रगटे सुखदाय।

ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निजज्ञान;
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण।*

कषाय जहाँ शान्त हो गये हैं, जिसे केवल अेक मोक्ष-पदकी ही अभिलाषा है, संसार पर जिसे वैराग्य है, और प्राणीमात्र पर जिसे दया आती है, अैसा जीव आत्मार्थी है।

जब तक जीव अैसी योग-दशाको नहीं पाता, तब तक अुसे मोक्ष-मार्गकी प्राप्ति नहीं होती और आत्म-भ्रान्तिरूप अन्तरंग रोग भी दूर नहीं होता।

जहाँ अैसी दशा प्राप्त होती है, वहाँ सद्‌गुरुका बोध सुशोभित होता है—सफल होता है और अुस बोधके सफल होनेसे सुखदायक सुविचारणा प्रगट होती है।

जहाँ सुविचार-दशा प्रगट हो वहीं आत्मज्ञान अुत्पन्न होता है और अुससे मोहका क्षय होकर जीव निर्वाणको प्राप्त करता है।

इस दृष्टिसे जब मैं अपना विचार करता हूँ तो मुझे नम्रता-पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि मुझमें अैसी सुपात्रता लेश मात्र भी नहीं है।

परन्तु अैसे पवित्र महात्माका जीवनचरित लिखनेके कारण मुझे अुनके जीवन तथा दर्शनका अभ्यास करनेका समय मिले तथा इस प्रकारसे श्रेय-पन्थमें गमन करनेका अल्प भी पाथेय मिले, अैसी विशुद्ध-बुद्धि रखकर 'अल्पविषया मतिः' होते हुअे भी इस पवित्र कार्यको मैंने अपने हाथमें लिया है। श्रेयार्थीको श्रीमद् राजचन्द्रजीकी इस जीवन-साधनाको पढ़कर उनकी उपदेश-समृद्धिका अनुशीलन करनेकी प्रेरणा प्राप्त हो तो मैं अपने इस नम्र प्रयासको सफल मानूंगा।

* 'आत्मसिद्धिशास्त्र'

श्री रसिकभाईने इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखकर इसकी मौलिकतामें वृद्धि की है। इसके लिअे मैं अुनका भी आभार मानता हूँ।

इस जीवन-साधनाको तैयार करनेमें श्रीमद् राजचन्द्रजीके लेखों, पत्रोंका तथा आज तक अुनके विषयमें लिखे गये लेखोंका मैंने अुपयोग किया है। इन सबका मैं अन्तःकरणपूर्वक आभारी हूँ।

अन्तमें श्रीमद् राजचन्द्रजीके पावनकारी चरण-कमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ कि अुनके द्वारा अुपदिष्ट धर्मतत्त्वको जीवनमें अुतारनेकी मुझे शक्ति प्रदान करे।

और वह धर्मतत्त्व यह है:

'धर्मतत्त्व जो पूछ्युं मने, तो संभळावुं स्नेहे तने;
जे सिद्धान्त सकलनो सार, सर्वमान्य सहुने हितकार।
भाख्युं भापणमां भगवान, धर्म न बीजो दया समान;
अभयदान साथे सन्तोष, द्यो प्राणीने दळवा दोष।
सत्य, शील ने सघळां दान, दया होईने रह्यां प्रमाण।

*　　　*　　　*

पुष्पपांखडी ज्यां दुभाय, जिनवरनी त्यां नहि आज्ञाय।
सर्व जीवनुं इच्छो सुख, महावीरनी शिक्षा मुख्य;

*　　　*　　　*

अे भवतारक सुन्दर राह, धरिये तरिये करी अुत्साह।
धर्म सकळनुं अे शुभ मूळ, अे वण धर्म सदा प्रतिकूळ;
तत्त्वरूपथी अे ओळखे, ते जन पहोंचे शाश्वत सुखे।'[१]

*　　　*　　　*

धर्मका तत्त्व जो मुझसे पूछा है, अुसे मैं तुझे स्नेहपूर्वक सुनाता हूँ। यह धर्मतत्त्व सकल सिद्धान्तका सार है, सर्वमान्य और सबको हितकारी है।

१ मोक्षमाला पाठ–२

भगवानने अपने उपदेशमें कहा है कि दयाके समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। दोषोंको नष्ट करनेके लिअे अभयदानके साथ प्राणियोंको सन्तोष प्रदान करो।

सत्य, शील तथा अनेक प्रकारके दान, दया होने पर ही प्रमाणभूत हैं।

जहां पुष्पकी अेक पांखुरीको भी दुःख पहुँचता हो, वैसी प्रवृत्ति करनेकी जिनवरकी आज्ञा नहीं है। समस्त जीवोंके सुखकी इच्छा करना यही भगवान महावीरका मुख्य अुपदेश है।

संसारसे पार करनेवाला यह सुन्दर मार्ग है, इसे अुत्साहपूर्वक धारण करके संसारसे पार होना चाहिअे। यह समस्त धर्मोंका मूल है, इसके विना धर्म सदा प्रतिकूल रहता है।

जो मनुष्य इसे तत्त्वरूपसे पहचानते हैं, वे शाश्वत सुखको प्राप्त करते हैं।

मुकुल कलार्थी

जीवन-साधना

अनुक्रमणिका

१

सेवानिष्ठ मातापिता

सन्त परम हितकारी जगत मांही
सन्त परम हितकारी ॥

प्रभुपद प्रगट करावत प्रीति,
भरम मिटावत भारी ॥

हमारे भारतवर्षकी आत्म साधना बहुत ही प्राचीन और सुप्रसिद्ध है। सहस्रों वर्ष पहले यह प्रारम्भ हुई। हम नहीं जानते कि इसका किसने प्रथम प्रारम्भ किया था। परन्तु इस जीवन साधनाके पुरस्कर्ता अनेक महान पुरुष प्रसिद्ध हैं। यह ऋषि-परंपरा बुद्ध और महावीर से पहलेकी है।

उनके बाद भी आजतक इस साधनाको प्राप्त सन्त महात्मा पुरुष देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें, भिन्न-भिन्न परंपराओंमें और भिन्न-भिन्न जातियोंमें होते आये हैं।

इसी अध्यात्म परंपरामें हुए श्रीमद् राजचन्द्रकी जीवन

साधना हमें उतनी ही प्रेरणादायक और जीवनप्रेरक है। हम लोग उनके पावनकारी जीवनमें अवगाहन करके आत्म-सिद्धिके पथ पर विचरें।

श्रीमद् राजचन्द्रके दादाजी श्री पंचाणभाई महेता मोरबी समीपस्थ 'माणिकवाडा'के मूल निवासी थे। वहाँसे वे अपने भाइयोंसे अलग होकर सं. १८९२में ववाणिया रहने आये थे।

ववाणिया आनेके बाद दादाजीने अेक मकान खरीदा था। इसी मकानमें श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म हुआ था।

ववाणियामें पंचाणदादा जहाज बनवाकर जहाजी-व्यापार करते थे। साथ-साथ अच्छे प्रमाणमें शराफी भी करते थे।

पंचाणदादाकी बडी उम्रतक एक भी पुत्र जीवित न रहा, परन्तु बादमें श्री रवजीभाईका जन्म सं. १९०२के माह महीनेमें हुआ। श्रीमद् राजचन्द्रके पिताका नाम रवजीभाई और माताका नाम देवबाई था।

श्री रवजीभाई चौदह वर्षकी अवस्थासे ववाणिया तथा चमनपर आदि आस-पासके गांवोंमें व्याज वटावका काम करने लगे थे।

श्री रवजीभाई ववाणियाके ठाकुरके मन्दिरके चौपालमें समवयस्क मित्रोंके साथ हमेशा बैठा करते थे। वहाँके भाट लोग अनेक प्रकारकी कथायें करते, उस समय वहाँ मनुष्योंकी मण्डली जमती। मण्डलीमें रवजीभाई भी जाते। इसके अतिरिक्त गरासियाओंके चौपालमें भी मण्डली बैठती

थी उसमें भी रवजीभाई जाया करते थे। वहाँ भाट चारण लोग कथायें, दन्तकथायें तथा धर्मकथायें करते। रवजीभाई उन्हें रसपूर्वक सुनते थे।

रवजीभाई वहुत ही भक्तिभावसे साधुसन्तोंकी सेवा करते तथा गरीबोंको अन्न-वस्त्र भी देते थे। साधु, सन्त, फकीर और महात्माओं पर उनकी खूव ही आस्था थी।

श्री रवजीभाईके यहाँ एक वयोवृद्ध आडतिया आया करते थे। एक बार वे वहुत बीमार हो गये। उस समय माता देववाईने उनकी खूब ही सेवा-चाकरी की। वह वयोवृद्ध रोगके कारण अतिशय अशक्त हो गये थे। परन्तु देवबाई उन्हें जरा भी व्याकुल नहीं होने देती थी।

इनकी माता तुल्य सेवा चाकरीको देखकर वे वृद्ध आभारवश बोल उठे 'तुम मेरी खूब सेवा चाकरी करती हो। प्रभु! तुम्हारे यहाँ महाभाग्यशाली पुत्रका जन्म हो! बेटा देव! यह तुम्हें मेरा आशीर्वाद है।'

माता देवबाई अपने सास-ससुरकी अत्यन्त सेवा करती थी। सास तो प्रसन्न होकर कहती 'देव, तू तो हमारे घरमें देवी समान है। तेरे जैसी भली बहू किसीकी न होगी। वेटा, तेरा सबकुछ अच्छा होगा।

ऐसे भक्तिशील और सेवाभावी माता-पिताके यहाँ श्रीमद्का जन्म हुआ था।

श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म ववाणियामें संवत १९२४के कार्तिकी पूर्णिमाके शुभ दिन रविवारकी रात्रिको दो वजे हुआ था।

साधना हमें उतनी ही प्रेरणादायक और जीवनप्रेरक है। हम लोग उनके पावनकारी जीवनमें अवगाहन करके आत्म-सिद्धिके पथ पर विचरें।

श्रीमद् राजचन्द्रके दादाजी श्री पंचाणभाई महेता मोरबी समीपस्थ 'माणिकवाडा'के मूल निवासी थे। वहाँसे वे अपने भाइयोंसे अलग होकर सं. १८९२में ववाणिया रहने आये थे।

ववाणिया आनेके बाद दादाजीने अेक मकान खरीदा था। इसी मकानमें श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म हुआ था।

ववाणियामें पंचाणदादा जहाज बनवाकर जहाजी-व्यापार करते थे। साथ-साथ अच्छे प्रमाणमें शराफी भी करते थे।

पंचाणदादाकी बडी उम्रतक एक भी पुत्र जीवित न रहा, परन्तु बादमें श्री रवजीभाईका जन्म सं. १९०२के माह महीनेमें हुआ। श्रीमद् राजचन्द्रके पिताका नाम रवजीभाई और माताका नाम देवबाई था।

श्री रवजीभाई चौदह वर्षकी अवस्थासे ववाणिया तथा चमनपर आदि आस-पासके गांवोंमें व्याज वटावका काम करने लगे थे।

श्री रवजीभाई ववाणियाके ठाकुरके मन्दिरके चौपालमें समवयस्क मित्रोंके साथ हमेशा बैठा करते थे। वहाँके भाट लोग अनेक प्रकारकी कथायें करते, उस समय वहाँ मनुष्योंकी मण्डली जमती। मण्डलीमें रवजीभाई भी जाते। इसके अतिरिक्त गरासियाओंके चौपालमें भी मण्डली बैठती

थी उसमें भी रवजीभाई जाया करते थे। वहाँ भाट चारण लोग कथायें, दन्तकथायें तथा धर्मकथायें करते। रवजीभाई उन्हें रसपूर्वक सुनते थे।

रवजीभाई बहुत ही भक्तिभावसे साधुसन्तोंकी सेवा करते तथा गरीबोंको अन्न-वस्त्र भी देते थे। साधु, सन्त, फकीर और महात्माओं पर उनकी खूब ही आस्था थी।

श्री रवजीभाईके यहाँ एक वयोवृद्ध आडतिया आया करते थे। एक बार वे बहुत बीमार हो गये। उस समय माता देवबाईने उनकी खूब ही सेवा-चाकरी की। वह वयोवृद्ध रोगके कारण अतिशय अशक्त हो गये थे। परन्तु देवबाई उन्हें जरा भी व्याकुल नहीं होने देती थी।

इनकी माता तुल्य सेवा चाकरीको देखकर वे वृद्ध आभारवश बोल उठे 'तुम मेरी खूब सेवा चाकरी करती हो। प्रभु! तुम्हारे यहाँ महाभाग्यशाली पुत्रका जन्म हो! बेटा देव! यह तुम्हें मेरा आशीर्वाद है।'

माता देवबाई अपने सास-ससुरकी अत्यन्त सेवा करती थी। सास तो प्रसन्न होकर कहती 'देव, तू तो हमारे घरमें देवी समान है। तेरे जैसी भली बहू किसीकी न होगी। बेटा, तेरा सबकुछ अच्छा होगा।

ऐसे भक्तिशील और सेवाभावी माता-पिताके यहाँ श्रीमद्‌का जन्म हुआ था।

श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म ववाणियामें संवत १९२४के कार्तिकी पूर्णिमाके शुभ दिन रविवारकी रात्रिको दो बजे हुआ था।

जैनोंमें कार्तिकी पूर्णिमाका अपूर्व माहात्म्य है। पूर्णिमा शब्द पूर्णतासूचक है। आत्माके पूर्णस्वरूप प्राप्त करनेके ध्येयमें पूर्णिमाकी महत्त्व कुछ कम नहीं है। इसी दिन महान तीर्थराज श्री सिद्धाचलकी यात्रा पालीतानामें अनेक श्रद्धालु जैन दूर दूरसे आकर भावपूर्वक करते हैं। इसके सिवाय कलिकाल सर्वज्ञकी पदवीधारण करनेवाले श्री हेमचन्द्राचार्यका जन्म भी वि. सं. ११४५ (ई. सं. १०८९) में गुर्जरेश्वर कर्णदेवके समयमें कार्तिकी पूर्णिमाके पवित्र दिनको हुआ था।

श्रीमद्जीका प्यारका नाम 'लक्ष्मीनन्दन' था। पश्चात् सं. १९२८में इस दुलारके नामको बदलकर 'रायचन्द्र' रखा। बादमें श्रीमद् राजचन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हुए।

ॐ

२

बाल्यावस्थाके धार्मिक संस्कार

श्रीमद् राजचन्द्रके दादाजी श्रीकृष्णके भक्त थे। जब श्रीमद्की माता देवबाई जैन संस्कारोंमें पली-पुसी थीं, ववाणियाके दूसरे वैश्य परिवार भी जैन धर्मका पालन करते थे। इन सभी संस्कारोंका मिश्रण किसी विचित्र प्रकारसे गंगा-यमुनाके संगमकी तरह इस बाल महात्माके हृदयमें ढलता था। श्रीमद् राजचन्द्रने बाईस वर्षकी वयमें अपनी बाल्यावस्थाका वर्णन 'समुच्चयवयचर्या' नामके लेखमें किया है।

उसमें श्रीमद्जी लिखते हैं कि—'मेरे पितामह कृष्णकी भक्ति करते थे। उनसे उस वयमें मैंने कृष्ण-कीर्तनके पद सुने थे; उसी प्रकार भिन्न-भिन्न अवतारों सम्बन्धी चमत्कार श्रवण किये थे, जिससे मुझे भक्तिके साथ उन अवतारोंमें प्रीति हो गई थी, और रामदासजी नामके साधु से मैंने बाललीलामें कंठी बंधवाई थी।

मैं नित्य कृष्णके दर्शन करने जाता, समय-समय पर कथायें सुनता, वारम्वार अवतार सम्वन्धी चमत्कारोंसे

मोहित होता और उसे परमात्मा मानता, जिससे उसके निवास-स्थान देखनेकी परम जिज्ञासा थी। मैं उसके सम्प्रदायका महन्त होऊं, जगह-जगह चमत्कार पूर्ण हरिकथा करता फिरूं और त्यागी होऊं, तो कितना आनन्द आये? यह विकल्पना हुआ करती थी तथा जब किसी वैभवशाली भूमिकाको देखता तब बहुत वैभवशाली होनेकी इच्छा होती थी।

उन दिनों मैंने 'प्रवीणसागर' नामका ग्रन्थ पढ़ लिया था, परन्तु उसे विशेष समझा नहीं था; फिर भी स्त्री सम्बन्धी अनेक प्रकारके सुखमें लीन होऊं और निरुपाधिक होकर कथायें श्रवण करता होऊं तो कैसी आनन्ददायक दशा! यह मेरी तृष्णा थी।

गुजराती भाषाकी पाठमालामें कितने ही स्थलों पर जगत्कर्ता सम्बन्धी जो उपदेश है, वह मुझे दृढ़ हो गया था। जिससे जैन लोगोंके प्रति मेरी बहुत जुगुप्सा थी। कोई भी पदार्थ बिना बनाये नहीं बन सकता, इसलिए जैन लोग मूर्ख हैं, उन्हें जगत्कर्ताकी खबर नहीं है। साथ-साथ उसी समय प्रतिमाके अश्रद्धालु लोगोंकी क्रियायें देखनेमें आती थी। वे मलिन लगनेसे मैं उन क्रियाओंसे डरता था, अर्थात् वे मुझे प्रिय नहीं थीं।

'जन्मभूमिमें जितने बनिये रहते थे उन लोगोंकी कुल-श्रद्धा भिन्न-भिन्न होने पर भी कुछ अंशोंमें प्रतिमाको न माननेवालोंसे ही मिलती-जुलती थी और मुझे उन लोगोंका ही संग था। पहले से ही वहाँके आदमी मुझे

समर्थ शक्तिवाला और गांवका नामांकित विद्यार्थी मानते थे। इससे मैं अपनी प्रशंसाके कारण जानबूझकर वैसे मंडलमें बैठकर अपनी चपल शक्ति दिखानेका प्रयत्न करता था। कंठी के लिए वे बारम्बार मेरी हास्यपूर्वक टीका करते थे। फिरभी मैं उनसे वाद-विवाद करता और समझानेका प्रयत्न करता था।

'परन्तु धीरे-धीरे मुझे उनकी 'प्रतिक्रमण सूत्र' आदि पुस्तकें पढनेको मिलीं, उनमें अत्यन्त विनयपूर्वक सब जीवों-से मित्रताकी कामना की है। इससे मेरी उनमें भी प्रीति उत्पन्न हुई और प्रथम प्रीति भी रही। धीरे-धीरे यह प्रसंग बढ़ा। फिर भी स्वच्छ रहनेके तथा वैष्णवोंके दूसरे आचार-विचार प्रिय थे, और जगत्कर्ताकी श्रद्धा थी। इतनेमें कंठी टूट गई, मैंने फिर वह न बंधवाई। उस समय बांधने न बांधनेका कारण मैंने नहीं खोजा था।

इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्र अपनी तेरह वर्षकी आयु तक जैन धर्मके रंगमें पूर्णतया रंगे गये थे। बचपन से ही वैराग्य-प्रधान उनका चित्त भोगप्रधान वैष्णव सम्प्रदायकी अपेक्षा त्यागप्रधान जैन धर्मकी ओर विशेष आकर्षित होता गया।

श्रीमद्जी इसके सम्बन्धमें लिखते हैं कि—'जहां स्त्रियोंके भोगनेका उपदेश हो, लक्ष्मीलीलाकी शिक्षा दी हो, रंग-राग, गुलतान और ऐशआरामको ही तत्त्व बताया हो, वहांसे हमारी आत्माको शान्ति नहीं है। क्यों कि यदि इसे धर्म-मत मानें तो सारा संसार धर्ममत युक्त ही है। प्रत्येक गृहस्थका घर इन योजनाओंसे भरा रहता है। यदि इसे

धर्म-मन्दिर कहें तो फिर अधर्म स्थानक कौन-सा? कोई इस प्रकार कहे कि उस धर्म-मन्दिरमें तो प्रभुकी भक्ति हो सकती है, तो उसके लिए खेदपूर्वक इतना ही उत्तर देना है कि वे परमात्मतत्त्व और उसकी वैराग्यमय भक्तिको नहीं जानते।

७

३

जातिस्मरण ज्ञान

श्रीमद् राजचन्द्रकी सात वर्षकी आयु बालवयके खेल-कूदमें व्यतीत हुई। परन्तु उस समय भी उनका झुकाव स्वाभाविक रूपसे आत्मोन्नतिकी ओर ही रहता था। श्रीमद् इस बारेमें 'समुच्चयवयचर्या'में लिखते हैं—उस समयकी मुझे इतनी स्मृति है कि विचित्र कल्पना (कल्पनाका स्वरूप या हेतु समझे बिना) मेरे आत्मामें आया करती थी। खेल-कूदमें भी विजय प्राप्त करनेकी और राजराजेश्वर जैसी उच्च पदवी प्राप्त करनेकी मेरी परम अभिलाषा थी। वस्त्र पहिननेकी, स्वच्छ रखनेकी, खाने-पीनेकी, सोने-बैठनेकी मेरी सभी दशायें विदेही जैसी थीं, परन्तु हृदय कोमल था। अब भी वह दशा स्मृतिमें आती है। यदि इस समयका विवेकी ज्ञान उस वयमें होता तो मुझे मोक्षकी विशेष इच्छा नहीं रहती, ऐसी निरपराध दशा होनेसे वह बारम्बार स्मृतिमें आती है।

श्रीमद्जी जब सात वर्षके थे, उस समय एक अति महत्त्वका प्रसंग बना था। श्रीमद्जीने 'समुच्चयवयचर्या'में

इस प्रसंगका कुछ उल्लेख नहीं किया है, तथा बादके लेखोंमें भी इसकी विशेष चर्चा देखनेमें नहीं आती। फिर भी मित्रोंकी बातचीतमें प्रत्यक्ष पूछनेवालेको, अपनेको जातिस्मरण ज्ञान कब और किस प्रसंग पर प्रगट हुआ था, इस विषयमें उन्होंने कहा है।

श्रीमद्जीने कल्याणभाईसे कहा था कि हमें आठसौ भवोंका ज्ञान है। उन्होंने खीमजीभाईसे अपने पूर्वभवोंका विस्तृतवर्णन किया था।

कच्छ-निवासी वैश्यभाई पदमशी ठाकरशी सं. १९४२से श्रीमद्जीके समागममें आये थे। उन्होंने एक समय बम्बईमें भूलेश्वरके शाक मारकीटके पासके दिगम्बर जैन मन्दिरमें श्रीमद्जीसे प्रश्न किया था कि 'आपको जातिस्मृति ज्ञान है, ऐसा मैंने सुना है, वह उचित है?'

श्रीमद्जीने उत्तरमें कहा—'हां, है।' उसके आधार पर ही यह सब कहा गया है।

पदमशीभाईने पुनः प्रश्न किया 'आपको जातिस्मरण ज्ञान कितनी आयुमें और कैसे हुआ?'

इससे अपने जीवनमें बना हुआ यह प्रसंग श्रीमद्जीने कहा था, श्रीमद्जी उस समय सात वर्षके थे। ववाणियामें एक अमीचन्द्र नामके सद्गृहस्थ रहते थे। वे श्रीमद्जी पर खूब प्रेम रखते थे। एक समय अमीचन्द्रको सर्पने काट खाया, उससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गई।

इस बातको सुनते ही बालक राजचन्द्र दौड़ते-दौड़ते दादाजीके पास गये। मृत्यु क्या वस्तु है, इसका उन्हें

ख्याल नहीं था। इससे उन्होंने दादाजीसे पूछा—'दादाजी, अमीचन्द्र मर गये क्या?' वालकके इस सरल सवालको सुनकर दादाजीने विचारा कि यदि इस वातकी इस वालकको खवर पडेगी तो भयभीत होगा। इस कारणसे वालकके ध्यानको अन्य ओर आकर्षित करने के लिए भोजन करने के लिए कहा तथा इधर-उधरकी वातें करने लगे।

परन्तु वालक राजचन्द्रने मरणके सम्वन्धमें यह पहली ही वार सुना था, इसलिए उसे समझनेकी उन्हें तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उससे वे वारम्वार इसी एक प्रश्नको पूछते रहे। अन्तमें थक कर दादाजीने कहा—'हां, वात सत्य है। वालक राजचन्द्र कुछ इतनेसे ही सन्तुष्ट होनेवाले नहीं थे। इसलिए उन्होंने पुनः पूछा—'दादाजी मर जाना (मृत्यु) क्या है?'

दादाजीने कहा—'उसमेंसे जीव निकल गया है और अव वह हिलना, चलना, बोलना आदि कुछ नहीं कर सकता, तथा खाना-पीना भी नहीं कर सकता। इसलिए इसे तालावके पासके श्मसानमें जला आयेंगे।

तत्पश्चात् वालक राजचन्द्र थोडी देर घरमें इधर-उधर घूमकर छिपकर तालावके समीप गये। वहाँ किनारे पर रहे हुए दो शाखावाले ववूलके वृक्ष पर चढ़कर देखा तो सचमुचमें चिता भक-भक जल रही थी और उसे वहुतसे मनुष्य चारों ओरसे घेरकर वैठे हुए थे।

एक परिचित और प्रेमी मनुष्यको इस प्रकारसे जलाते हुए देखकर उनको वहुत ही दुःख हुआ और वे थोडी देर के

लिए उलझनमें पड गये। उन्होंने देखा कि अमीचन्द्रको जलानेवाले सगे सम्बन्धी तथा समझदार मनुष्य ही थे।

यह दृश्य देखकर बालक राजचन्द्र विचारने लगे कि यह सब क्या है? इस प्रकार मनुष्यको जला देना, यह कितनी क्रूरता है? ऐसा क्यों हुआ?

इस प्रकार उनके चित्तमें एक भारी उलझन पैदा हुई और तीव्र विचारधारा बही। उसी समय अचानक उनके हृदय परका पर्दा दूर हो गया और उन्हें जन्म-जन्मान्तरका कुछ दर्शन हुआ। फिर वे कुछ शान्त हो गये।

ऐसा ही अनुभव, जब वे जूनागढ़का किला देखने गये थे, उस समय फिर हुआ था, और तबसे उनको पुनर्जन्मका दृढ़ निश्चय हो गया था।

श्रीमद् राजचन्द्रको सात वर्षकी आयुमें अर्थात् १९३१में जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वैराग्य बढ़ने लगा। इस 'अपूर्व अनुसार'का उल्लेख उन्होंने संवत् १९५३में लिखे हुए एक काव्यमें किया है।

धन्य रे दिवस आ अहो।
जागी रे शान्ति अपूर्व रे।
दश वर्षे रे धारा उल्लसी,
मटचो उदय कर्मनो गर्व रे।
ओगणीससे ने एकत्रीसे,
आव्यो अपूर्व अनुसार रे।
ओगणीससे ने बेंतालीसे,
अद्भुत वैराग्य धार रे।

अहा! इस दिनको धन्य है, अपूर्व शान्ति जाग्रत हुई। दश वर्षमें यह धारा उल्लसित हुई और उदय कर्मका गर्व दूर हो गया। अहा! इस दिनको धन्य है।

सवंत् १९३१ उन्नीससौ इकत्तीसमें अपूर्व क्रम प्राप्त हुआ और उन्नीससौ बियालिसमें अद्भुत वैराग्यधारा प्रकाशित हुई। अहा! इस दिनको धन्य है।

तथा इसी भावको प्रगट करता हुआ दूसरा एक काव्य सं. १९४५में लिखा था। उसमें श्रीमद्‌जी कहते हैं:

'लघु वयथी अद्भुत थयो, तत्त्वज्ञाननो बोध,
ए ज सूचवे एम के, गति-आगति कां शोध?
जे संस्कार थवो घटे, अति अभ्यासे कांय,
विना परिश्रम ते थयो, भव शंका शी त्यांय;'

मुझे जो लघु वयसे तत्त्वज्ञानका बोध हुआ है, वह यह सूचित करता है कि गति-आगति खोजनेकी क्या आवश्यकता है। अर्थात् इस बोधसे ही पुनर्जन्मकी सिद्धि हो जाती है।

जो संस्कार अत्यन्त अभ्यास करनेसे उत्पन्न होते हैं वे सब मुझे विना किसी परिश्रमके सिद्ध हो गये, तो फिर पुनर्जन्मके सम्बन्धमें शंका क्या?

श्रीमद्‌को जातिस्मरण ज्ञान था, परन्तु वे इस विषयकी चर्चामें पीछेसे बडी उम्रमें भी नहीं उतरते थे। क्योंकि उन्हें तो एक आत्मानुभव ही प्रिय था। किसी समय किसी परिचित मनुष्यके सन्मुख अपने इस अनुभवकी बात

यदि वे कहते तो उस समय उस पर वे लोग कुछ अनुमान करते थे। उनके परिचयमें आनेवाले मनुष्योंके शब्दोंको यहाँ लिखना अनुचित न होगा। श्रीमद्‌जीने स्वयं उन लोगोंसे कहा था कि, 'मैं स्वयं महावीर स्वामीका शिष्य था। अमुक प्रकारका प्रमाद करनेसे ८०० भव करने पडे हैं। परन्तु इस विषयमें जब उनके सम्वन्धियोंकी ओरसे भारपूर्वक पूछनेमें आता, तब श्रीमद् 'मुझे इस विषयका अनुभव है,' इतना कह कर चुप हो जाते और उस विषयकी व्यर्थ कुतूहल वृत्तिको रोकनेका प्रयत्न करते।

२६वें वर्षमें लिखे हुए एक पत्रमें श्रीमद्‌जी विदित करते हैं कि:

'पुनर्जन्म है, अवश्य है, इसके लिए मैं अनुभवसे 'हाँ, कहनेमें अचल हूं।' यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समय अनुभव सिद्ध लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादि भाव किये हैं, उस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर यह वाक्य लिखा है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते थे कि—शास्त्रोंमें अनेक बार कहनेमें आया है कि आत्मा पर अज्ञान कर्मोंके पटल छा गये हैं, उससे आत्मा अपनी अनेक शक्तियों और शुद्ध स्वरूपको गुमा बैठा है। जैसे-जैसे मनुष्य अपनी इस मलिनताको दूर करता जाता है, वैसे-वैसे उसकी शक्तियाँ प्रगट होती जाती हैं।

जिस तत्त्वको जाननेकी और प्राप्त करनेकी वृत्ति लोगोंमें वृद्धावस्थामें भी नहीं उत्पन्न होती, उस तत्त्वको

प्राप्त करनेकी जो चटपटी श्रीमद् राजचन्द्रमें अति अल्प वयमें मालूम होती है, वह उपरके सिद्धान्तसे ही समझमें आ सकती है।

बाईस वर्षकी उम्र तक श्रीमद् किस-किस स्थितिमेंसे पार हुए इसका चित्रण उन्होंने 'समुच्चयवयचर्या'में अति सचोट रीतिसे किया है। वह यहाँ विचारने योग्य है।

'बाईस वर्षकी अल्प वयमें मैंने आत्मा सम्बन्धी, मन सम्बन्धी, वचन सम्बन्धी, तन सम्बन्धी और धन सम्बन्धी अनेक रंग देखे हैं। नाना प्रकारकी सृष्टि-रचना, नाना प्रकारकी सांसारिक लहरें, अनन्त दुःखके मूल कारण इन सबका मुझे अनेक प्रकारसे अनुभव हुआ है। समर्थ तत्त्वज्ञानियोंने और समर्थ नास्तिकोंने जो-जो विचार किये हैं, उस प्रकारके अनेक विचार मैंने इस अल्प वयमें किये हैं। महान् चक्रवर्ती द्वारा किये गये तृष्णाके विचार और एक निस्पृही महात्मा द्वारा किये गये निस्पृहताके विचार भी मैंने किये हैं। अमरत्वकी सिद्धि और क्षणिकत्वकी सिद्धिका खूब विचार किया है। थोडी-सी आयुमें महान विचार कर डाले हैं, महान विचित्रताकी प्राप्ति हुई है।'

पुनर्जन्मकी प्रत्यक्ष अनुभूतिके बिना इतनी अल्प आयुमें जीवनकी इतनी विपुल व्यापकताका संभव नहीं है।

इसके सिवाय सं. १९४६के भाद्रपद सुद छठके पत्रमें उपस्थित की गई विचारणा, पूर्वभवके स्मरणका ज्ञान उनको था, इस बातका समर्थन करती है।

'अन्तर्ज्ञानसे स्मरण करने पर ऐसा कोई काल नहीं

मालूम होता या याद नहीं आता कि जिस कालमें इस जीवने परिभ्रमण न किया हो, संकल्प विकल्पका रटन न किया हो, और इससे 'समाधि'को न भूला हो। निरन्तर यह स्मरण रहा करता है, और वह महा वैराग्यको देता है।

और स्मरण होता है कि इस परिभ्रमणको केवल स्वच्छन्दतासे करते हुए इस जीवको उदासीनता क्यों न आई? अन्य जीवोंके प्रति क्रोध करते हुए, मान करते हुए, माया करते हुए, लोभ करते हुए या अन्यथा करते हुए, वह अनुचित है ऐसा यथायोग्य क्यों नहीं जाना? अर्थात् इसे जानना योग्य था, फिर भी नहीं जाना। यह पुनः परिभ्रमण करनेका वैराग्य उत्पन्न करता है।

फिर स्मरण होता है कि, जिसके बिना मैं एक पल भी नहीं जीवित रह सकता, ऐसे कितने ही पदार्थों (स्त्री आदि)को अनन्तबार छोडते हुए, उनका वियोग हुए अनन्तकाल हो गया, तो भी उनके बिना जीवित रहा, यह कुछ कम आश्चर्यकारक नहीं है। अर्थात् जिस-जिस समय वैसा प्रीतिभाव किया था, उस-उस समय वह कल्पित था। इस प्रकारका प्रीतिभाव क्यों हुआ? यह पुनः पुनः वैराग्य देता है।

जिसका मुख मैं किसी समय भी नहीं देखूँ, जिसे कभी ग्रहण नहीं करूँ, उसके घरमें पुत्र रूपसे, स्त्री रूपसे, दास रूपसे, दासी रूपसे तथा छोटे जन्तु रूपसे मैं क्यो जन्मा? अथात् ऐसे द्वेषसे इस रूपमें जन्म लेना पडा। और वैसी अभिलाषा तो नहीं थी। तो कहो यह स्मरण होते हुए

इस क्लेशित आत्मा पर जुगुप्सा नहीं आती? आती है।

'अधिक क्या कहें? पूर्वके जिन-जिन भवान्तरोंमें भ्रान्तिसे भ्रमण किया, उसका स्मरण होनेसे अब कैसे जियें? यह चिन्तन हो रहा है। फिर जन्म ही धारण न करूँ, और फिर ऐसा करूँ ही नहीं ऐसी दृढ़ता आत्मामें प्रकाशित है। परन्तु कुछ निरुपायता है। वहाँ क्या करूं?

'जो दृढ़ता है, उसे पूर्ण करना, अवश्य पूर्ण करना, यही रटन है। परन्तु जो विघ्न आते हैं, उन्हें एक ओर करना पडता है, अर्थात् हटाना पड़ता है, और उसमें समय जाता है। जीवन चला जा रहा है, इसे न जाने देना। जहाँ तक यथायोग्य जीत न हो वहाँ तक ऐसी जो दृढ़ता है, उसका क्या करना?

'कदापि इसमेंका किसी तरह कुछ करें, तो वैसा स्थान कहाँ है कि जहाँ जाकर रहें? अर्थात् वैसे सन्त कहाँ हैं जहाँ जाकर, इस दशामें रह कर उसका पोषण प्राप्त करें। तो अब क्या करना?

'कुछ भी हो, कितने ही दुःख क्यों न पडें, कितने परिसह क्यों न आयें, कितने ही उपसर्ग क्यों न आयें, कितनी व्याधियाँ क्यों न आयें, कितनी उपाधियाँ क्यों न आयें, चाहे तो जीवन एक समय मात्र क्यों न हो और दुर्निमित्त क्यों न हो, परन्तु ऐसा ही करना। हे जीव! वहाँ तक छुटकारा नहीं है।'

१७ वर्षकी उम्र पहलेकी श्रीमद् राजचन्द्र कृत 'पुष्पमाला'के बारेमें महात्मा गांधीजीने पण्डित सुखलालजीसे बातचीत करते हुए कहा था: 'अरे! यह पुष्पमाला तो पुनर्जन्मकी साक्षीरूप है।'

मालूम होता या याद नहीं आता कि जिस कालमें इस जीवने परिभ्रमण न किया हो, संकल्प विकल्पका रटन न किया हो, और इससे 'समाधि'को न भूला हो। निरन्तर यह स्मरण रहा करता है, और वह महा वैराग्यको देता है।

और स्मरण होता है कि इस परिभ्रमणको केवल स्वच्छन्दतासे करते हुए इस जीवको उदासीनता क्यों न आई? अन्य जीवोंके प्रति क्रोध करते हुए, मान करते हुए, माया करते हुए, लोभ करते हुए या अन्यथा करते हुए, वह अनुचित है ऐसा यथायोग्य क्यों नहीं जाना? अर्थात् इसे जानना योग्य था, फिर भी नहीं जाना। यह पुनः परिभ्रमण करनेका वैराग्य उत्पन्न करता है।

फिर स्मरण होता है कि, जिसके बिना मैं एक पल भी नहीं जीवित रह सकता, ऐसे कितने ही पदार्थों (स्त्री आदि)को अनन्तबार छोडते हुए, उनका वियोग हुए अनन्तकाल हो गया, तो भी उनके बिना जीवित रहा, यह कुछ कम आश्चर्यकारक नहीं है। अर्थात् जिस-जिस समय वैसा प्रीतिभाव किया था, उस-उस समय वह कल्पित था। इस प्रकारका प्रीतिभाव क्यों हुआ? यह पुनः पुनः वैराग्य देता है।

जिसका मुख मैं किसी समय भी नहीं देखूँ, जिसे कभी ग्रहण नहीं करूँ, उसके घरमें पुत्र रूपसे, स्त्री रूपसे, दास रूपसे, दासी रूपसे तथा छोटे जन्तु रूपसे मैं क्यो जन्मा? अथात् ऐसे द्वेषसे इस रूपमें जन्म लेना पड़ा। और वैसी अभिलाषा तो नहीं थी। तो कहो यह स्मरण होते हुए

इस क्लेशित आत्मा पर जुगुप्सा नहीं आती? आती है।

'अधिक क्या कहें? पूर्वके जिन-जिन भवान्तरोंमें भ्रान्तिसे भ्रमण किया, उसका स्मरण होनेसे अब कैसे जियें? यह चिन्तन हो रहा है। फिर जन्म ही धारण न करूँ, और फिर ऐसा करूँ ही नहीं ऐसी दृढ़ता आत्मामें प्रकाशित है। परन्तु कुछ निरुपायता है। वहाँ क्या करूं?

'जो दृढ़ता है, उसे पूर्ण करना, अवश्य पूर्ण करना, यही रटन है। परन्तु जो विघ्न आते हैं, उन्हें एक ओर करना पडता है, अर्थात् हटाना पड़ता है, और उसमें समय जाता है। जीवन चला जा रहा है, इसे न जाने देना। जहाँ तक यथायोग्य जीत न हो वहाँ तक ऐसी जो दृढ़ता है, उसका क्या करना?

'कदापि इसमेंका किसी तरह कुछ करें, तो वैसा स्थान कहाँ है कि जहाँ जाकर रहें? अर्थात् वैसे सन्त कहाँ हैं जहाँ जाकर, इस दशामें रह कर उसका पोषण प्राप्त करें। तो अब क्या करना?

'कुछ भी हो, कितने ही दुःख क्यों न पडें, कितने परिसह क्यों न आयें, कितने ही उपसर्ग क्यों न आयें, कितनी व्याधियाँ क्यों न आयें, कितनी उपाधियाँ क्यों न आयें, चाहे तो जीवन एक समय मात्र क्यों न हो और दुर्निमित्त क्यों न हो, परन्तु ऐसा ही करना। हे जीव! वहाँ तक छुटकारा नहीं है।'

१७ वर्षकी उम्र पहलेकी श्रीमद् राजचन्द्र कृत 'पुष्पमाला'के बारेमें महात्मा गांधीजीने पण्डित सुखलालजीसे बातचीत करते हुए कहा था: 'अरे! यह पुष्पमाला तो पुनर्जन्मकी साक्षीरूप है।'

मालूम होता या याद नहीं आता कि जिस कालमें इस जीवने परिभ्रमण न किया हो, संकल्प विकल्पका रटन न किया हो, और इससे 'समाधि'को न भूला हो। निरन्तर यह स्मरण रहा करता है, और वह महा वैराग्यको देता है।

और स्मरण होता है कि इस परिभ्रमणको केवल स्वच्छन्दतासे करते हुए इस जीवको उदासीनता क्यों न आई? अन्य जीवोंके प्रति क्रोध करते हुए, मान करते हुए, माया करते हुए, लोभ करते हुए या अन्यथा करते हुए, वह अनुचित है ऐसा यथायोग्य क्यों नहीं जाना? अर्थात् इसे जानना योग्य था, फिर भी नहीं जाना। यह पुनः परिभ्रमण करनेका वैराग्य उत्पन्न करता है।

फिर स्मरण होता है कि, जिसके बिना मैं एक पल भी नहीं जीवित रह सकता, ऐसे कितने ही पदार्थों (स्त्री आदि)को अनन्तबार छोडते हुए, उनका वियोग हुए अनन्तकाल हो गया, तो भी उनके बिना जीवित रहा, यह कुछ कम आश्चर्यकारक नहीं है। अर्थात् जिस-जिस समय वैसा प्रीतिभाव किया था, उस-उस समय वह कल्पित था। इस प्रकारका प्रीतिभाव क्यों हुआ? यह पुनः पुनः वैराग्य देता है।

जिसका मुख मैं किसी समय भी नहीं देखूँ, जिसे कभी ग्रहण नहीं करूँ, उसके घरमें पुत्र रूपसे, स्त्री रूपसे, दास रूपसे, दासी रूपसे तथा छोटे जन्तु रूपसे मैं क्यो जन्मा? अथात् ऐसे द्वेषसे इस रूपमें जन्म लेना पड़ा। और वैसी अभिलाषा तो नहीं थी। तो कहो यह स्मरण होते हुए

पूरे किये और दो वर्षमें शालाकी सात पुस्तकें पूरी कीं। परिणाममें जिस बडे विद्यार्थीने उनको प्रथम पुस्तकका प्रारंभ कराया था उसे स्वयं सात पुस्तकोंका अध्ययन पूर्ण करके पहली पुस्तक पूर्ण कराई थी।

उनमें छुटपनसे ही सुन्दर कहानियाँ और कथायें स्वयं घडकर कहनेकी कोई अद्भुत शक्ति थी। आठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने कविता बनाना प्रारंभ किया था, जिसे बादमें जांचने पर छन्दशास्त्रानुसार सिद्ध हुई थी। उस समय उनको जो मिल सके वे सब काव्य-ग्रन्थ पढ़ डाले थे, और कुछ कंठस्थ भी हो गये थे।

कहा जाता है कि श्रीमद्ने आठ वर्षकी अवस्थामें कविताकी ५००० पंक्तियाँ लिखी थीं। और नव वर्षकी उम्रमें रामायण तथा महाभारतको पद्योंमें लिखा था।

प्रथमसे ही श्रीमद् स्वभावके अति सरल और प्रेमी थे। श्रीमद्जी 'समुच्चयवयचर्या'में लिखते हैं कि, 'उस समय मुझमें प्रीति–सरल वात्सल्यता–बहुत थी, सबसे एकता चाहता; सर्वमें भ्रातृभाव हो तो ही सुख, यह मुझे स्वाभाविक होता था। लोगोंमें किसी भी प्रकारसे भिन्नताके अंकुर देखता कि मेरा अन्तःकरण रो उठता था।* वहाँतक मुझसे स्वाभाविक रीतिसे भद्रिकताका ही सेवन हुआ था।

* श्रीमद्जीका यही स्वभाव अन्त तक रहा था। इस विषयमें महात्मा गांधीजी कहते हैं:

'वे बहुधा कहा करते थे कि, "कोई चारों ओरसे बरछियों चुभाये, उसे सहन कर सकूं, परन्तु जगतमें जो झूठ, पाखंड और

४

विद्याकालमें अद्भुत शक्तियोंका आविर्भाव

सात वर्षकी उम्र बाद श्रीमद् राजचन्द्रको विद्याशालामें पढने के लिए भेजा गया।

बालक राजचन्द्रकी स्मरणशक्ति इतनी अधिक तीव्र थी कि एक बार ही पाठ पढ़ जानेसे उनको वह पूर्णतः याद रह जाता। उन्होंने स्वयं 'समुच्चयवयचर्या'में लिखा है, तदनुसार 'उस समय निरपराधी स्मृति होनेसे एक ही बार पाठका अवलोकन करना पडता था....स्मृति इतनी बलवती थी कि वैसी स्मृति बहुत ही थोडे मनुष्योंमें इस कालमें, इस क्षेत्रमें होगी।'

श्रीमद्जीको इस स्मरण-शक्तिके कारण सामान्य बालकोंकी तरह घर पर फिरसे पढ़नेकी कुछ आवश्यकता नहीं रहती थी। इससे बाहरसे अन्य मनुष्योंको श्रीमद् पढनेमें प्रमादी लगते थे। परन्तु विद्याशालामें शिक्षक जो कुछ उन्हें वहाँ सिखाता वे उसे वहीं सीख लेते थे। इससे घर पर सीखनेकी जरूरत नहीं रहती थी।

इस कारणसे एक महीनेसे भी कम समयमें अंकपहाडे

पूरे किये और दो वर्षमें शालाकी सात पुस्तकें पूरी कीं। परिणाममें जिस बडे विद्यार्थीने उनको प्रथम पुस्तकका प्रारंभ कराया था उसे स्वयं सात पुस्तकोंका अध्ययन पूर्ण करके पहली पुस्तक पूर्ण कराई थी।

उनमें छुटपनसे ही सुन्दर कहानियाँ और कथायें स्वयं घडकर कहनेकी कोई अद्‌भुत शक्ति थी। आठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने कविता बनाना प्रारंभ किया था, जिसे बादमें जांचने पर छन्दशास्त्रानुसार सिद्ध हुई थी। उस समय उनको जो मिल सके वे सब काव्य-ग्रन्थ पढ़ डाले थे, और कुछ कंठस्थ भी हो गये थे।

कहा जाता है कि श्रीमद्‌ने आठ वर्षकी अवस्थामें कविताकी ५००० पंक्तियाँ लिखी थीं। और नव वर्षकी उम्रमें रामायण तथा महाभारतको पद्योंमें लिखा था।

प्रथमसे ही श्रीमद् स्वभावके अति सरल और प्रेमी थे। श्रीमद्‌जी 'समुच्चयवयचर्या'में लिखते हैं कि, 'उस समय मुझमें प्रीति–सरल वात्सल्यता–बहुत थी, सबसे एकता चाहता; सर्वमें भ्रातृभाव हो तो ही सुख, यह मुझे स्वाभाविक होता था। लोगोंमें किसी भी प्रकारसे भिन्नताके अंकुर देखता कि मेरा अन्तःकरण रो उठता था।* वहाँतक मुझसे स्वाभाविक रीतिसे भद्रिकताका ही सेवन हुआ था।

* श्रीमद्‌जीका यही स्वभाव अन्त तक रहा था। इस विषयमें महात्मा गांधीजी कहते हैं:

'वे बहुधा कहा करते थे कि, "कोई चारों ओरसे बरछियों चुभाये, उसे सहन कर सकूं, परन्तु जगतमें जो झूठ, पाखंड और

मैं मनुष्य जातिका बहुत विश्वासी था। मुझे स्वाभाविक सृष्टिरचना पर खूब प्रीति थी।'

अपनी विद्याशालाके अतिरिक्त अध्ययनके विषयमें श्रीमद्जी विदित करते हैं कि, 'उस समय मैंने कितने ही काव्यग्रन्थोंको पढ़ा था, तथा अनेक प्रकारके बोधग्रन्थ छोटे-बडे इधर-उधरके भी देख डाले थे, जो प्रायः आज भी स्मृतिमें हैं।'

ऐसा प्रखर बुद्धिशाली और प्रेमी विद्यार्थी अध्यापकवृन्द तथा सहाध्यायियोंको प्रिय हुए विना न रहे। कक्षामें अध्यापक तो बैठा ही रहता और श्रीमद्जी साठ विद्यार्थीयोंका पाठ लेते थे।

विद्यार्थीयोंका श्रीमद् पर कितना अधिक प्रेम था इसका एक उदाहरण प्रसिद्ध है। किसी समय एक शिक्षकने किसी कारणसे श्रीमद् राजचन्द्रको उलाहना दिया। इससे दूसरे दिन श्रीमद्जी विद्याशालामें नहीं आये। इधर विद्यार्थी श्रीमद्जीको पाठशालामें न देखकर, उनके घर गये और उनके साथ सब विद्यार्थी दूरके एक खेतमें चले गये।

जब अध्यापक पाठशालामें आये तो वहाँ एक भी विद्यार्थी न मिला। इसका कारण विचारनेसे शिक्षकको

अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामसे जो अधर्म प्रवर्त रहा है, उसकी बरछी सहन नहीं हो सकती।" अत्याचारोंसे खौलते हुए उनको मैंने कईबार देखा है। उन्हें समस्त जगत् अपने कुटुम्ब समान था। अपने भाई-बहनोंको मरते देखकर जो क्लेश अपनेको होता है, उतना क्लेश उनको जगतमें दुःख और मरणको देखकर होता था।'

लगा कि, कल रायचन्दभाईको उलाहना दिया था इससे सभी विद्यार्थी उनके पास होंगे। जाँच पडताल करने पर सब विद्यार्थी खेतमें गये हुए हैं, ऐसा जानकर शिक्षक वहाँ गये और श्रीमद् राजचन्द्रको समझा-बुझाकर वापस पाठशालामें ले आये।

वचपनसे ही श्रीमद्‌में नवीन जाननेकी, नया सुननेकी और नया सीखनेकी तथा उसके ऊपर मनन-चिन्तन करनेकी अत्यन्त टेव थी।

दशवें वर्षमें तो वे अनेक विषयोंके ऊपर छटादार सुन्दर भाषण करते थे।

ग्यारह वर्षकी अवस्थासे उन्होंने अखबारोंमें लेख लिखना प्रारंभ कर दिया था; और इनामी निबन्ध लिखकर योग्य इनाम भी प्राप्त किये थे। उस ही वर्ष उन्होंने स्त्री-शिक्षाकी उपयोगिताके बारेमें एक निबन्ध लिखा था।

बारह वर्षकी आयुमें उन्होंने तीन दिनमें घडीके ऊपर तीन-सौ पंक्तियाँ लिख डाली थीं।

तेरह वर्षकी अवस्थामें श्रीमद्‌जी अंग्रेजी पढ़नेके लिए राजकोट गये थे। उन्होंने वहाँ कितने समय तक तथा कहाँतक अंग्रेजी पढी इसकी कोई जानकारी नहीं मिल सकती। परन्तु २३ वें वर्षमें लिखे हुए एक पत्रमें उन्होंने लिखा है:

'शिशुवय से ही इस वृत्तिके उगनेसे किसी प्रकारका परभाषा अभ्यास न कर सका....और वह न हो सका उसके लिए कोई अन्यथा विचार नहीं है। इससे आत्मा

अधिक विकल्पी होता। और विकल्पादि क्लेशका तो नाश करना ही चाहता था। इसलिये जो कुछ हुआ वह कल्याणकारक ही।'

इसी समयमें एक समय कच्छके दीवान मणीभाई जशभाईने श्रीमद्जीसे कच्छ तरफ आनेकी विनती की थी। इससे वे कच्छ गये थे। वहाँ धर्म सम्वन्धी अच्छा व्याख्यान दिया था। उसे सुनकर कच्छके लोग प्रशंसा करते कहने लगे थे कि, यह वालक महाप्रतापी और यशस्वी होगा।

श्रीमद् राजचन्द्रके अक्षर इतने छटादार थे कि लिखनेके लिए उन्हें कच्छ दरवारके मुकाम पर बुलाया जाता था और वे वहाँ जाते थे।

जब श्रीमद्जी दश वर्षके थे उस समय वना हुआ एक प्रसंग उनकी महान सहनशक्तिकी साक्षी देता है। श्रीमद्जीके दादाजी ९८ वर्षकी आयुमें स्वर्गवासी हुए। पंचाणदादा स्वर्गवासी हुए उस समय श्रीमद्जी दश वर्षके थे।

श्मसानमें जाते समय श्रीमद्जी ठठरीके आगे आगे अग्निकी हंडी ले कर चल रहे थे। पाँवमें जूते नहीं थे। उस समय पैरोंमें जूते पहरनेका रिवाज नहीं था।

मार्गमें चलते हुए श्रीमद्जीके पैरमें एक तीक्ष्ण लम्बा काँटा चुभ गया, परन्तु उन्होंने उसकी वेदनाकी ओर ध्यान ही न दिया।

अग्निसंस्कार करके सभी मनुष्य घर वापस आये। माता देवबाईने देखा कि श्रीमद्जी लचकते-लचकते आ र हैं; इससे माताने पूछा, 'भाई, पैरमें क्या लगा है? पै

क्यों इस तरह लचकता है?'

माताने पाँवकी एडी देखी तो उसमें बबूलका एक तीक्ष्ण तथा लम्बा काँटा चुभा हुआ था। यह देखकर माताने पूछा, 'भाई, यह काँटा कहाँसे लगा?'

श्रीमद्जीने कहा, 'माँ, मरघटमें जाते समय मार्गमें लगा है।'

माताने कहा, 'भाई, तूने किसीसे कहकर काँटा क्यों नहीं निकलवा लिया? यहाँ तक यह वेदना कैसे सहन की?'

श्रीमद्जी मौन ही रहे।

तेरह वर्षकी वयसे श्रीमद्जी नियमसे खानगीमें नये-नये विषयोंका अध्ययन करने लगे थे और पन्द्रह वर्षकी आयु तकमें अनेक विषयों सम्बन्धी विलक्षण ज्ञान प्राप्त कर चुके थे।

तेरह वर्ष पूरे होनेके बाद श्रीमद् राजचन्द्र पिताकी दुकान पर बैठने लगे थे। वहाँ भी उन्होंने खेल-कूद या अन्य प्रपंचोंमें अपना समय न गुमाकर वांचन-मनन चालू रखा था। श्रीमद्जी स्वयं इस सम्बन्धमें लिखते हैं, 'दुकान पर रहकर मैंने नाना प्रकारकी मौज मजायें की हैं, अनेक पुस्तकें पढी हैं, राम इत्यादिके चरित्रों पर कवितायें रची हैं....तो भी किसीको मैंने कम अधिक भाव नहीं कहा या किसीको कमज्यादा तौलकर नहीं दिया; यह मुझे बराबर याद है।'

इस प्रकार इतनी छोटी उम्रमें भी उनकी व्यवहारमें नीतिधर्मके ऊपर भार देनेकी स्वाभाविक वृत्ति थी, वह ध्यान देने योग्य है।

अधिक विकल्पी होता। और विकल्पादि क्लेशका तो नाश करना ही चाहता था। इसलिये जो कुछ हुआ वह कल्याणकारक ही।'

इसी समयमें एक समय कच्छके दीवान मणीभाई जशभाईने श्रीमद्जीसे कच्छ तरफ आनेकी विनती की थी। इससे वे कच्छ गये थे। वहाँ धर्म सम्बन्धी अच्छा व्याख्यान दिया था। उसे सुनकर कच्छके लोग प्रशंसा करते कहने लगे थे कि, यह बालक महाप्रतापी और यशस्वी होगा।

श्रीमद् राजचन्द्रके अक्षर इतने छटादार थे कि लिखनेके लिए उन्हें कच्छ दरबारके मुकाम पर बुलाया जाता था और वे वहाँ जाते थे।

जब श्रीमद्जी दश वर्षके थे उस समय बना हुआ एक प्रसंग उनकी महान सहनशक्तिकी साक्षी देता है। श्रीमद्जीके दादाजी ९८ वर्षकी आयुमें स्वर्गवासी हुए। पंचाणदादा स्वर्गवासी हुए उस समय श्रीमद्जी दश वर्षके थे।

श्मसानमें जाते समय श्रीमद्जी ठठरीके आगे आगे अग्निकी हंडी ले कर चल रहे थे। पाँवमें जूते नहीं थे। उस समय पैरोंमें जूते पहरनेका रिवाज नहीं था।

मार्गमें चलते हुए श्रीमद्जीके पैरमें एक तीक्ष्ण लम्बा काँटा चुभ गया, परन्तु उन्होंने उसकी वेदनाकी ओर ध्यान ही न दिया।

अग्निसंस्कार करके सभी मनुष्य घर वापस आये। माता देवबाईने देखा कि श्रीमद्जी लचकते-लचकते आ रहे हैं; इससे माताने पूछा, 'भाई, पैरमें क्या लगा है? पैर

क्यों इस तरह लचकता है?'

माताने पाँवकी एडी देखी तो उसमें ववूलका एक तीक्ष्ण तथा लम्बा काँटा चुभा हुआ था। यह देखकर माताने पूछा, 'भाई, यह काँटा कहाँसे लगा?'

श्रीमद्जीने कहा, 'माँ, मरघटमें जाते समय मार्गमें लगा है।'

माताने कहा, 'भाई, तूने किसीसे कहकर काँटा क्यों नहीं निकलवा लिया? यहाँ तक यह वेदना कैसे सहन की?'

श्रीमद्जी मौन ही रहे।

तेरह वर्षकी वयसे श्रीमद्जी नियमसे खानगीमें नये-नये विषयोंका अध्ययन करने लगे थे और पन्द्रह वर्षकी आयु तकमें अनेक विषयों सम्बन्धी विलक्षण ज्ञान प्राप्त कर चुके थे।

तेरह वर्ष पूरे होनेके वाद श्रीमद् राजचन्द्र पिताकी दुकान पर बैठने लगे थे। वहाँ भी उन्होंने खेल-कूद या अन्य प्रपंचोंमें अपना समय न गुमाकर वांचन-मनन चालू रखा था। श्रीमद्जी स्वयं इस सम्बन्धमें लिखते हैं, 'दुकान पर रहकर मैंने नाना प्रकारकी मौज मजायें की हैं, अनेक पुस्तकें पढी हैं, राम इत्यादिके चरित्रों पर कवितायें रची हैं....तो भी किसीको मैंने कम अधिक भाव नहीं कहा या किसीको कमज्यादा तौलकर नहीं दिया; यह मुझे बराबर याद है।'

इस प्रकार इतनी छोटी उम्रमें भी उनकी व्यवहारमें नीतिधर्मके ऊपर भार देनेकी स्वाभाविक वृत्ति थी, वह ध्यान देने योग्य है।

५

वृद्धों जैसा ज्ञान

जब श्रीमद्जी दश वर्षके थे तब वे एक बार मोरबी गये, वहाँसे अपने ननिहालमें राजकोट जानेका विचार था। इससे मोरबीके कुटुम्बीजन किसी योग्य साथको देखने लगे। उसी समय मोरबीके न्यायाधीश धारसीभाई राजकोट जानेवाले हैं, ऐसी खबर मिली। अतः उन्होंने उनसे पूछा कि, आप रायचन्दको राजकोट अपने साथ ले जायेंगे? उसे राजकोट अपने ननिहालमें जाना है।

धारसीभाईने हाँ कहा और उन्हें अपने साथ राजकोट ले गये।

राजकोट जाते समय मार्गमें धारसीभाईका श्रीमद्के साथ अनेक प्रकारका वार्तालाप हुआ। श्रीमद्जीकी मननीय बातें सुनकर उनको खूब ही आश्चर्य हुआ कि लगभग दस वर्षकी उम्रका यह लडका कितना होशियार है। वृद्धावस्थाके आदमी जो बातें नहीं कर सकते वैसी बुद्धिकी बातें सुनकर धारसीभाईको लगा कि, कैसी इस बालककी चतुराई! उनके गुणोंसे आकर्षित होकर धारसीभाई बोले, 'रायचन्द,

तुम राजकोटमें हमारे साथ ही रहना।'

श्रीमद्ने कहा: 'नहीं, मैं अपने ननिहालमें रहूँगा।'

धारसीभाईने अत्यन्त आग्रह किया, तब श्रीमद् बोले, आपके यहाँ आता रहूँगा, परन्तु निवास तो ननिहालमें ही होगा।

श्रीमद् राजकोट पहुंचे तब ननिहालमें गये। वहाँ मामाने पूछा, 'तुम किसके साथ आये?'

श्रीमद्ने कहा, 'मैं धारसीभाईके साथ आया हूँ।'

दोनों मामाओंने जाना कि धारसीभाई यहाँ आये हैं। इससे वे दोनों मिलकर उनके लिए षड्यंत्र रचनेकी परस्पर प्रपंची बातें करने लगे।

भोजन करते करते श्रीमद् राजचन्द्रने यह सब सुना, इस परसे उन्होंने अनुमान लगाया कि, 'इन दोनों भाइओंकी धारसीभाईके साथ कुछ खटपट है, और इससे वे दोनों उनको मार डालनेका प्रपंच रच रहे हैं, तो मुझे उनके यहाँ जाकर यह महान उपकार करनेका अवसर न चूकना चाहिए। उनको सावधान कर देना योग्य है।' ऐसा विचार कर भोजनके बाद श्रीमद् जलदीसे धारसीभाईके यहाँ गये।

श्रीमद्ने धारसीभाईसे पूछा, 'धारसीभाई, हमारे मामाके साथ आपका कुछ सम्बन्ध है?'

धारसीभाईने उनसे पूछा, 'क्यों?'

श्रीमद्ने कहा, 'मैं पूछता हूं।'

तब धारसीभाई बोले, 'पारिवारिक सम्बन्ध नहीं है,

परन्तु राज सम्बन्धी खटपट चलती है।'

तब श्रीमद्जी बोले, 'यदि ऐसा है तो आपको उनसे सावधान रहना चाहिए। क्योंकि वे आपके लिऐ कोई उपाय ढूंढते थे। आपको ठिकाने पहुंचा देनेकी बात करते थे। इसलिए आप इस विषयमें प्रमादी न रहें।'

धारसीभाईने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'परन्तु तुमने यह कैसे जाना कि वे मेरे लिए ऐसा विचार कर रहे हैं?'

श्रीमद्ने उत्तर दिया, 'मैं भोजन करता था, उस समय बाहर मैं सुन सकूँ इतने जोरसे वे बातें कर रहे थे। और मैं किसके साथ आया हूँ, यह भी उन्होंने जब पूछा तब मैंने आपका नाम लिया। उस परसे उन्होंने यह बात छेडी थी।'

धारसीभाईने पूछा, 'तुम्हारे देखते उन्होंने वैसी बात क्यों की?'

श्रीमद्ने कहा, 'यह छोटा बालक है, वह इन बातोंमें क्या समझे? ऐसा जानकर वे बातें कर रहे थे। इससे मैं आपसे कहने — सावधान करनेके लिए आया हूँ।'

धारसीभाईके मनमें हुआ कि, अहो! इस बालकमें कितनी उपकार बुद्धि! किसी बडे आदमीको भी न सूझे वैसा महाउपकार यह बालक कर रहा है! अच्छा हुआ कि इसे मैं साथमें ले आया। धन्य है इस बालक महात्माको! मेरा धन्य भाग्य कि इसका मुझे संग हुआ! ऐसा विचार कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए।

इसी समयमें ऐसा हुआ कि, कच्छ—कोडायके रहनेवाले

शा. हेमराजभाई तथा नलियाके निवासी शा. मालसीभाई श्रीमद्से मिलनेके लिए ववाणिया आ रहे थे। उन्होंने सुना था कि ववाणिया निवासी कविराज रायचन्दभाई वडे बुद्धिशाली हैं। इनकी प्रसिद्धिसे आकर्षित होकर ये दोनों सज्जन सांडनी पर सवार होकर ववाणियाकी ओर रवाना हुए। ववाणिया आने पर मालूम हुआ कि वे तो मोरबी गये हैं। इससे वे दोनों सज्जन मोरबीकी ओर रवाना हुए। वहाँ ऐसा समाचार मिला कि, रायचन्दभाई अपने ननिहाल राजकोट गये हैं। इस कारण वे मोरबीसे राजकोटकी तरफ चले। इधर श्रीमद् राजचन्द्रने अपने निर्मल ज्ञानमें जाना कि दो कच्छी भाई सांडनी पर सवार होकर मुझसे मिलने आ रहे हैं। अतः श्रीमद् धारसी-भाईके पास जाकर बोले, 'दो सज्जन कच्छसे आनेवाले हैं। उन्हें आप अपने यहाँ स्थान दे सकेंगे?'

धारसीभाईने कहा, 'हाँ, खुशीसे मेरे यहाँ आकर रहें। मैं उनके लिए सब प्रबन्ध कर दूँगा।'

तब इस विषयमें निश्चित होकर श्रीमद् इन भाइयोंके आनेके मार्गमें स्वागतार्थ गये।

जब ये दोनों महाशय समीप आये, तब श्रीमद् राजचन्द्रने बिना जान-पहचानके उनका नाम लेकर उनसे कहा, 'कहिये हेमराजभाई? कहिये मालसीभाई?'

अपना अपना नाम सुनकर वे दोनों सज्जन विचारमें पड़ गये कि, हमारा नाम इन्होंने कहाँसे जाना? हम लोगोंने तो प्रथमसे किसीको अपने आनेकी खबर नहीं दी है।

परन्तु राज सम्बन्धी खटपट चलती है।'

तब श्रीमद्‌जी बोले, 'यदि ऐसा है तो आपको उनसे सावधान रहना चाहिए। क्योंकि वे आपके लिअे कोई उपाय ढूंढते थे। आपको ठिकाने पहुंचा देनेकी बात करते थे। इसलिए आप इस विषयमें प्रमादी न रहें।'

धारसीभाईने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'परन्तु तुमने यह कैसे जाना कि वे मेरे लिए ऐसा विचार कर रहे हैं?'

श्रीमद्‌ने उत्तर दिया, 'मैं भोजन करता था, उस समय बाहर मैं सुन सकूँ इतने जोरसे वे बातें कर रहे थे। और मैं किसके साथ आया हूँ, यह भी उन्होंने जब पूछा तब मैंने आपका नाम लिया। उस परसे उन्होंने यह बात छेडी थी।'

धारसीभाईने पूछा, 'तुम्हारे देखते उन्होंने वैसी बात क्यों की?'

श्रीमद्‌ने कहा, 'यह छोटा बालक है, वह इन बातोंमें क्या समझे? ऐसा जानकर वे बातें कर रहे थे। इससे मैं आपसे कहने—सावधान करनेके लिए आया हूँ।'

धारसीभाईके मनमें हुआ कि, अहो! इस बालकमें कितनी उपकार बुद्धि! किसी बडे आदमीको भी न सूझे वैसा महाउपकार यह बालक कर रहा है! अच्छा हुआ कि इसे मैं साथमें ले आया। धन्य है इस बालक महात्माको! मेरा धन्य भाग्य कि इसका मुझे संग हुआ! ऐसा विचार कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए।

इसी समयमें ऐसा हुआ कि, कच्छ-कोडायके रहनेवाले

शा. हेमराजभाई तथा नलियाके निवासी शा. मालसीभाई श्रीमद्‌से मिलनेके लिए ववाणिया आ रहे थे। उन्होंने सुना था कि ववाणिया निवासी कविराज रायचन्दभाई बडे बुद्धिशाली हैं। इनकी प्रसिद्धिसे आकर्षित होकर ये दोनों सज्जन सांडनी पर सवार होकर ववाणियाकी ओर रवाना हुए। ववाणिया आने पर मालूम हुआ कि वे तो मोरबी गये हैं। इससे वे दोनों सज्जन मोरबीकी ओर रवाना हुए। वहाँ ऐसा समाचार मिला कि, रायचन्दभाई अपने ननिहाल राजकोट गये हैं। इस कारण वे मोरबीसे राजकोटकी तरफ चले। इधर श्रीमद् राजचन्द्रने अपने निर्मल ज्ञानमें जाना कि दो कच्छी भाई सांडनी पर सवार होकर मुझसे मिलने आ रहे हैं। अतः श्रीमद् धारसी-भाईके पास जाकर बोले, 'दो सज्जन कच्छसे आनेवाले हैं। उन्हें आप अपने यहाँ स्थान दे सकेंगे?'

धारसीभाईने कहा, 'हाँ, खुशीसे मेरे यहाँ आकर रहें। मैं उनके लिए सब प्रबन्ध कर दूँगा।'

तब इस विषयमें निश्चित होकर श्रीमद् इन भाइयोंके आनेके मार्गमें स्वागतार्थ गये।

जब ये दोनों महाशय समीप आये, तब श्रीमद् राजचन्द्रने बिना जान-पहचानके उनका नाम लेकर उनसे कहा, 'कहिये हेमराजभाई? कहिये मालसीभाई?'

अपना अपना नाम सुनकर वे दोनों सज्जन विचारमें पड़ गये कि, हमारा नाम इन्होंने कहाँसे जाना? हम लोगोंने तो प्रथमसे किसीको अपने आनेकी खबर नहीं दी है।

यह तो बड़ा भारी आश्चर्य! इससे उन दोनोंने विस्मित होकर पूछा, 'तुमने कैसे जाना कि हमलोग इस समय इसी मार्गसे आ रहे हैं?'

श्रीमद्ने कहा, 'आत्माकी अनन्त शक्ति है, उसके द्वारा हम जानते हैं।'

यह सुनकर वे सज्जन मनमें समझ गये कि, हमलोग इनसे मिलकर, इनके साथ बातचीत करके इन्हें विशेष अध्ययनके लिए काशी भिजवानेकी इच्छासे यहाँ आये हैं। परन्तु ऐसे अजब शक्तिधारी निर्मल आत्माको क्या पढ़ना बाकी है? फिर भी इनसे इस सम्बन्धमें कुछ विनती करके तो देखें।

भोजनके बाद कच्छके इन भाइयोंने धारसीभाईसे कहा, 'हमें रायचन्दभाईके साथ निजी बात करना है, तो ऐसा एकान्त स्थल क्या हमें मिल सकेगा?'

धारसीभाईने वैसा स्थान बताया। वहाँ एकान्तमें बैठकर वे लोग श्रीमद्जीसे बातें करने लगे।

श्रीमद्की बातें सुनकर उनको इनकी अद्भुत शक्तियोंका परिचय हुआ। इससे उन भाइयोंके मनमें आया कि, इनको काशी ले जाकर क्या अधिक ज्ञान देना? फिर भी हमलोग जिस कामके लिए आये हैं उसके लिए कुछ प्रयत्न तो अवश्य करना चाहिए। जो कुछ होना होगा, होगा। हमको अपना स्पष्ट हेतु कह देना चाहिए।

यह विचार करके उन सज्जनोंने अपने मनके विचार उनके सामने उपस्थित किये: 'आपको विद्याध्ययन कराने

काशी ले जानेकी विनती करने हमलोग आये है। आप काशी चलिये। आपके खाने-पीने, रहने-करनेकी सव व्यवस्था हम कर देंगे। यदि आप हमारे साथ चलें तो बड़ा उपकार होगा।' इस प्रकार अनेक लालच देकर साथमें ले जानेका प्रयत्न किया।

परन्तु श्रीमद्‌ने इनकार करते हुए कहा कि, मेरा वहाँ जाना न वन सकेगा।

इससे वे भाई समझ गये कि, प्रथमसे जो अनुमान लगाया था कि अपना विचार सफल न होगा, वैसा ही हुआ, इनको काशी जाकर क्या अधिक सीखना है!

तत्पश्चात्‌ वे दोनों सज्जन धारसीभाईके पास गये। इससे धारसीभाईने कहा, 'रायचन्दभाईके साथ हुई बात-चीत यदि मुझे कहने योग्य हो तो आप लोग कहिये।'

हेमराजभाई बोले, 'छिपाने जैसी कोई बात नहीं है। परन्तु हम लोग अपने विचारमें सफल न हुए।'

धारसीभाईने फिर पूछा, 'सफल क्यों न हुए।' उसके उत्तरमें उन्होंने उनको सारा प्रसंग कह सुनाया और कहा, 'हमने इन्हें प्रथमसे अपने आनेकी कोई सूचना नहीं दी थी तो भी ये स्वयमेव मार्गमें सन्मुख आये, हमें नामपूर्वक वुलाया, यहाँ सव तैयारी कराई। यह तो कोई आश्चर्यकारी महापुरुष हैं!'

यह सुनकर धारसीभाईको आनन्द सहित आश्चर्य हुआ। उन्हें तो प्रथम ऐसा लगा था कि रायचंदभाई इस समय भूल कर रहे हैं। इतना अधिक सुविधा कर देनेके लिए

जब ये लोग तैयार हैं, तो हाँ क्यों नहीं कहते? उनको अध्ययनके लिए काशी जाना चाहिए। परन्तु बाद की सत्य घटनासे समझे कि जो व्यक्ति इतनी-सी थोडी आयुमें इस प्रकारकी अजब शक्तिवाला है, उसे पढ़कर भी क्या करना है? और इनकी गंभीरता भी कितनी है, कि सागरके समान सब समा सकते हैं, लेशमात्र भी नहीं छलकते।

इस तरह धारसीभाई जैसे महान न्यायाधीशको श्रीमद्के ज्ञानादि गुणकी यथार्थ महत्ता लगी, इससे 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिंगं न च वयः।' इस न्यायके अनुसार धारसीभाई प्रथम श्रीमद्को अपने साथ गद्दी पर बैठाते, इसके बदले जबसे उनको यह महापुरुष है ऐसी प्रतीति हुई तबसे वे उन्हें गद्दीतकियेसे टिककर बैठाते और स्वयं उनके सामने नीचे बैठते। इस तरह वे पूज्यभाव धारण कर विनयका पालन करते। और तत्पश्चात् जैसे-जैसे श्रीमद्के साथका सत्समागम बढ़ता गया, वैसे-वैसे धारसी-भाईका श्रीमद्के प्रति श्रद्धाभाव बढता गया। और अन्तमें श्रीमद् राजचन्द्रको परमकृपालु सद्गुरु मानकर उनकी शरण ग्रहण की।

श्रीमद्का वापस ववाणिया जानेका विचार हुआ। उस समय उनके ननिहालवालोंने मिठाईका एक डिब्बा भरकर मार्गमें नाश्ता करनेके लिए रख दिया था। उसे लेकर तथा सबसे अनुमति लेकर श्रीमद् ववाणिया तरफ चले। धारसी-भाईसे मिलकर उनकी भी अनुमति ली थी।

परन्तु उस समय श्रीमद्के पास गाडीके किरायेके लिए

पैसे नहीं थे। इससे उन्होंने एक हलवाईके यहाँ डिब्बेकी मिठाई बेचकर किरायेके पैसे प्राप्त किये। धारसीभाईसे इतनी पहचान होने पर भी उनसे कुछ भी मांग न की तथा उधार भी पैसे न मांगे। छोटी-सी वय होने पर भी समझदार गृहस्थकी तरह समझशक्ति थी कि,

'मरजाऊँ मागूँ नहि, अपने तनके काज;
परमारथके कारण मागूँ, ना मैं समजुं लाज।'

कच्छके भाइयोंको किसी प्रकारका कष्ट न हो, इसके लिए धारसीभाईसे श्रीमद्ने विनती की और उन लोगोंके आदर-सत्कारका प्रबन्ध किया। परन्तु अपने लिए किरायेके थोडे भी पैसे किसीसे न मांगे। किसीके सामने हाथ धर-कर उन्होंने दीनभाव नहीं दिखाया।

जब ये लोग तैयार हैं, तो हाँ क्यों नहीं कहते? उनको अध्ययनके लिए काशी जाना चाहिए। परन्तु बाद की सत्य घटनासे समझे कि जो व्यक्ति इतनी-सी थोडी आयुमें इस प्रकारकी अजब शक्तिवाला है, उसे पढ़कर भी क्या करना है? और इनकी गंभीरता भी कितनी है, कि सागरके समान सब समा सकते हैं, लेशमात्र भी नहीं छलकते।

इस तरह धारसीभाई जैसे महान न्यायाधीशको श्रीमद्के ज्ञानादि गुणकी यथार्थ महत्ता लगी, इससे 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिंगं न च वयः।' इस न्यायके अनुसार धारसीभाई प्रथम श्रीमद्को अपने साथ गद्दी पर बैठाते, इसके बदले जबसे उनको यह महापुरुष है ऐसी प्रतीति हुई तबसे वे उन्हें गद्दीतकियेसे टिककर बैठाते और स्वयं उनके सामने नीचे बैठते। इस तरह वे पूज्यभाव धारण कर विनयका पालन करते। और तत्पश्चात् जैसे-जैसे श्रीमद्के साथका सत्समागम बढ़ता गया, वैसे-वैसे धारसी-भाईका श्रीमद्के प्रति श्रद्धाभाव बढता गया। और अन्तमें श्रीमद् राजचन्द्रको परमकृपालु सद्गुरु मानकर उनकी शरण ग्रहण की।

श्रीमद्का वापस ववाणिया जानेका विचार हुआ। उस समय उनके ननिहालवालोंने मिठाईका एक डिब्बा भरकर मार्गमें नाश्ता करनेके लिए रख दिया था। उसे लेकर तथा सबसे अनुमति लेकर श्रीमद् ववाणिया तरफ चले। धारसी-भाईसे मिलकर उनकी भी अनुमति ली थी।

परन्तु उस समय श्रीमद्के पास गाडीके किरायेके लिए

पैसे नहीं थे। इससे उन्होंने एक हलवाईके यहाँ डिब्बेकी मिठाई बेचकर किरायेके पैसे प्राप्त किये। धारसीभाईसे इतनी पहचान होने पर भी उनसे कुछ भी मांग न की तथा उधार भी पैसे न मांगे। छोटी-सी वय होने पर भी समझदार गृहस्थकी तरह समझशक्ति थी कि,

'मरजाऊँ मागूँ नहि, अपने तनके काज;
परमारथके कारण मागूँ, ना मैं समजुं लाज।'

कच्छके भाइयोंको किसी प्रकारका कष्ट न हो, इसके लिए धारसीभाईसे श्रीमद्ने विनती की और उन लोगोंके आदर-सत्कारका प्रबन्ध किया। परन्तु अपने लिए किरायेके थोडे भी पैसे किसीसे न मांगे। किसीके सामने हाथ धरकर उन्होंने दीनभाव नहीं दिखाया।

६

अवधान शक्ति

संवत् १९४०के अरसेमें श्रीमद् राजचन्द्रमें एक दूसरी अद्भुत शक्तिका दर्शन होता है।

ववाणिया गाँव छोटा-सा होनेसे इनका मन प्रवासके लिए आतुर रहा करता था। और ववाणियामें सुज्ञ, विद्वान मनुष्योंका समागम भी थोडा मिलता, इस कारण कहीं बाहर जानेकी इनकी इच्छा रहा करती थी। संवत् १९४०के अरसेमें श्रीमद् मोरबी गये थे।

उस समय मोरबीमें शास्त्री शंकरलाल माहेश्वर भट्ट जाहिरमें अष्टावधानके प्रयोग करके बताते थे। अष्टावधान अर्थात् आठ भिन्न भिन्न विषयोंकी ओर एकही साथ लक्ष्य रखकर भूल बिना आठ आठ क्रियाओंको कर बताना।

इसी समयमें बम्बईमें गट्टुलाल महाराज भी अष्टावधानके प्रयोग करते थे।

उस समयके जानकारी, अनुसार हिन्दुस्तानमें ये दो पुरुष ही इस प्रकारकी चमत्कारी शक्तिवाले माने जाते थे।

श्रीमद् मोरबी आये हुए थे, उस समय जैनोंके उपा-

श्रयमें शास्त्री शंकरलालने आठ अवधान किये। वणिक्भूषण कविराजके तौर पर ख्यातिप्राप्त श्रीमद्को भी अष्टावधानोंको देखनेके लिए आमंत्रण दिया गया था।

श्रीमद्की स्मरणशक्ति अद्भुत तो थी ही। इससे उन्होंने अवधान देखे और तुरन्त सीख लिए।

दूसरे दिन वसन्तवागमें प्रथम अपनी मित्र-मंडली समक्ष नये नये विषयोंको लेकर अवधान कर बताये। तत्पश्चात् दो हजार प्रेक्षकोंके समक्ष बारह अवधान कर दिखाये।

इस समय बम्बईके सेठ लक्ष्मीदास खीमजीभाई मोरबी आये हुए थे। हाईस्कूलमें एक बडी सभा भरके श्रीमद्ने उन्हें बारह अवधान करके बताये। उनकी ऐसी अपूर्व शक्ति देखकर सेठ लक्ष्मीदासने कहा, 'इस समय भारतमें यह एक ही पुरुष इतनी शक्तिवाला है।' उस अवसर पर श्रीमद्को अच्छा पुरस्कार भी दिया गया था।

इसके बाद एक बार श्रीमद् निजी कामके कारण जामनगर गये थे। वहाँ उन्होंने विद्वानोंकी दो सभाओंमें अनुक्रमसे बारह और सोलह अवधान कर बताये। इससे सभी प्रेक्षक मुग्ध हुए थे। यहाँ उनको 'हिन्दका हीरा' बिरुद दिया गया था। उस समय जामनगरमें दो विद्वान् आठ-दस वर्षोंसे अवधान करनेके लिए तनतोड परिश्रम कर रहे थे, परन्तु सफल नहीं होते थे। इस कारण वहाँके विद्वानोंको सोलह अवधान करनेवाले श्रीमद्के प्रति बहुमान और आश्चर्य उत्पन्न हुआ।

इसके बाद वढवाणकी प्रदर्शिनीमें श्रीमद्ने कर्नल एच.

६

अवधान शक्ति

संवत् १९४०के अरसेमें श्रीमद् राजचन्द्रमें एक दूसरी अद्भुत शक्तिका दर्शन होता है।

ववाणिया गाँव छोटा-सा होनेसे इनका मन प्रवासके लिए आतुर रहा करता था। और ववाणियामें सुज्ञ, विद्वान मनुष्योंका समागम भी थोडा मिलता, इस कारण कहीं बाहर जानेकी इनकी इच्छा रहा करती थी। संवत् १९४०के अरसेमें श्रीमद् मोरबी गये थे।

उस समय मोरबीमें शास्त्री शंकरलाल माहेश्वर भट्ट जाहिरमें अष्टावधानके प्रयोग करके बताते थे। अष्टावधान अर्थात् आठ भिन्न भिन्न विषयोंकी ओर एकही साथ लक्ष्य रखकर भूल बिना आठ आठ क्रियाओंको कर बताना।

इसी समयमें बम्बईमें गट्टुलाल महाराज भी अष्टावधानके प्रयोग करते थे।

उस समयके जानकारी, अनुसार हिन्दुस्तानमें ये दो पुरुष ही इस प्रकारकी चमत्कारी शक्तिवाले माने जाते थे।

श्रीमद् मोरबी आये हुए थे, उस समय जैनोंके उपा-

श्रयमें शास्त्री शंकरलालने आठ अवधान किये। वणिक् भूषण कविराजके तौर पर ख्यातिप्राप्त श्रीमद्को भी अष्टावधानोंको देखनेके लिए आमंत्रण दिया गया था।

श्रीमद्की स्मरणशक्ति अद्भुत तो थी ही। इससे उन्होंने अवधान देखे और तुरन्त सीख लिए।

दूसरे दिन वसन्तबागमें प्रथम अपनी मित्र-मंडली समक्ष नये नये विषयोंको लेकर अवधान कर बताये। तत्पश्चात् दो हजार प्रेक्षकोंके समक्ष बारह अवधान कर दिखाये।

इस समय बम्बईके सेठ लक्ष्मीदास खीमजीभाई मोरबी आये हुए थे। हाईस्कूलमें एक बडी सभा भरके श्रीमद्ने उन्हें बारह अवधान करके बताये। उनकी ऐसी अपूर्व शक्ति देखकर सेठ लक्ष्मीदासने कहा, 'इस समय भारतमें यह एक ही पुरुष इतनी शक्तिवाला है।' उस अवसर पर श्रीमद्को अच्छा पुरस्कार भी दिया गया था।

इसके बाद एक बार श्रीमद् निजी कामके कारण जामनगर गये थे। वहाँ उन्होंने विद्वानोंकी दो सभाओंमें अनुक्रमसे बारह और सोलह अवधान कर बताये। इससे सभी प्रेक्षक मुग्ध हुए थे। यहाँ उनको 'हिन्दका हीरा' बिरुद दिया गया था। उस समय जामनगरमें दो विद्वान् आठ-दस वर्षोंसे अवधान करनेके लिए तनतोड परिश्रम कर रहे थे, परन्तु सफल नहीं होते थे। इस कारण वहाँके विद्वानोंको सोलह अवधान करनेवाले श्रीमद्के प्रति बहुमान और आश्चर्य उत्पन्न हुआ।

इसके बाद वढवाणकी प्रदर्शिनीमें श्रीमद्ने कर्नल एच.

एल. नट साहब और अनेक राजा रजवाडे तथा मित्र-मंडल इत्यादिसे मिलकर लगभग दो हजार प्रेक्षकोंके सामने सोलह अवधान कर दिखाये थे। यह देखकर सारी सभा आनन्द-मग्न हो गई थी। सभी सभाजन श्रीमद्की अलौकिक शक्तिकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते थे। लगातार प्रशंसाके व्याख्यान हो रहे थे। 'गुजराती', 'बम्बई समाचार', 'लोकमित्र', 'न्याय दर्शक' आदि अखबारोंमें भी श्रीमद्का यशोगान होने लगा।

एक बार श्रीमद् बोटाद गये थे। वहाँ उन्होंने बावन अवधान, किसी भी खास परिश्रम वा पूर्वतैयारी किये बिना कर दिखाये थे। इस प्रकार सोलह अवधानके बाद एकदम बावन अवधान सहजमें कर दिखाये, इससे उनकी अद्भुत शक्ति देखकर लोग खूब ही प्रसन्न हुए।

इन बावन अवधानोंका थोडा-सा ख्याल नीचेकी हकीकत परसे आ सकेगा:

१	तीन मनुष्योंके साथ चौपड़ खेलते जाना	१
२	तीन मनुष्योंके साथ गंजीफा खेलते जाना	१
३	एक मनुष्यके साथ शतरंज खेलते जाना	१
४	झालरकी टकोरें गिनते जाना	१
५	जोड, बाकी, गुणा और भागको मनमें करते जाना	४
६	मालाके दानोंकी लक्ष्यपूर्वक गिनती करना	१
७	आठ नई समस्याओंकी पूर्ति करना	८
८	सोलह नये सूचित विषयोंकी मध्यस्थोंके द्वारा कहे छन्दमें रचना करते जाना	१६

९ ग्रीक, अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी, लेटिन, ऊर्दू, गुर्जर, मराठी, बंगला, मरु, जाडेजी आदि सोलह भाषाओंके अनुक्रमविहीन चार सौ शब्दोंको कर्त्ता, कर्म युक्त अनुक्रमसे कह जाना। बीच-बीचमें अन्य काम भी करते जाना १६

१० विद्यार्थीको समझाना। १

११ दो अलंकारोंका विचार करना २

—

५२

इस प्रकार बावन कार्योंका प्रारंभ एक साथ करना, एक कार्यका कुछ अंश करके, दूसरे कार्यका कुछ अंश करना, फिर तीसरेका, फिर चौथेका........और फिर पहला कार्य करना, इस तरह सभी बावन कार्य पूर्ण होने तक करते रहना, इसमें न किसी से कुछ पूछना और न कागज आदि पर लिखना।

भाषाके अनुक्रमविहीन शब्दोंको क्रमवद्ध करनेका यहाँ एक उदाहरण देते हैं।

संस्कृतके अनुक्रमविहीन अक्षर :

स्ति	क्तो	ण्णा	स्व	स्व	र्ग	स्ति	क्त:	तृ	क्ष	ब
हि	वि	यो	वि	वा	को	प	नु	र	रो	को
घो	मा	को	मु	ष	गी	क:	रा	वा	वि	प
म	कि	य:	दं	द्धो	ये	वि	न	ह:	र	दे

श्रीमद् द्वारा अनुक्रमसहित किया गया श्लोक :

बद्धो हि को यो विषयानुरागी
को वा विमुक्तो विषये विरक्तः ।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ॥

गुजरातीका अनुक्रमविहीन स्वरूप :

त	त्नो	ष्टि	ना	आ	जु	आ	सृ	था
शो	जे	प	द	ए	य	जो	थी	छ
र	सु	ने	भि	ई	नं	ह	वां	छे

श्रीमद्जीने इन अक्षरोंको यथास्थान रखकर कहा :

आपना जेवां रत्नोथी हजु सृष्टि सुशोभित छे, ए जोईने आनंद थाय छे।

(आप जैसे रत्नोंसे अभी सृष्टि सुशोभित है, यह देखकर आनन्द होता है।)

संवत् १९४३ में श्रीमद् राजचन्द्र बम्बईमें थे। वहाँ शतावधान — सौ अवधान करनेकी अपनी अद्‌भुत शक्तिका परिचय फरामजी इन्स्टिटच्यूट तथा अन्य स्थलोंमें कराया था।

श्रीमद्‌की सौ अवधानकी शक्तिसे सभी लोग मुग्ध हो गये थे। उन्हें उस समय एक सुवर्णचन्द्रक दिया गया था और 'साक्षात् सरस्वती'की पदवीसे सुशोभित किया गया था। इससे इनकी कीर्ति सर्वत्र प्रसरित होने लगी थी। 'टाइम्स

आफ इन्डिया', 'पायोनियर' आदि मुख्य अखबारोंने श्रीमद्की खूब प्रशंसा की।

उन्नीस वर्षकी वयवाले एक बुद्धिशाली, तेजस्वी युवककी ऐसी अद्भुत मानसिक शक्ति देखकर डॉ. पिटरसन आदि पाश्चात्य विद्वान् आश्चर्यचकित हो ग े। वम्बईके हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्टने तो श्रीमद्से युरोप जाकर अपनी इस विस्मयकारक शक्तिके प्रयोगोंको वतानेका आग्रहपूर्ण सूचन किया। परन्तु श्रीमद् वहाँ जानेके लिए तैयार नहीं हुए। क्योंकि उन्होंने विचारा कि युरोपमें जैनधर्मानुसार रहना कठिन है।

अवधान के सिवाय श्रीमद् अलौकिक स्पर्शनेन्द्रिय शक्ति-वाले भी थे। उनको प्रथम भिन्न-भिन्न आकारकी एक दर्जन पुस्तकें दिखानेमें आई तथा साथमें उनके नाम वता दिये गये इसके वाद उनकी आँखों पर कपडेकी एक मोटी पट्टी वांध दी गई। और फिर एकके वाद एक जुदे-जुदे क्रममें उन पुस्तकोंको इनके हाथमें दिया गया। श्रीमद् राजचन्द्र पुस्तकका स्पर्श करके उसके आकार परसे प्रत्येक पुस्तकका नाम कह देते थे।

इसी प्रकार इनमें अन्य शक्तियोंका भी विकास दृष्टि-गोचर होता है। रसोईको देखकर, चखे विना और हाथसे स्पर्श किये विना, कौनसी वानगीमें नमक कम है या अधिक अथवा नहीं है, इस वातको श्रीमद्जी कह सकते थे।

अमुक मनुष्य किस हाथसे पगडी वांधता है यह वात भी श्रीमद् उसके सिरकी आकृति देखकर परख जाते थे।

श्रीमद् द्वारा अनुक्रमसहित किया गया श्लोक :

वद्धो हि को यो विषयानुरागी
को वा विमुक्तो विषये विरक्तः ।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ॥

गुजरातीका अनुक्रमविहीन स्वरूप :

त	त्नो	ष्टि	ना	आ	जु	आ	सृ	था
शो	जे	प	द	ए	य	जो	थी	छ
र	सु	ने	भि	ई	नं	ह	वां	छे

श्रीमद्जीने इन अक्षरोंको यथास्थान रखकर कहा :

आपना जेवां रत्नोथी हजु सृष्टि सुशोभित छे, ए जोईने आनंद थाय छे।

(आप जैसे रत्नोंसे अभी सृष्टि सुशोभित है, यह देखकर आनन्द होता है।)

संवत् १९४३ में श्रीमद् राजचन्द्र बम्बईमें थे। वहाँ शतावधान — सौ अवधान करनेकी अपनी अद्भुत शक्तिका परिचय फरामजी इन्स्टिटचूट तथा अन्य स्थलोंमें कराया था।

श्रीमद्की सौ अवधानकी शक्तिसे सभी लोग मुग्ध हो गये थे। उन्हें उस समय एक सुवर्णचन्द्रक दिया गया था और 'साक्षात् सरस्वती'की पदवीसे सुशोभित किया गया था। इससे इनकी कीर्ति सर्वत्र प्रसरित होने लगी थी। 'टाइम्स

आफ इन्डिया', 'पायोनियर' आदि मुख्य अखबारोंने श्रीमद्‌की खूब प्रशंसा की।

उन्नीस वर्षकी वयवाले एक बुद्धिशाली, तेजस्वी युवककी ऐसी अद्‌भुत मानसिक शक्ति देखकर डॉ. पिटरसन आदि पाश्चात्य विद्वान् आश्चर्यचकित हो ग े। बम्बईके हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्टने तो श्रीमद्‌से युरोप जाकर अपनी इस विस्मयकारक शक्तिके प्रयोगोंको बतानेका आग्रहपूर्ण सूचन किया। परन्तु श्रीमद् वहाँ जानेके लिए तैयार नहीं हुए। क्योंकि उन्होंने विचारा कि युरोपमें जैनधर्मानुसार रहना कठिन है।

अवधान के सिवाय श्रीमद् अलौकिक स्पर्शनेन्द्रिय शक्ति-वाले भी थे। उनको प्रथम भिन्न-भिन्न आकारकी एक दर्जन पुस्तकें दिखानेमें आई तथा साथमें उनके नाम बता दिये गये इसके बाद उनकी आँखों पर कपडेकी एक मोटी पट्टी बांध दी गई। और फिर एकके बाद एक जुदे-जुदे क्रममें उन पुस्तकोंको इनके हाथमें दिया गया। श्रीमद् राजचन्द्र पुस्तकका स्पर्श करके उसके आकार परसे प्रत्येक पुस्तकका नाम कह देते थे।

इसी प्रकार इनमें अन्य शक्तियोंका भी विकास दृष्टि-गोचर होता है। रसोईको देखकर, चखे बिना और हाथसे स्पर्श किये बिना, कौनसी खानगीमें नमक कम है या अधिक अथवा नहीं है, इस बातको श्रीमद्‌जी कह सकते थे।

अमुक मनुष्य किस हाथसे पगडी बांधता है यह बात भी श्रीमद् उसके सिरकी आकृति देखकर परख जाते थे।

श्रीमद् स्वयं अन्दर घरमें बैठे हों और पगडी बांधनेवाला मनुष्य यदि बाहर जाकर पगडी बांधता हो तो वह मनुष्य जिस मरोडकी बांधता हो, इस बातको श्रीमद् घरमें बैठे-बैठे कह देते थे।

इसका कारण पूछने पर श्रीमद् कहते थे कि, 'अन्तःकरणकी शुद्धि के सिवाय कुछ नहीं हो सकता। सिखानेसे नहीं आता।'

बीस वर्षकी अवस्थाके बाद श्रीमद् राजचन्द्रने इन अवधानोंका करना एकदम बन्द कर दिया था। क्योंकि स्मरणशक्तिके प्रतापरूप इस अवधान प्रवृत्तिका बढ़ता हुआ चमत्कार आत्मोन्नतिरक्त और अन्तर्मुख वृत्तिवाले श्रीमद्को प्रिय न लगा। आत्मोन्नति और चमत्कार दोनों भिन्न लगनेसे — सन्मार्गरोधक प्रतीत होनेसे — श्रीमद् राजचन्द्रकी अन्तरंग वैराग्यमय, उदासीन तथा सत्यसुखशोधक भावना इस प्रवृत्तिको विस्तृत न कर, शान्त कर देती है।

हमको इसमें श्रीमद् राजचन्द्रकी महत्ताका प्रत्यक्ष दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

इतनी अपूर्व और आश्चर्यजनक अवधानशक्ति कि जिसके द्वारा हजारों और लाखों लोगोंको चकित कर अनुयायी बनाया जा सकता था, असाधारण प्रतिष्ठा और अर्थलाभ सिद्ध किया जा सकता था, (वह) होते हुए भी श्रीमद् राजचन्द्रने इन सबका प्रयोग योगविभूतियोंके समान हेय मानकर उसका उपयोग अन्तर्मुख कार्यकी ओर किया, यह अन्य किसी साधारण मनुष्यसे नहीं बन सकता।

श्रीमद्की यह अजब अवधानशक्ति इनकी असाधारण स्मृतिका प्रमाण है। इसमें भी उनकी कितनी ही विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि अन्य अवधानियोंकी तरह इनके अवधानकी संख्या केवल संख्या–वृद्धिके लिए ही बढी नहीं थी, परन्तु अन्य अवधानियोंको इस शक्तिकी प्राप्तिके लिए तथा उसको विकसित करनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न करने पड़ते हैं, जब कि श्रीमद्में इस शक्तिका विकास' सहज और स्वाभाविक रूपसे देखनेको मिलता है। खास महत्त्वकी विशेषता यह है कि, श्रीमद्की अवधान-शक्ति बुद्धिदोषसे लेशमात्र भी निष्फल नहीं हुई थी, उलटा इसमेंसे विशिष्ट सर्जनबल प्रगटित हुआ था, जो अन्य अवधानियोंमें नहीं दिखाई देता। इसका मुख्य कारण यह कहा जा सकता है कि श्रीमद्में रहे हुए प्रज्ञागुणका ही यह एक व्यक्त स्वरूप था।

अब हम यहाँ, निर्मल अन्तःकरणके फलरूप जो शक्ति श्रीमद्में प्रगट हुई थी उसका भी जरा विचार कर लें। यह शक्ति भविष्यमें बननेवाले प्रसंगका या सामनेके मनुष्यके चित्तमें उत्पन्न होनेवाले विचारोंका पूर्वज्ञान है। ऐसा एक प्रसंग हम आगे शा. हेमराजभाई और शा. मालसी-भाईके विवरणमें देख चुके हैं। ऐसा ही दूसरा प्रसंग अब हम श्री सौभाग्यभाईके विषयमें आगे देख सकेंगे। यहाँ हमें दूसरे कितने ही प्रसंगोंका विचार करना है।

ववाणियामें देसाई वीरजी रामजी रहते थे। एक समय वीरजी देसाई और श्रीमद् साथमें घूमने गये। रास्तेमें

श्रीमद्‌ने वीरजीभाईसे पूछा, 'वीरजीकाका, यदि हमारी काकीको कुछ हो जाय तो आप दूसरी बार शादी करेंगे?'

वीरजीभाईने कुछ जवाब न दिया।

थोडे दिनोंके बाद वीरजीभाईकी पत्नीका स्वर्गवास हो गया। इसके बाद दूसरी वार श्रीमद्‌को वीरजीभाईके साथ घूमनेका मौका मिला। श्रीमद्‌ने पूछा, 'वीरजीकाका, क्या अब आप शादी करेंगे?'

वीरजीभाईने ऊपरसे मना किया, परन्तु जरा मुंह मुसकराया। अर्थात् उनकी फिरसे शादी करनेकी अन्तरंग इच्छा थी।

श्रीमद्‌ने कहा, 'आप छः महीने बाद शादी करना।'

छः महीने बीते। श्रावण वदी छट्ठ—रांधन छट्ठके दिन वीरजीभाई बाहरसे घर आये, तब उन्हें नालीमें सांपने काट खाया। विष उतारनेकी खूब मेहनत की गयी, परन्तु कर्मवशात् सभी व्यर्थ हुई।

तब वीरजीने कहा, 'मेरा चोविहार (रातमें चार प्रकारके आहारका त्याग) न तुड़ाना। मुझे कहनेवालेने कह दिया है।'

* *

एक समय रवजीभाई चमनपर जाते थे, तब श्रीमद्‌ने कहा, 'बापा, आप आज चमनपर न जायें तो अच्छा।'

फिर भी रवजीभाई गये।

शामको दीयाबत्तीके समय श्रीमद्‌के छोटे भाई मनसुख-भाईको रसोई-घरमें जानेसे दीयेकी झाल लगी और उनका

कुर्ता जलने लगा। वहाँ झबकबहिन उपस्थित थीं, उन्होंने एकदम मट्ठेकी दोहनी मनसुखभाईके शरीर पर डाल दी। मनसुखभाईकी छाती जल गई थी।

उसी समय रवजीभाईको बुलानेके लिए चमनपर एक आदमी भेजा गया।

* *

ववाणियामें एक गरासिया बापु एक समय घोडी पर सवार होकर घूमने निकले।

श्रीमद्‌ने उनसे कहा, 'बापु, आज आप घोडी लेकर घूमने न जायें।'

श्रीमद्‌के अधिक कहने पर भी वे नहीं माने और घोडी लेकर गाँवके बाहर गये।

वहाँ घोडीने ऊधम मचाया। गरासियाबापुको जमीन पर गिरा दिया। उन्हें दो चार मनुष्य कपडेकी झोलीमें सुलाकर घर लाये। इससे गरासियाबापुका शीघ्र देहान्त हो गया।

* *

किसी समय श्रीमद्‌के भक्त काविठावाले शा. झवेरभाई सं. १९५३के पोष मासमें स्वजन, सम्बन्धी तथा अन्य मुमुक्षुओंके साथ श्रीमद्‌के दर्शनार्थ ववाणियाके लिये रवाना हुए।

वहाँ तो मोरबी स्टेशन पर एक मनुष्य इन लोगोंके सामने मिलने आया। उसने श्रीमद्‌का सन्देश कहते हुए कहा, 'साहबजी यहाँ हैं। आप लोगोंको लेनेके लिये

मुझे भेजा है।'

शाह झवेरभाईने आश्चर्यपूर्वक पूछा, 'कृपालुदेवने यह कैसे जाना?'

आनेवाले भाईने कहा, 'इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। ववाणिया जाते हुए आप लोगोंको रोक कर यहाँ लानेके लिए कहा है।'

* *

काविठामें उत्तरकी ओर वागडिया तलाब नामका एक स्थान है, वहाँ एक समय श्रीमद् मुमुक्षुओंके समक्ष ज्ञान-वार्ता कर रहे थे। इतनेमें वहींके रहनेवाले एक पाटीदार शामलभाईने, समीपके अपने खेतमेंसे मोगराके थोडे-से पुष्प लाकर भक्तिभावसे श्रीमद्की बैठकके ऊपर रखे।

यह देखकर श्रीमद् बोले, 'सहज कारणमें इतने अधिक फूल न तोड़ना चाहिए।' पश्चात् थोडी देर रुक कर श्रीमद् बोले, 'तुम्हारी पुत्री हीराको कल आराम हो जायगा।'

काविठासे तीन कोस दूर सिहोल गाँवमें शामलभाईकी लड़की अपनी ससुरालमें बहुत दिनोंसे बीमार थी। वहाँ शामलभाई उसे देखने गये, तो आराम हो गया था।

श्रीमद् शामलभाई पटेल तथा उसकी लड़कीको नहीं पहचानते थे।

श्रीमद्में इस प्रकारकी अनेक अलौकिक विभूतियोंका साक्षात्कार हुआ देखकर हम लोगोंको भी आत्माकी अनन्त शक्तियोंकी प्रतीति होती है। 'आत्मसिद्धि शास्त्र'में श्रीमद्ने

यथार्थ ही कहा है:

'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन,
स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिए केटलुं?
कर विचार तो पाम.'

(तू शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यस्वरूप, स्वयंज्योति-प्रकाशक और सुखका धाम है। विशेष हम कितना कहें? संक्षेपमें इतना ही कहना है कि यदि तू विचार करेगा, तो उस पदको प्राप्त करेगा।)

मुझे भेजा है।'

शाह झवेरभाईने आश्चर्यपूर्वक पूछा, 'कृपालुदेवने यह कैसे जाना?'

आनेवाले भाईने कहा, 'इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। ववाणिया जाते हुए आप लोगोंको रोक कर यहाँ लानेके लिए कहा है।'

* *

काविठामें उत्तरकी ओर वागडिया तलाब नामका एक स्थान है, वहाँ एक समय श्रीमद् मुमुक्षुओंके समक्ष ज्ञान-वार्ता कर रहे थे। इतनेमें वहींके रहनेवाले एक पाटीदार शामलभाईने, समीपके अपने खेतमेंसे मोगराके थोडे-से पुष्प लाकर भक्तिभावसे श्रीमद्की बैठकके ऊपर रखे।

यह देखकर श्रीमद् बोले, 'सहज कारणमें इतने अधिक फूल न तोड़ना चाहिए।' पश्चात् थोडी देर रुक कर श्रीमद् बोले, 'तुम्हारी पुत्री हीराको कल आराम हो जायगा।'

काविठासे तीन कोस दूर सिहोल गाँवमें शामलभाईकी लड़की अपनी ससुरालमें बहुत दिनोंसे बीमार थी। वहाँ शामलभाई उसे देखने गये, तो आराम हो गया था।

श्रीमद् शामलभाई पटेल तथा उसकी लड़कीको नहीं पहचानते थे।

श्रीमद्में इस प्रकारकी अनेक अलौकिक विभूतियोंका साक्षात्कार हुआ देखकर हम लोगोंको भी आत्माकी अनन्त शक्तियोंकी प्रतीति होती है। 'आत्मसिद्धि शास्त्र'में श्रीमद्ने

यथार्थ ही कहा है:

'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन,
स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिए केटलुं?
कर विचार तो पाम.'

(तू शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यस्वरूप, स्वयंज्योति-प्रकाशक और सुखका धाम है। विशेष हम कितना कहें? संक्षेपमें इतना ही कहना है कि यदि तू विचार करेगा, तो उस पदको प्राप्त करेगा।)

७

७

कुमार-कालकी विचारसमृद्धि

श्रीमद् राजचन्द्रने बीस वर्षकी अवस्थामें गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। इससे पहलेकी इनकी विचार-भूमिकाको समझना आवश्यक है। कुमार अवस्थामें उनके विचार कैसी उच्च और आत्मोन्नतिकर कक्षामें पहुंचे थे यदि इसका अवलोकन करें तो इतनी छोटी वयमें भी श्रीमद्ने कैसी विचारसमृद्धि प्राप्त की थी, इसका ख्याल (विचार) आ सकता है।

हम देख चुके हैं कि छुटपनसे ही श्रीमद् राजचन्द्रमें विवेक, वैराग्य और धर्मभावनाके साथ-साथ संसारमें विजय प्राप्त करा सकें ऐसी अद्भुत शक्तियाँ तथा महेच्छायें थीं। इस कारणसे श्रीमद्को प्रारंभसे ही एक प्रकारके आन्तर युद्धमें उतरना पड़ा था। और इससे उनकी विचारशक्ति अत्यन्त तीव्र, अत्यन्त स्थिर और गंभीर बनी थी।

धीरे धीरे उनके विचार दृढ़ और परिपक्व होते गये। अपने इन विचारोंको प्रगटरूप देनेकी तथा दूसरोंको भी इनमें भागीदार करनेकी उनमें वृत्ति जागृत हुई। इसके

फलमें बचपनसे ही श्रीमद् पुस्तकें लिखने तथा प्रगट करनेकी ओर झुके।

इसका एक दूसरा कारण भी था। प्रारंभसे ही उनमें ज्ञानप्राप्ति और शास्त्र अध्ययनकी जिज्ञासा अत्यन्त प्रवल थी। सत्रहवें वर्ष पहलेके उनके लेखोंमें भी निम्न वाक्य हमें देखनेको मिलते हैं, उस परसे इसका सहजमें अनुमान लगाया जा सकता है।

'वीरके कथित शास्त्रोंमें सुवर्ण-वचन अलग अलग और गुप्त हैं। "उत्तराध्ययन" नामका जैन सूत्र तत्त्व दृष्टिसे पुनः पुनः अवलोको। ज्ञानियों द्वारा एकत्र की गई अद्भुत निधिके उपभोगी वनो। श्रवण करके कल्याणको जानना चाहिए—पापको जानना चाहिए। फिर जो श्रेय हो उसका आचरण करना चाहिए। जो जीव अर्थात् चैतन्यका स्वरूप नहीं जानता; अजीव अर्थात् जड़का स्वरूप नहीं जानता, वह साधु संयमकी वात कहाँसे जाने?'

श्रीमद् राजचन्द्रकी स्मरणशक्ति प्रथमसे ही अति तीव्र थी। इससे भाषाज्ञान प्राप्त करनेमें अधिक समय नहीं लगता था। इस कारण इतनी छोटी अवस्थामें भी श्रीमद्ने विचार और सिद्धान्तोंसे भरे हुए गहन दार्शनिक ग्रन्थ पढ़ लिए थे। इस प्रकारसे अपना धर्मज्ञान सीधा मूल ग्रन्थोंसे ही प्राप्त करनेके लिये शक्तिशाली हुए थे।

यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता है कि इस उम्र तकमें श्रीमद्ने कौन-कौनसे ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। इस सम्वन्धमें उनके लेखोंमें कोई क्रमवद्ध उल्लेख

७

कुमार-कालकी विचारसमृद्धि

श्रीमद् राजचन्द्रने बीस वर्षकी अवस्थामें गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। इससे पहलेकी इनकी विचार-भूमिकाको समझना आवश्यक है। कुमार अवस्थामें उनके विचार कैसी उच्च और आत्मोन्नतिकर कक्षामें पहुंचे थे यदि इसका अवलोकन करें तो इतनी छोटी वयमें भी श्रीमद्ने कैसी विचारसमृद्धि प्राप्त की थी, इसका ख्याल (विचार) आ सकता है।

हम देख चुके हैं कि छुटपनसे ही श्रीमद् राजचन्द्रमें विवेक, वैराग्य और धर्मभावनाके साथ-साथ संसारमें विजय प्राप्त करा सकें ऐसी अद्‌भुत शक्तियाँ तथा महेच्छायें थीं। इस कारणसे श्रीमद्‌को प्रारंभसे ही एक प्रकारके आन्तर युद्धमें उतरना पड़ा था। और इससे उनकी विचारशक्ति अत्यन्त तीव्र, अत्यन्त स्थिर और गंभीर बनी थी।

धीरे धीरे उनके विचार दृढ़ और परिपक्व होते गये। अपने इन विचारोंको प्रगटरूप देनेकी तथा दूसरोंको भी इनमें भागीदार करनेकी उनमें वृत्ति जागृत हुई। इसके

फलमें बचपनसे ही श्रीमद् पुस्तकें लिखने तथा प्रगट करनेकी ओर झुके।

इसका एक दूसरा कारण भी था। प्रारंभसे ही उनमें ज्ञानप्राप्ति और शास्त्र अध्ययनकी जिज्ञासा अत्यन्त प्रबल थी। सत्रहवें वर्ष पहलेके उनके लेखोंमें भी निम्न वाक्य हमें देखनेको मिलते हैं, उस परसे इसका सहजमें अनुमान लगाया जा सकता है।

'वीरके कथित शास्त्रोंमें सुवर्ण-वचन अलग अलग और गुप्त हैं। "उत्तराध्ययन" नामका जैन सूत्र तत्त्व दृष्टिसे पुनः पुनः अवलोको। ज्ञानियों द्वारा एकत्र की गई अद्भुत निधिके उपभोगी बनो। श्रवण करके कल्याणको जानना चाहिए—पापको जानना चाहिए। फिर जो श्रेय हो उसका आचरण करना चाहिए। जो जीव अर्थात् चैतन्यका स्वरूप नहीं जानता; अजीव अर्थात् जड़का स्वरूप नहीं जानता, वह साधु संयमकी बात कहाँसे जाने?'

श्रीमद् राजचन्द्रकी स्मरणशक्ति प्रथमसे ही अति तीव्र थी। इससे भाषाज्ञान प्राप्त करनेमें अधिक समय नहीं लगता था। इस कारण इतनी छोटी अवस्थामें भी श्रीमद्ने विचार और सिद्धान्तोंसे भरे हुए गहन दार्शनिक ग्रन्थ पढ़ लिए थे। इस प्रकारसे अपना धर्मज्ञान सीधा मूल ग्रन्थोंसे ही प्राप्त करनेके लिये शक्तिशाली हुए थे।

यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता है कि इस उम्र तकमें श्रीमद्ने कौन-कौनसे ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। इस सम्बन्धमें उनके लेखोंमें कोई क्रमबद्ध उल्लेख

नहीं मिलता। परन्तु मुख्यतासे जैनागमोंमेंसे बहुतोंका श्रीमद्ने अवलोकन कर डाला था। और उससे जैन धर्मका मूल लक्ष्य तथा मूल शास्त्रोंमें वर्णित वास्तविक गृहस्थ और यथार्थ मुनिके आचार जानने और समझनेके लिए वे शक्तिमान हुए थे।

परन्तु अपने समयके जैन-आचार-विचारोंके साथ तुलना करनेसे श्रीमद् राजचन्द्रको मूल सिद्धान्तोंमें और प्रचलित आचारोंमें आकाश-पाताल जितना अन्तर दिखाई दिया। उन्होंने स्पष्ट देखा कि, लोग मूल शास्त्रोंको वांचते विचारते नहीं हैं, उससे चाहे जैसे विचारहीन आचारोंको परम्पराके नाम या अज्ञानसे स्वीकार कर उन्हींमें अपना जीवन बिताया करते हैं।

जैन मुनियोंकी दशा भी ऐसी ही है। जो आदर्श शास्त्रोंमें कहा है, उसका अपनेसे पालन नहीं हो सकेगा ऐसा मानकर, उसे शिथिल करने या ढांकनेकी वृत्तिसे, परस्पर आचार्योंके वाद-विवादसे, कदाग्रहसे, मतिकी न्यूनतासे और मूल शास्त्रोंका अध्ययन तथा सद्विचारोंके घट जानेसे, इन लोगोंमें जो मतभेद और वहमोंका साम्राज्य प्रवर्तता था, उसे देखकर उनका पुरुषार्थी और पवित्र आत्मा व्याकुल हो उठा।

तीर्थंकर जैसे पूर्ण पुरुषके धर्मकी प्राप्ति होने पर लोग जड़ता और प्रमादके कारण तथा सद्गुरु और सत् शास्त्रोंके अध्ययनके अभावमें जो अन्ध जीवन बिता रहे थे, उससे श्रीमद् अत्यन्त खिन्न हुए। और तबसे, किसी भी प्रकारसे

लोगोंमें सत्य सिद्धान्तके ज्ञानका प्रचार कर समस्त जगत्‌को जगाऊँ और प्रयत्नशील करूँ, ऐसी उन्हें चटपटी लगी।

सत्रहवें वर्षमें श्रीमद् लिखते हैं:

'जैन प्रजा (सारे हिदुस्तानमें मिलाकर) २० लाखकी है। उसमेंसे नव तत्त्वको पठन रूपसे दो हजार मनुष्य भी बडी कठिनतासे जानते होंगे। मनन और विचारपूर्वक जाननेवाले पुरुष तो उँगलियों पर गिन सकें इतने भी न होंगे। तत्त्वज्ञानकी जब ऐसी हीनावस्था हो गई है तब ही मतमतान्तर बढ़ गये हैं।'

उस समय अंग्रेजी शासनमें जो शिक्षा दी जाती थी वह इस प्रकारकी थी कि ज्ञात अथवा अज्ञात भावसे पढे-लिखे मनुष्योंमेंसे धार्मिकवृत्तिका मूलसे नाश कर देती थी।

फिर वे ही इक्कीसवें वर्षमें लिखते हैं कि, 'जो लोग विद्याका ज्ञान प्राप्त कर सके हैं, उनको धर्मतत्त्व पर मूलसे ही श्रद्धा नहीं होती। जिनको सरलताके कारणसे कुछ श्रद्धा होती है, उन्हें उस विषयकी कुछ समझ नहीं पड़ती। और यदि कोई समझदार भी हो तो वह उस वस्तुकी वृद्धिमें विघ्न करनेवाला होता है, परन्तु सहायक नहीं। इस प्रकार पढे-लिखे मनुष्योंको धर्म-प्राप्ति दुर्लभ हो गई है।'

इससे 'युगके बालयुवक अविवेकी ज्ञान प्राप्त कर आत्मसिद्धिसे भ्रष्ट होते हैं, उसे रोकनेके लिए' तथा 'कितने अज्ञानी मनुष्य न पढ़ने योग्य पुस्तकें पढ़कर अपना अमूल्य समय गुमा देते हैं,' उसके बदलेमें 'आत्माका हित हो;

ज्ञान, शान्ति और आनन्द मिले तथा वे परोपकारी, दयालु क्षमावान्, विवेकी और बुद्धिशाली बनें' इसके लिए श्रीमद् राजचन्द्रने सुगम, सरल पुस्तकोंका लिखना प्रारंभ किया।

सत्रहवें वर्षमें अपनी लिखी हुई 'मोक्षमाला'में तो श्रीमद् यहाँ तक कहते हैं कि,

'आंग्लदेशवासियोंने संसारके अनेक कला कौशलोंमें किस कारणसे विजय प्राप्त की है? यह विचार करनेसे हमें तत्काल मालूम होगा कि, उनका अति उत्साह और इस उत्साहमें अनेकोंका एकत्रित होना; एक समाजमें मिलना ....यह इसका कारण है। सर्वज्ञ भगवान्का कहा हुआ गुप्त तत्त्व प्रमाद स्थितिमें आ पड़ा है, उसे प्रकाशित करनेके लिए तथा पूर्वाचार्योंके रचे हुए महान शास्त्रोंको एकत्र करनेके लिए, पडे हुए गच्छके मतमतान्तरोंको दूर करनेके लिए और धर्म विद्याको प्रफुल्लित करनेके लिए, सदाचरणी श्रीमान और धीमान दोनोंको मिलकर एक महान समाजकी स्थापना करनेकी आवश्यकता है।....पवित्र स्याद्वादमतके ढँके हुए तत्त्वको प्रसिद्ध करनेका जबतक प्रयत्न नहीं है वहाँतक शासनकी उन्नति भी नहीं है।'

श्रीमद् राजचन्द्रने इसी समयमें स्त्रीनीति बोधक पुस्तक पद्योंमें लिखी थी। इसमें स्त्रियोंको सद्गुणी, सदाचारी बननेका उपदेश दिया है तथा माता-पिता अपनी बालिकाओंको किस प्रकारसे संस्कारसम्पन्न और नीतिशील बनायें इसका भी उपदेश है। किसीको यह पुस्तक देखकर विचार आये कि आत्मतत्त्वका विचार करनेवाले श्रीमद्

राजचन्द्रने नीतिका बोध (ज्ञान) देना किस लिए विचारा होगा? परन्तु इसके पीछे भी श्रीमद्‌की स्पष्ट दृष्टि थी। संवत् १९५०में लिखे हुए एक पत्रमें श्रीमद्‌ने इस दृष्टिको स्पष्ट रूपसे समझाया है:

'जो मुमुक्षु जीव गृहस्थके व्यवहारमें रहता हो, उसे प्रथम तो अखंड नीतिका मूल अपने आत्मामें स्थापित करना चाहिए, नहीं तो उपदेशादिकी निष्फलता होती है। द्रव्यादि उपार्जन करने आदिमें सांगोपांग न्यायसम्पन्न रहनेका नाम नीति है। इस नीतिको छोड़नेके समय प्राणत्याग जैसी दशाके आनेपर त्याग और वैराग्य अपने यथार्थ स्वरूपमें प्रगट होते हैं और उसी जीवको सत्पुरुषके वचनका तथा आज्ञाधर्मका अद्‌भुत सामर्थ्य, माहात्म्य और रहस्य समझमें आता है; और इससे सब वृत्तियोंके निजरूपसे प्रवृत्ति करनेका मार्ग स्पष्ट सिद्ध होता है।'

श्रीमद् उन्नीस वर्षकी अवस्था बाद जिस महामंथन कालमेंसे पार होनेवाले हैं, इससे पहले अपने जीवनको योग्य दिशामें झुकानेके लिए श्रीमद्‌ने कैसी विचारणा की थी, यह लक्ष्यमें लेने योग्य है। यहाँ उन विचारोंको उपस्थित किया है। श्रेयार्थीको वे मार्गदर्शकरूप हैं।

१. आहार, विहार, निहार (शौचादि क्रिया)की नियमितता (रखूँ); अर्थकी सिद्धि (करूँ); आर्य जीवनका उत्तम पुरुषोंने आचरण किया है; परहितको अपना हित समझना और परदुःखको अपना दुःख समझना; नीतिके नियमोंको न तोड़ना, जितेन्द्रिय बनना, विवेकबुद्धिसे सब आचरण

करना; ज्ञानचर्चा, विद्याविलास तथा शास्त्राध्ययनमें लीन रहना; संसारमें रहते हुए और उसे नीतिसे भोगते हुए, विदेही दशा रखना; आत्मज्ञान और सज्जनसंगति रखना; ज्ञानियों द्वारा एकत्र की हुई अद्‌भुत निधिके उपभोगी बनो।

२. दुःख लगेगा ही, और दुःखके कारण भी तुझे दृष्टिगोचर होंगे....उन्हें दूर करनेका जो उपाय है वह इतना ही है कि उनसे बाह्याभ्यन्तर रहित होना। रहित हो सकते हैं, अद्‌भुत दशाका अनुभव होता है, यह प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूँ।....निर्ग्रन्थ सद्‌गुरुके चरणमें जाकर रहना योग्य है। जीवन अति अल्प है; उपाधि अधिक है, और उसे त्यागा नहीं जा सकता। तो....जिज्ञासा उस वस्तुकी रखना। संसारको बन्धन मानना। पूर्वकर्म बलवान है, इस लिए यह सब प्रसंग मिला है, ऐसा एकान्तिक ग्रहण न करना।

३. यह दुःख कहाँ कहना? और कैसे दूर करना? आप अपना वैरी, यह कैसी सत्य बात है!....तूने भिन्न-भिन्न स्थलमें सुखकी कल्पना की है। हे मूढ! ऐसा न कर। यह तुझे तेरा हित कहा। अन्तरंगमें सुख है। सत्य कहता हूँ। स्त्रीके स्वरूप पर होने वाले मोहको रोकनेके लिए उसका त्वचा-हीन स्वरूप बारम्बार विचारने योग्य है। हे जीव! अब भोगसे शान्त हो, शान्त। जरा विचार तो सही कि इसमें कौन-सा सुख है?

४. जिस महा कामके लिए तूने जन्म धारण किया

है, उस महा कामका अनुप्रेक्षण कर। ध्यान धर ले। समाधिस्थ हो। कोई भी तुच्छ भूल तेरी स्मृतिमेंसे नहीं जाती, यह महाकल्याण है। जिससे प्रमाद हुआ है उसके लिए अब प्रमाद न हो, वैसा कर।'

ये अवतरण तो सोलह वर्षके पहलेकी आयुके हैं। उस परसे इस उम्रतककी श्रीमद्‌की मनोभूमिकाका थोडा-बहुत परिचय मिल सकता है। सम्पूर्ण विचारके लिए तो श्रीमद्‌के सभी लेखोंका अनुशीलन करना आवश्यक है।

परन्तु उन्नीसवें वर्ष वाद तो श्रीमद् गृहस्थ जीवन स्वीकार करते हैं। इस लिए सोलहसे उन्नीस वर्षकी वयके वीच, गृहस्थ जीवन कैसे विताना, किस प्रकारसे सुव्यवस्थित करना इस सम्वन्धमें श्रीमद्‌ने अपने निजी लेखोंमें वहुत-कुछ लिखा है, उनमेंसे इस वस्तुको समझनेके लिए थोडेसे अवतरण दिये जाते हैं।

१. गृहस्थाश्रमको विवेकी वनाना। लोक-अहित कार्य नहीं करूँ, धर्मपूर्वक अर्थ उपार्जन करूँ। तेरा (भगवानका) सिद्धान्त भंग हो उस प्रकारसे संसार-व्यवहार न चलाऊं। स्वार्थवश किसीकी आजीविका न तोड़ूं। जीवहिंसक व्यापार नहीं करूँ। स्वस्त्रीसे समभावसे व्यवहार करूँ। अब्रह्मचर्यका सेवन नहीं करूँ। नीति बिना संसारका सेवन नहीं करूँ। दशांश धर्मके लिए निकालूँ। विद्याशाली स्त्री ढूँढूँ, लाऊँ। पुत्रीको अनपढ़ नहीं रखूँ। उनको धर्मपाठ सिखाऊँ। कुटुम्बको स्वर्ग वनाऊँ। सृष्टिको स्वर्ग वनाऊँ तो कुटुम्वको मोक्ष वनाऊँ।

२. किसी कृत्यमें प्रमाद न करूँ। मनोवीरत्वकी वृद्धि करूँ। अयोग्य विद्या साधूँ नहीं। निर्माल्य अध्ययन करूँ नहीं। विचारशक्तिको विकसित करूँ। आलसको उत्तेजन न दूँ। दिनचर्याका दुरुपयोग न करूँ। उत्तम शक्तिको साध्य करूँ। चारित्र्यको अद्भुत करना। विजय, कीर्ति, और यश सर्वपक्षी प्राप्त करना। शक्तिका दुरुपयोग न करूँ। प्रत्येक वस्तुका नियम करूँ। बिना नियमके विहार न करूँ। खराब उद्यम नहीं करूँ। अनुद्यमी भी न रहूँ।

३. किसी दर्शनकी निन्दा न करूँ। एकपक्षीय मतभेद नहीं बाँधूँ। अज्ञान पक्षकी आराधना करूँ नहीं। परमात्माकी भक्ति करूँ। तत्त्व आराधते हुए लोकनिन्दासे न डरूँ। तत्त्वज्ञानका अभ्यास करूँ।

इनमेंसे प्रत्येक गृहस्थको आदर्श गृहस्थजीवनकी प्रेरणा मिले बिना नहीं रह सकती। साथसाथ श्रीमद् राजचन्द्रमें बाल्यकालसे रही हुई धर्मोद्धारकी उदात्त भावना भी विशेष-विशेष दृढ़ होती जाती थी। इसके लिए नीचेका एक अवतरण यहाँ पर्याप्त होगा :

'ज्ञानका उद्धार करना। भिन्न-भिन्न धर्मोपदेशके ग्रन्थोंको बाँटना। भिन्न-भिन्न धर्मग्रन्थोंको रचना। मतमतान्तरोंका स्वरूप समझाना। जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करना चाहता हो, उसके विचारोंमें सहायक होना। किसी समय तत्त्व द्वारा दुनियामेंसे दुःख जायगा ऐसा मानूँ। असत्यका उपदेश न दूँ।

आजीविकाके लिए धर्मका उपदेश न करूँ। गुणविहीन वक्तृत्वका सेवन न करूँ।'

अन्तमें, उस छोटी उम्रमें भी, एक आदर्श गृहस्थ कैसा हो इसका प्रेरणादायी सुन्दर चित्र श्रीमद्ने खींचा है। ये अपनी उस समयकी परिपक्व विचारधाराका अच्छा परिचय कराते हैं। 'मोक्षमाला'में 'सुख विषयक विचार' इस शीर्षकसे एक मननीय कथाका निरूपण किया है। इसमें उन्होंने द्वारिकाके महाधनाढ्य धर्ममूर्ति श्रावक गृहस्थका चित्र खींचा है। इसमें धर्ममूर्ति सेठ अपनी चर्याका वर्णन करता है। इस वर्णन परसे उस वयमें भी श्रीमद् आदर्श गृहस्थ किसे कहते हैं, इसका अनुपम ध्यान हम लोगोंको आये बिना नहीं रहता। उसमेंसे संक्षिप्त करके यहाँ उपस्थित किया गया है। यह चित्र प्रत्येक गृहस्थको प्रेरणादायक हो, ऐसा है।

'यद्यपि मैं दूसरोंकी अपेक्षा सुखी हूँ, तो भी यह शाता वेदनीय है, सत्-सुख नहीं है; जगत्में वहुत करके अशाता वेदनीय है।

'मैंने धर्ममें अपना समय बितानेका नियम रखा है, सत्शास्त्रोंका वांचन, मनन, सत्पुरुषोंका समागम, यम-नियम, एक महीनेमें बारह दिवस ब्रह्मचर्य, यथाशक्ति गुप्तदान इत्यादि धर्मरूपसे अपने समयको व्यतीत करता हूँ। सब व्यवहारकी उपाधियोंमेंसे कितना ही भाग बहुत अंशमें मैंने छोड़ दिया है। पुत्रोंको व्यवहारमें यथायोग्य बनाकर मैं निर्ग्रन्थ होनेकी इच्छा रखता हूँ। अभी तो निर्ग्रन्थ नहीं

हो सकता। इसमें संसार-मोहिनी अथवा ऐसा ही दूसरा कारण नहीं है। परन्तु इसमें भी धर्म सम्बन्धी कारण है। गृहस्थ धर्मके आचरण बहुत कनिष्ठ हो गये हैं और मुनिलोग उन्हें नहीं सुधार सकते। गृहस्थ, गृहस्थको विशेष बोध दे सकता है, आचरणसे भी प्रभाव डाल सकता है। इस लिए धर्म सम्बन्धमें गृहस्थवर्गको मैं अधिक अंशोंमें उपदेश देकर यम–नियम में लाता हूँ।

'प्रति सप्ताह हमारे यहाँ पाँचसौ सद्गृहस्थोंकी सभा होती है। आठ दिनका नया अनुभव और बाकी पहलेका धर्मानुभवका मैं इन सबको दो तीन मुहूर्त तक उपदेश करता हूँ। मेरी स्त्री धर्मशास्त्रकी जानकार होनेसे वह भी स्त्री वर्गको उत्तम यम–नियमका उपदेश करके साप्ताहिक सभा करती है। पुत्र भी यथायोग्य शास्त्रका परिचय रखते हैं।

'विद्वानोंका सन्मान, अतिथिका सन्मान, विनय और सामान्य सत्यता, (व्यापारमें) एक ही भाव—ये नियम अधिकतर मेरे अनुचर भी पालते हैं। इससे वे लोग शाता भोग सकते हैं।

'लक्ष्मीके साथसाथ मेरी नीति, धर्म, सद्गुण और विनयने जनसमुदाय पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला है। राजा भी मेरी नीतियुक्त बातको मानता है।

'यह सब मैं आत्म-प्रशंसाके लिए नहीं कह रहा हूँ, इसे आप स्मृतिमें रखें। केवल आपकी पूछी हुई बातका स्पष्टीकरण करनेके लिए यह सब संक्षेपमें कह रहा हूँ।

'इन सब बातोंसे मैं सुखी हूँ, ऐसा आपको जान

पडेगा। और सामान्य विचारसे आप मुझे सुखी मानें तो मान सकते हैं। धर्म, शील और नीतिसे तथा शास्त्रावधानसे मुझे जो आनन्द आता है, वह अवर्णनीय है।

'परन्तु तत्त्वदृष्टिसे मैं सुखी नहीं माना जा सकता। जबतक मैंने सर्व प्रकारसे बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहका त्याग नहीं किया, वहाँ तक रागद्वेषका भाव है। जो कि वह अधिक अंशमें नहीं है, परन्तु है अवश्य; तो वहाँ उपाधि भी है। सर्वसंगपरित्याग करनेकी मेरी सम्पूर्ण आकांक्षा है; परन्तु जबतक वैसा नहीं हुआ है, तबतक अभी किसी प्रियजनका वियोग, व्यवहारमें हानि, कुटुम्बका दुःख ये थोडे अंशमें भी उपाधि उत्पन्न कर सकते हैं।.... इसलिए सर्वथा निर्ग्रन्थ, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग, अल्पारंभका भी त्याग जबतक नहीं हुआ है, तबतक मैं अपनेको सर्वथा सुखी नहीं मानता।

'अब आपको तत्त्वदृष्टिसे विचार करने पर मालूम पडेगा कि लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र या कुटुम्ब इनसे सुख नहीं है। और यदि इसे सुख मानूँ तो जिस समय मेरी स्थिति बिगडी थी उस समय यह सुख कहाँ गया था? जिसका वियोग है, जो क्षणभंगुर है, और जहाँ एकत्व या अव्याबाधता नहीं है, वह सुख सम्पूर्ण नहीं है।'

इस प्रकार कुमारवयमें ही श्रीमद्के विचार सुनिश्चित, प्रौढ, सुनीतिपोषक और आत्मनिष्ठ, संयमशील तथा श्रेयसाधक स्वरूपको प्राप्त हुए थे।

८

गृहस्थाश्रममें प्रवेश

संवत् १९४४ में श्रीमद् राजचन्द्रका जीवन गृहस्थाश्रमकी ओर मुड़ता है।

श्रीमद् जैसे स्वभावसे विचारवान, प्रखर बुद्धिशाली, आत्मनिष्ठ पुरुषने, पुख्तवयमें पहुँचकर लग्नजीवनमें प्रवेश किया, यह कौन-सी मनोदशामें, किस कारणसे, यदि यह सब इनकी जीवन-साधनाकी दृष्टिसे जाननेको मिले तो सब लोगोंके लिए यह बात अत्यन्त उपयोगी हो सकेगी। परन्तु इसके लिए सम्पूर्ण सामग्री हमारे पास नहीं है।

इस विषयमें श्रीमद् राजचन्द्रने जो थोडा बहुत लिखा है, उस परसे पूरा-पूरा सार निकालना शक्य तो नहीं, परन्तु इतनेसे भी हम लोगोंको श्रीमद्की मनोदशाका कुछ-कुछ भी ख्याल तो आ ही सकेगा।

विवाहके बाद सं. १९४६में श्रीमद्ने लिखा है:

'कुटुम्बरूपी काजलकी कोठरीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है। उसका कितना भी सुधार करो तो भी एकान्त निवाससे जितना संसारका क्षय हो सकता है, उसका सौवाँ

भाग भी उस काजलगृहमें रहनेसे नहीं हो सकता; क्योंकि वह कषायका निमित्त है; और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है।'

मानो इस सत्यकी ही प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करनेके लिए श्रीमद् लग्नजीवन अंगीकार करनेको कटिवद्ध हो रहे हों इस प्रकार बीसवें वर्षके प्रारम्भमें एक स्नेहीके ऊपर वम्बईसे १९४४ पौष वदी १०के दिन एक पत्र लिखकर वताते हैं :

'लग्न सम्बन्धी उन्होंने जो तिथि निश्चित की है, यदि इसके विषयमें उनका आग्रह है तो तिथि भले ही निश्चित रही।

'लक्ष्मी पर प्रीति न होनेपर भी वह किसी भी परोपकारके काममें वहुत उपयोगी हो सकती है, ऐसा लगनेसे मौन धारण करके मैं यहाँ उस सम्वन्धी सद् व्यवस्थामें जुटा हुआ था। इस व्यवस्थाका अभीष्ट परिणाम आनेमें वहुत देर न थी। परन्तु उनकी ओरका एक ममत्वभाव शीघ्रता करता है, जिससे यह सब योंही छोड़कर वदी १३वीं या १४वीं (पौषकी)के दिन यहाँसे रवाना होता हूँ।

'परोपकार करनेमें भी कदाचित् लक्ष्मी अन्धापन, वहरापन और मूँगापन ला देती है, इससे उसकी कोई परवाह नहीं है।

'हम लोगोंका जो परस्परका सम्वन्ध है, वह कुछ सगपनका नहीं, परन्तु हृदय-सगपनका है। परस्पर लोह-चुम्वकका गुण प्राप्त हुआ है, ऐसा दर्शित है, फिर भी

८

गृहस्थाश्रममें प्रवेश

संवत् १९४४ में श्रीमद् राजचन्द्रका जीवन गृहस्थाश्रमकी ओर मुड़ता है।

श्रीमद् जैसे स्वभावसे विचारवान, प्रखर बुद्धिशाली, आत्मनिष्ठ पुरुषने, पुख्तवयमें पहुँचकर लग्नजीवनमें प्रवेश किया, यह कौन-सी मनोदशामें, किस कारणसे, यदि यह सब इनकी जीवन-साधनाकी दृष्टिसे जाननेको मिले तो सब लोगोंके लिए यह बात अत्यन्त उपयोगी हो सकेगी। परन्तु इसके लिए सम्पूर्ण सामग्री हमारे पास नहीं है।

इस विषयमें श्रीमद् राजचन्द्रने जो थोडा बहुत लिखा है, उस परसे पूरा-पूरा सार निकालना शक्य तो नहीं, परन्तु इतनेसे भी हम लोगोंको श्रीमद्की मनोदशाका कुछ-कुछ भी ख्याल तो आ ही सकेगा।

विवाहके बाद सं. १९४६में श्रीमद्ने लिखा है:

'कुटुम्बरूपी काजलकी कोठरीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है। उसका कितना भी सुधार करो तो भी एकान्त निवाससे जितना संसारका क्षय हो सकता है, उसका सौवाँ

भाग भी उस काजलगृहमें रहनेसे नहीं हो सकता; क्योंकि वह कषायका निमित्त है; और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है।'

मानो इस सत्यकी ही प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करनेके लिए श्रीमद् लग्नजीवन अंगीकार करनेको कटिबद्ध हो रहे हों इस प्रकार बीसवें वर्षके प्रारम्भमें एक स्नेहीके ऊपर बम्बईसे १९४४ पौष वदी १०के दिन एक पत्र लिखकर बताते हैं :

'लग्न सम्बन्धी उन्होंने जो तिथि निश्चित की है, यदि इसके विषयमें उनका आग्रह है तो तिथि भले ही निश्चित रहो।

'लक्ष्मी पर प्रीति न होनेपर भी वह किसी भी परोपकारके काममें बहुत उपयोगी हो सकती है, ऐसा लगनेसे मौन धारण करके मैं यहाँ उस सम्बन्धी सद् व्यवस्थामें जुटा हुआ था। इस व्यवस्थाका अभीष्ट परिणाम आनेमें बहुत देर न थी। परन्तु उनकी ओरका एक ममत्वभाव शीघ्रता करता है, जिससे यह सब योंही छोड़कर वदी १३वीं या १४वीं (पौषकी)के दिन यहाँसे रवाना होता हूँ।

'परोपकार करनेमें भी कदाचित् लक्ष्मी अन्धापन, बहरापन और मूँगापन ला देती है, इससे उसकी कोई परवाह नहीं है।

'हम लोगोंका जो परस्परका सम्बन्ध है, वह कुछ सगपनका नहीं, परन्तु हृदय-सगपनका है। परस्पर लोह-चुम्बकका गुण प्राप्त हुआ है, ऐसा दर्शित है, फिर भी

में इससे भी भिन्न रूपसे आपको हृदयरूप करना चाहता हूँ। सब प्रकारके सगपनको और संसार योजनाको दूर करके ये विचार मुझे तत्त्वविज्ञानरूपसे वताने हैं, और उन्हें आपको अनुसरण करना है। इतनी बात बहुत सुखप्रद होने पर मार्मिकरूपसे आत्मस्वरूपके विचारपूर्वक यहाँ लिखता हूँ।

'क्या उनके हृदयमें ऐसी सुन्दर योजना है कि शुभप्रसंगमें सद्विवेकी बनकर और रूढियोंसे प्रतिकूल रहकर, परस्पर एक कुटुम्बरूप स्नेह उत्पन्न हो सके? क्या आप यह योजना ग्रहण करायेंगे? कोई दूसरा ग्रहण करायेगा? यह विचार बारम्बार हृदयमें पर्यटन करता है।'

विवाह विधिकी पुरानी रूढियोंको छोड़कर, सद्विवेक-पूर्वक व्यवहार करनेकी सूचना श्रीमद् क्यों दे रहे हैं, उसका कारण भी समझने योग्य है।

'निश्चय ही, साधारण विवेकी-जन जिन विचारोंको आकाशीय मानें वैसे विचार, जो वस्तु और जो पद आज साम्राज्ञी विक्टोरियाको दुर्लभ—केवल असंभवित है, उन विचारों, उस वस्तु और उस पदकी केवल इच्छा होनेसे, ऊपर (विवाह विधिमें विवेक रखनेको) बताया है, उससे किंचित् भी यदि प्रतिकूल बने तो उस पदाभिलाषी पुरुषके चारित्रको बट्टा लगे, ऐसा है।'

इसके बाद संवत् १९४४ माह सुदी बारसके दिन श्रीमद् राजचन्द्रका विवाह झबकबाईसे होता है। झबकबाई जौहरी रेवाशंकरभाई जगजीवनदास महेताके बडे भाई

पोपटलालभाईकी सुपुत्री थी।

यों तो श्रीमद् गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हुए, परन्तु साथ-साथ वे तीव्र आत्ममंथनमेंसे भी पार हो रहे थे। त्याग, वैराग्य, निर्लेपता और तत्त्वजिज्ञासा उनमें प्रवलतासे जागृत होती जाती थी। विवाह होनेके बाद एकाद वर्षमें लिखे हुए एक लेख 'स्त्रीके सम्बन्धमें मेरे विचार'में श्रीमद् प्रगट करते हैं।

'अति अति स्वस्थ विचारणासे यह सिद्ध हुआ है कि निराबाध सुख शुद्ध ज्ञानके आधार पर रहा है, तथा वहीं परम समाधि है।

'केवल आवरण युक्त दृष्टिसे स्त्री संसारका सर्वोत्तम सुख माना गया है, परन्तु वैसा नहीं है। स्त्रीसे संयोग-सुख भोगनेका जो चिह्न है, उसे विवेकपूर्वक दृष्टिगोचर करनेसे वह वमन करने योग्य स्थानके भी योग्य नहीं है। जिन जिन पदार्थों पर जुगुप्सा आती है, वे सभी पदार्थ इस शरीर में भरे पडे हैं, और उन सबकी यह जन्मभूमि है। तथा यह सुख क्षणिक, खेद और खुजलीके दर्द समान है। उस समयका दृश्य हृदयमें अंकित होकर हँसाता है कि यह कैसी भूल! संक्षेपमें कहना है कि उसमें कुछ भी सुख नहीं है। और यदि उसमें सुख हो तो उसका अपरिच्छेद-रूपसे वर्णन करके देखो। अर्थात् एक मोह दशाके कारण उसमें सुखकी मान्यता हुई है, ऐसा ही मालूम होगा।

'यहाँ मैं स्त्रीके अवयवादि भागोंका विवेक करने नहीं बैठा हूँ, परन्तु आत्मा पुनः वहाँ आकर्षित न हो, यह

विवेक उत्पन्न हुआ है, उसका सहज सूचन है।

'स्त्रीमें दोष नहीं है, परन्तु आत्मामें दोष है, और इस दोषके जानेसे आत्मा जो देखता है, वह अद्भुत आनन्दमय ही है। इसलिए उस दोषसे रहित होना ही परम जिज्ञासा है। यदि शुद्ध उपयोगकी प्राप्ति हुई तो फिर आत्मा समय समय पर पूर्वोपार्जित मोहनीय कर्मको भस्मीभूत कर सकेगा। यह अनुभवगम्य प्रवचन है।

'परन्तु जबतक मुझमें पूर्वोपार्जित कर्मका उदय है, तबतक मेरी किस तरहसे शान्ति हो? यह विचारनेसे मुझे नीचे लिखा हुआ समाधान हुआ....

'स्त्रीके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारसे राग-द्वेष करनेकी मेरी लेशमात्र इच्छा नहीं है, परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मसे इच्छाके प्रवर्तनमें रुका हुआ हूँ।'

दूसरे एक लेखमें श्रीमद् विदित करते हैं कि:

'स्त्रीके सम्बन्धमें अभिलाषा और है, और आचरण और है। एक पक्षने उसका कुछ समय तक सेवन करना सम्मत माना है, और वहाँ सामान्य प्रीति-अप्रीति है। परन्तु दुःख यह है कि इच्छा न होने पर भी पूर्वकर्म क्यों घेरे रहता है? इतनेसे ही नहीं पूरा होता, परन्तु उसके कारण न रुचनेवाले पदार्थोंको देखना, सूंघना, छूना पड़ता है उसी कारणसे प्रायः उपाधिमें पड़ना पड़ता है।'

अपने गृहाश्रमके विषयमें श्रीमद् एक भाईको सं. १९४६में लिखकर बताते हैं:

'इस जन्ममें आपसे पहले, लगभग दो वर्षसे कुछ

अधिक समय हुआ मैं गृहाश्रमी हुआ हूँ, यह आप जानते हैं।

'जिसके कारण गृहाश्रमी कहा जा सकता हूँ उस वस्तु (स्त्री)का तथा मेरा उस समयमें कुछ अधिक परिचय नहीं हुआ था, फिर भी उससे जो कायिक, वाचिक और मानसिक वृत्ति बने वह मुझे बहुत कुछ समझमें आई है और उस परसे उसका और मेरा सम्बन्ध असन्तोषमय नहीं हुआ, यह बतानेका यही कारण है कि सहज मात्र भी गृहस्थाश्रमका व्याख्यान करते हुए, उस सम्बन्धी विशेष अनुभव उपयोगी होता है। मुझमें कुछ सांस्कारिक अनुभव उग निकलनेसे मैं यह कह सकता हूँ कि अभीतक मेरा गृहस्थाश्रम ज्यों असन्तोषमय नहीं है त्यों उचित सन्तोषमय भी नहीं है, वह केवल मध्यम है, और उसके मध्यम होनेमें भी मेरी उदासीनवृत्तिकी सहायता है।

'तत्त्वज्ञानकी गुप्त गुफाका दर्शन करते हुए गृहाश्रमसे विरक्त होना अधिकतर सूझता है और अवश्य उस तत्त्वज्ञानका विवेक भी इसे उत्पन्न हुआ था। कालकी बलवान अनिष्टताके कारण, यथायोग्य समाधिके संगकी अप्राप्तिके कारण, उस विवेकको महाखेदके साथ गौण करना पड़ा; और यदि सचमुच वैसा न हो सकता तो उसके (इस पत्र-लेखकके) जीवनका अन्त आता।

'जिस विवेकको महाखेदके साथ गौण करना पड़ा है उस विवेकमें ही चित्तवृत्ति प्रसन्न रहती है, बाहर उसकी मुख्यता नहीं रख सकता, इसके लिए अकथ्य खेद होता

विवेक उत्पन्न हुआ है, उसका सहज सूचन है।

'स्त्रीमें दोष नहीं है, परन्तु आत्मामें दोष है, और इस दोषके जानेसे आत्मा जो देखता है, वह अद्भुत आनन्दमय ही है। इसलिए उस दोषसे रहित होना ही परम जिज्ञासा है। यदि शुद्ध उपयोगकी प्राप्ति हुई तो फिर आत्मा समय समय पर पूर्वोपार्जित मोहनीय कर्मको भस्मीभूत कर सकेगा। यह अनुभवगम्य प्रवचन है।

'परन्तु जबतक मुझमें पूर्वोपार्जित कर्मका उदय है, तबतक मेरी किस तरहसे शान्ति हो? यह विचारनेसे मुझे नीचे लिखा हुआ समाधान हुआ....

'स्त्रीके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारसे राग-द्वेष करनेकी मेरी लेशमात्र इच्छा नहीं है, परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मसे इच्छाके प्रवर्तनमें रुका हुआ हूँ।'

दूसरे एक लेखमें श्रीमद् विदित करते हैं कि:

'स्त्रीके सम्बन्धमें अभिलाषा और है, और आचरण और है। एक पक्षने उसका कुछ समय तक सेवन करना सम्मत माना है, और वहाँ सामान्य प्रीति-अप्रीति है। परन्तु दुःख यह है कि इच्छा न होने पर भी पूर्वकर्म क्यों घेरे रहता है? इतनेसे ही नहीं पूरा होता, परन्तु उसके कारण न रुचनेवाले पदार्थोंको देखना, सूंघना, छूना पड़ता है उसी कारणसे प्रायः उपाधिमें पड़ना पड़ता है।'

अपने गृहाश्रमके विषयमें श्रीमद् एक भाईको सं. १९४६में लिखकर बताते हैं:

'इस जन्ममें आपसे पहले, लगभग दो वर्षसे कुछ

अधिक समय हुआ मैं गृहाश्रमी हुआ हूं, यह आप जानते हैं।

'जिसके कारण गृहाश्रमी कहा जा सकता हूँ उस वस्तु (स्त्री)का तथा मेरा उस समयमें कुछ अधिक परिचय नहीं हुआ था, फिर भी उससे जो कायिक, वाचिक और मानसिक वृत्ति बने वह मुझे बहुत कुछ समझमें आई है और उस परसे उसका और मेरा सम्वन्ध असन्तोषमय नहीं हुआ, यह बतानेका यही कारण है कि सहज मात्र भी गृहस्थाश्रमका व्याख्यान करते हुए, उस सम्वन्धी विशेष अनुभव उपयोगी होता है। मुझमें कुछ सांस्कारिक अनुभव उग निकलनेसे मैं यह कह सकता हूँ कि अभीतक मेरा गृहस्थाश्रम ज्यों असन्तोषमय नहीं है त्यों उचित सन्तोषमय भी नहीं है, वह केवल मध्यम है, और उसके मध्यम होनेमें भी मेरी उदासीनवृत्तिकी सहायता है।

'तत्त्वज्ञानकी गुप्त गुफाका दर्शन करते हुए गृहाश्रमसे विरक्त होना अधिकतर सूझता है और अवश्य उस तत्त्वज्ञानका विवेक भी इसे उत्पन्न हुआ था। कालकी बलवान अनिष्टताके कारण, यथायोग्य समाधिके संगकी अप्राप्तिके कारण, उस विवेकको महाखेदके साथ गौण करना पड़ा; और यदि सचमुच वैसा न हो सकता तो उसके (इस पत्र-लेखकके) जीवनका अन्त आता।

'जिस विवेकको महाखेदके साथ गौण करना पड़ा है उस विवेकमें ही चित्तवृत्ति प्रसन्न रहती है, बाहर उसकी मुख्यता नहीं रख सकता, इसके लिए अकथ्य खेद होता

विवेक उत्पन्न हुआ है, उसका सहज सूचन है।

'स्त्रीमें दोष नहीं है, परन्तु आत्मामें दोष है, और इस दोषके जानेसे आत्मा जो देखता है, वह अद्भुत आनन्दमय ही है। इसलिए उस दोषसे रहित होना ही परम जिज्ञासा है। यदि शुद्ध उपयोगकी प्राप्ति हुई तो फिर आत्मा समय समय पर पूर्वोपार्जित मोहनीय कर्मको भस्मीभूत कर सकेगा। यह अनुभवगम्य प्रवचन है।

'परन्तु जबतक मुझमें पूर्वोपार्जित कर्मका उदय है, तबतक मेरी किस तरहसे शान्ति हो? यह विचारनेसे मुझे नीचे लिखा हुआ समाधान हुआ....

'स्त्रीके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारसे राग-द्वेष करनेकी मेरी लेशमात्र इच्छा नहीं है, परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मसे इच्छाके प्रवर्तनमें रुका हुआ हूँ।'

दूसरे एक लेखमें श्रीमद् विदित करते हैं कि:

'स्त्रीके सम्बन्धमें अभिलाषा और है, और आचरण और है। एक पक्षने उसका कुछ समय तक सेवन करना सम्मत माना है, और वहाँ सामान्य प्रीति-अप्रीति है। परन्तु दुःख यह है कि इच्छा न होने पर भी पूर्वकर्म क्यों घेरे रहता है? इतनेसे ही नहीं पूरा होता, परन्तु उसके कारण न रुचनेवाले पदार्थोंको देखना, सूंघना, छूना पड़ता है उसी कारणसे प्रायः उपाधिमें पड़ना पड़ता है।'

अपने गृहाश्रमके विषयमें श्रीमद् एक भाईको सं. १९४६में लिखकर बताते हैं:

'इस जन्ममें आपसे पहले, लगभग दो वर्षसे कुछ

सम्बन्धी नहीं मानना; मेरा दुःख अन्य प्रकारका है। वह दर्द वातका नहीं है, कफ या पित्तका नहीं है; शरीरका नहीं है; वचनका नहीं है और मनका भी नहीं है। मानो तो सभीका है और न मानो तो एकका भी नहीं है। परन्तु मेरी विज्ञापना (दुःख) न माननेकी है, क्योंकि इसमें कुछ और ही मर्म रहा है।

'तुम जरूर मानना कि मैं समझपूर्वक कलम चला रहा हूँ। मैं राजचन्द्र नामसे पहचाने जानेवाला ववाणिया नामके एक छोटे गाँवका, लक्ष्मीमें साधारण फिर भी आर्यरूपसे प्रसिद्ध दशा श्रीमाली वैश्यका पुत्र कहलाता हूँ। इस भवमें मुख्य दो भव किये हैं, अमुख्यका कुछ हिसाब नहीं है। अल्पवयकी अल्प समझमें कौन जाने कहाँसे बडी-बडी कल्पनायें आया करती थीं। सुखकी अभिलाषा भी कुछ कम नहीं थी, और सुखमें भी महालय, बाग-बगीचे, स्त्री आदिको माना। किन्तु सबसे बडी कल्पना यह थी कि 'यह सब क्या है?' उस कल्पनाका एक बार ऐसा रूप देखा कि पुनर्जन्म नहीं है, पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, सुखसे रहना, संसारका उपभोग करनेमें ही कृत-कृत्यता है। इस कारण किसी अन्य पंचायतमें न पड़कर मैंने हृदयमेंसे धर्मकी वासनायें निकाल डालीं। किसी भी धर्मके प्रति न्यूनाधिक श्रद्धाभाव न रहा।

'अल्प समय व्यतीत होनेके बाद इसमेंसे ओर ही हुआ, जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी और उसके लिए मेरे विचारमें हो ऐसा मेरा कुछ प्रयत्न भी नहीं था,

है। फिर भी जहाँ निरुपायता है वहाँ सहन करना ही सुखदायक है, ऐसी मान्यता होनेसे मौनता है।

'किसी किसी समय संगी-प्रसंगी तुच्छ निमित्त बन जाते हैं, उस समय उस विवेक पर एक प्रकारका आवरण आता है, तब आत्मा बहुत घबराता है। उस समय जीवन रहित होनेकी—देह त्याग करनेकी—दुःखस्थितिकी अपेक्षा अधिक भयंकर स्थिति हो जाती है। परन्तु यह बहुत समय तक नहीं रहती, और इस प्रकार जब होगा तब अवश्य देहत्याग कर दूँगा परन्तु असमाधिसे प्रवृत्ति नहीं करूंगा। अभीतक ऐसी प्रतिज्ञा सतत आ रही है।'

अपने चित्तमें चल रहा मन्थन—दो विरोधी वृत्तियोंके बीचकी यह टक्कर—और उसके कारण 'जीवन रहित होनेकी दुःखद स्थितिसे भी भयंकर' स्थितिका वर्णन सं. १९४५में लिखे हुए एक मर्मवेधी पत्रमें श्रीमद् राजचन्द्रने किया है।

'यदि दुनियाभरके दुःखी मनुष्योंका प्रदर्शन करनेमें आये तो अवश्य उसके शिरोभागमें मैं आ सकूँगा।

'मेरे इन वचनोंको पढ़कर कोई विचारमें पड़कर भिन्न-भिन्न कल्पनायें करेगा अथवा तो कोई इसे भ्रम समझ लेगा। परन्तु उसका समाधान यहाँ पर दिये देता हूँ।

'तुम मेरा स्त्री सम्बन्धी कुछ दुःख न समझना, लक्ष्मी सम्बन्धी दुःख नहीं समझना; पुत्र सम्बन्धी दुःख नहीं समझना; कीर्ति सम्बन्धी नहीं मानना; भय सम्बन्धी नहीं मानना; काया सम्बन्धी नहीं मानना; अथवा सर्व वस्तु

सम्बन्धी नहीं मानना; मेरा दुःख अन्य प्रकारका है। वह दर्द वातका नहीं है, कफ या पित्तका नहीं है; शरीरका नहीं है; वचनका नहीं है और मनका भी नहीं है। मानो तो सभीका है और न मानो तो एकका भी नहीं है। परन्तु मेरी विज्ञापना (दुःख) न माननेकी है, क्योंकि इसमें कुछ और ही मर्म रहा है।

'तुम जरूर मानना कि मैं समझपूर्वक कलम चला रहा हूँ। मैं राजचन्द्र नामसे पहचाने जानेवाला ववाणिया नामके एक छोटे गाँवका, लक्ष्मीमें साधारण फिर भी आर्यरूपसे प्रसिद्ध दशा श्रीमाली वैश्यका पुत्र कहलाता हूँ। इस भवमें मुख्य दो भव किये हैं, अमुख्यका कुछ हिसाब नहीं है। अल्पवयकी अल्प समझमें कौन जाने कहाँसे बडी-बडी कल्पनायें आया करती थीं। सुखकी अभिलाषा भी कुछ कम नहीं थी, और सुखमें भी महालय, बाग-बगीचे, स्त्री आदिको माना। किन्तु सबसे बडी कल्पना यह थी कि 'यह सब क्या है?' उस कल्पनाका एक बार ऐसा रूप देखा कि पुनर्जन्म नहीं है, पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, सुखसे रहना, संसारका उपभोग करनेमें ही कृत-कृत्यता है। इस कारण किसी अन्य पंचायतमें न पड़कर मैंने हृदयमेंसे धर्मकी वासनायें निकाल डालीं। किसी भी धर्मके प्रति न्यूनाधिक श्रद्धाभाव न रहा।

'अल्प समय व्यतीत होनेके बाद इसमेंसे ओर ही हुआ, जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी और उसके लिए मेरे विचारमें हो ऐसा मेरा कुछ प्रयत्न भी नहीं था,

फिर भी अचानक परिवर्तन हुआ। कोई और अनुभव हुआ, जो अनुभव प्रायः शास्त्रोंमें न हो, जड़वादियोंकी कल्पनामें न हो, ऐसा था। वह क्रमसे बढ़ा, बढ़कर इस समय एक 'तूही तूही'का जाप करता है।

'अब यहाँ समाधान हो जायगा। आगे जो नहीं मिले या भयादि होगा इससे दुःख है, ऐसा कुछ नहीं है, यों अवश्य समझना।'

किं बहुना! जिज्ञासुओंको उस समयके श्रीमद्के सभी पत्र, लेख अवश्य पढ़ने योग्य हैं। परन्तु इन सब लेखोंको पढ़ते समय हमें इतना विवेक योग्य है कि, सुज्ञ आत्मार्थी पुरुष अपने राई समान, छोटेसे छोटे दोषोंको बड़े पहाड़के समान देखते हैं, और अपनेमें रहे हुए उच्च गुणोंका वर्णन नहीं करते। इससे स्वाभाविक रीतिसे ऐसे निजी वर्णनमें अनेक बार दोषों पर ही विशेष भार दिया हुआ देखनेको मिलता है।

श्रीमद्के सभी लेख दृष्टिगोचर करने पर इतना तो हम देख सकते हैं कि विवाह करके श्रीमद्ने अपने लिए भयानक मारयुद्धको ललकारा था, और उसमें वे हाथमें प्राण लेकर घूमे थे। अपनी हाथनोंध (डायरी) 'अभ्यन्तर परिणाम अवलोकन'में भी श्रीमद् लिखते हैं:

'त्यां आव्यो रे उदय कारमो,
परिग्रह कार्य प्रपंच रे;
जेम जेम ते हडसेलीओ,
तेम वधे, न घटे रंच रे.'

इस समय एक भयानक उदय आया, जिससे परिग्रह कार्यके प्रपंचमें पड़ना पड़ा। ज्यों ज्यों उसे धक्का मारकर हटाते हैं त्यों त्यों वह उल्टा बढ़ता ही जाता है, लेकिन रंचमात्र भी कम नहीं होता। यों तो उदयकर्म भगवान महावीर स्वामीको भी भोगना पड़ा था, तथा सबको भोगना ही पड़ता है, अज्ञानी मोहभाव और बन्धभावसे कर्मको भोगता है, ज्ञानी निर्जराभावसे भोगता है।

इस स्थितिमें श्रीमद्का आत्ममन्थन पराकाष्ठाको पहुँचता है। परन्तु थोडे समयमें ही वे इस घोर संग्राममेंसे विजयी और अधिक तेजस्वी होकर बाहर आते हैं। तेईसवें वर्षमें तो रणसंग्रामकी धूलके बदलेमें एक शान्त, समाहित और आत्मलक्षी पुरुषका इनमें दर्शन होता है। इनकी अभ्यन्तर दशा एक विशिष्ट प्रकारकी तीव्रता पकडती जाती है। इस वर्षमें उनकी समाधि दशा बढ़ती जाती है।

फिर भी अचानक परिवर्तन हुआ। कोई और अनुभव हुआ, जो अनुभव प्रायः शास्त्रोंमें न हो, जड़वादियोंकी कल्पनामें न हो, ऐसा था। वह क्रमसे बढ़ा, बढ़कर इस समय एक 'तूही तूही'का जाप करता है।

'अब यहाँ समाधान हो जायगा। आगे जो नहीं मिले या भयादि होगा इससे दुःख है, ऐसा कुछ नहीं है, यों अवश्य समझना।'

किं बहुना! जिज्ञासुओंको उस समयके श्रीमद्के सभी पत्र, लेख अवश्य पढ़ने योग्य हैं। परन्तु इन सब लेखोंको पढ़ते समय हमें इतना विवेक योग्य है कि, सुज्ञ आत्मार्थी पुरुष अपने राई समान, छोटेसे छोटे दोषोंको बडे पहाड़के समान देखते हैं, और अपनेमें रहे हुए उच्च गुणोंका वर्णन नहीं करते। इससे स्वाभाविक रीतिसे ऐसे निजी वर्णनमें अनेक बार दोषों पर ही विशेष भार दिया हुआ देखनेको मिलता है।

श्रीमद्के सभी लेख दृष्टिगोचर करने पर इतना तो हम देख सकते हैं कि विवाह करके श्रीमद्ने अपने लिए भयानक मारयुद्धको ललकारा था, और उसमें वे हाथमें प्राण लेकर घूमे थे। अपनी हाथनोंध (डायरी) 'अभ्यन्तर परिणाम अवलोकन'में भी श्रीमद् लिखते हैं:

'त्यां आव्यो रे उदय कारमो,
परिग्रह कार्य प्रपंच रे;
जेम जेम ते हडसेलीओ,
तेम वधे, न घटे रंच रे.'

इस समय एक भयानक उदय आया, जिससे परिग्रह कार्यके प्रपंचमें पड़ना पड़ा। ज्यों ज्यों उसे धक्का मारकर हटाते हैं त्यों त्यों वह उल्टा वढ़ता ही जाता है, लेकिन रंचमात्र भी कम नहीं होता। यों तो उदयकर्म भगवान महावीर स्वामीको भी भोगना पड़ा था, तथा सवको भोगना ही पड़ता है, अज्ञानी मोहभाव और वन्धभावसे कर्मको भोगता है, ज्ञानी निर्जराभावसे भोगता है।

इस स्थितिमें श्रीमद्का आत्ममन्थन पराकाष्ठाको पहुँचता है। परन्तु थोडे समयमें ही वे इस घोर संग्राममेंसे विजयी और अधिक तेजस्वी होकर वाहर आते हैं। तेईसवें वर्षमें तो रणसंग्रामकी धूलके वदलेमें एक शान्त, समाहित और आत्मलक्षी पुरुषका इनमें दर्शन होता है। इनकी अभ्यन्तर दशा एक विशिष्ट प्रकारकी तीव्रता पकडती जाती है। इस वर्षमें उनकी समाधि दशा वढ़ती जाती है।

९

मनोमन्थन बादकी आत्मस्थिति

विवाह बादके तीव्र मनोमन्थनमेंसे अधिक तेजस्वी और आत्मनिष्ठ होकर श्रीमद् विशेष प्रकाशित हो उठते हैं। तेईसवें वर्षमें तो श्रीमद् अद्‌भुत आत्मस्थितिको पहुँच जाते हैं। इस वर्षमें सौभागभाईके ऊपर लिखे गये पत्रमें श्रीमद् बताते हैं :

'रात और दिन एक परमार्थ विषयका ही मनन रहता है; आहार भी यही है, निद्रा भी यही है, शयन भी यही है, स्वप्न भी यही है, भय भी यही है, भोग भी यही है, परिग्रह भी यही है, गति भी यही है, और आसन भी यही है।

'अधिक क्या कहा जाय? हड्डी, मांस और उसकी मज्जा पर एक उसी रंगका रंग चढ़ा हुआ है। मानो एक एक रोम भी इसीका विचार करता है। और इस कारणसे कुछ देखना अच्छा नहीं लगता, कुछ सूँघना अच्छा नहीं लगता, कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता, कुछ चखना अच्छा नहीं लगता, या कुछ स्पर्श करना अच्छा नहीं लगता,

कुछ बोलना अच्छा नहीं लगता, मौन रहना भी अच्छा नहीं लगता। उठना-बैठना, सोना-जागना, खाना या भूखा रहना, संग-असंग, लक्ष्मी-अलक्ष्मी आदि किसीमें भी रुचि नहीं रही ऐसी स्थिति है।

'फिर भी उसके प्रति आशा, निराशा कुछ भी उदय होता नहीं दिखाई देता। वह हो तो भी अच्छा और न हो तो भी अच्छा। ये कुछ दुःखके कारण नहीं हैं। दुःखका कारण एक विषमात्मा है और यदि वह सम है, सर्व सुख ही है। इस वृत्तिके कारण समाधि रहती है।

'परन्तु बाहरसे गृहस्थपनेकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती, देहभाव दिखाना नहीं पुसाता। आत्मभावसे बाह्य प्रवृत्ति करनेमें कितने ही अन्तराय हैं। तो अब क्या करना? किस पर्वतकी गुफामें जाकर लोप हो जाना, यही रटन है। तो भी बाहरसे संसारकी अमुक प्रवृत्ति करनी पड़ती है, उसके लिए शोक तो नहीं, फिर भी जीव उसे सहन नहीं करना चाहता। परमानन्दका त्याग करके इसे चाहे भी क्यों? और इसी कारणसे ज्योतिषादिकी* ओर चित्त नहीं है। किसी भी प्रकारके भविष्यज्ञान या सिद्धियोंकी इच्छा नहीं है, और उसका उपयोग करनेमें उदासीनता है। उसमें भी वर्तमानमें अधिक रहती है।....'

* श्रीमद् ज्योतिष विद्यामें निपुण थे। इस विषयमें ऐसा हुआ था कि, सं. १९४३के भाद्रपदमें बम्बई जानेसे पहले श्रीमद् जेतपर (मोरबीका गाँव) अपने बहनोई श्री चत्रभुज बेचरके यहाँ गये थे। उस समय श्रीमद्की आर्थिक स्थिति निर्बल थी। जेतपरमें

एक अन्य स्थल पर भी वे अपनी दिव्य अनुभूतिका वर्णन करते हैं।

'प्रभातमें मैं जल्दी उठा, तबसे कोई अपूर्व आनन्द रहा करता था।....इस एकाकार वृत्तिका वर्णन शब्दोंसे कैसे हो सकता है? वह दिनके बारह बजे तक रहा।

शंकर पंचोली नामके एक विद्वान् ज्योतिषी थे। उन्हें गणित फलादेशका अच्छा ज्ञान था। चत्रभुजभाईने उनसे श्रीमद्के बम्बई प्रयाण और अर्थप्राप्तिके सम्बन्धमें पूछा। शंकर पंचोलीने प्रश्नकुंडली बनाकर बम्बई जानेके अमुक समय पश्चात् अर्थलाभ बताया। उसमेंसे अमुक फलित हुआ और अमुक बराबर न फला। इससे श्रीमद्को अच्छा ज्योतिष जान लेनेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी।

बम्बईमें शतावधान करके श्रीमद्ने अच्छी ख्याति प्राप्त की। उस समय बम्बईके अग्रगण्य विद्वान्, पंडित, श्रीमान् आदि उपस्थित थे। उनमें अच्छे अच्छे ज्योतिषी भी थे। उनमें ज्योतिषियोंका, छोटी आयुके प्रबल प्रतिभासम्पन्न श्रीमद्के प्रति आकर्षण हुआ। इस प्रकारसे श्रीमद्को ज्योतिष जाननेकी इच्छा की पूर्ति करनेवाले साधनोंकी प्राप्ति हुई। विद्वान् ज्योतिषियोंका निमित्त पाकर श्रीमद् उन विद्वानोंसे भी अधिक उस विद्यामें पारंगत हुए थे।

इस विषयका एक प्रसिद्ध प्रसंग है। जौहरी रेवाशंकरभाई वकालत करते थे और व्यापार करनेकी उनकी स्वप्नमें भी भावना नहीं थी। वे उस समय कुछ कर्जदार थे। उनकी कुंडली देखकर श्रीमद्ने कहा था कि उनको व्यापारमें अत्यन्त लाभ है, बल्कि लक्षाधिपति होनेका योग है, ऐसा कहकर वकालत छोड़कर बम्बई जानेकी प्रेरणा श्रीमद्ने उन्हें की थी। श्री रेवाशंकरभाईने तदनुसार किया और श्रीमद्का कहा हुआ वचन सत्य निकला।

अपूर्व आनन्द तो वैसेका वैसा ही है, परन्तु अन्य ज्ञानकी बातोंमें, उसके बादका काल व्यतीत किया।....'

अपने एक अद्‌भुत अनुभवके बारेमें श्रीमद् सं. १९४४के आषाढ़ वदी तृतीयाके दिन लिखे गये पत्रमें विदित करते हैं :

'यह एक अद्‌भुत बात है कि चार पाँच दिन हुए बाँई आँखमें, एक छोटा चक्र जैसा बिजलीके समान प्रकाश हुआ करता है, जो आँखसे थोडी दूर जाकर अदृश्य हो जाता है। लगभग पाँच मिनट रहकर फिर दिखाई देता है। यह मेरी दृष्टिमें बारम्बार देखनेमें आता है।

इस सम्बन्धमें किसी प्रकारकी भ्रमणा नहीं है। इसका कुछ निमित्तकारण नहीं दिखाई पड़ता। इससे बहुत आश्चर्य उत्पन्न होता है। आँखमें दूसरा किसी भी प्रकारका विकार नहीं है। प्रकाश और दिव्यता विशेष रूपसे रहा करती है। चार दिन पहले दोपहरको २–२० मिनट पर एक आश्चर्यभूत स्वप्न आया था, उसके बाद यह सब हुआ, ऐसा मालूम होता है। अन्तःकरणमें खूब प्रकाश रहता है, शक्ति खूब रहती है। ध्यान समाधिस्थ रहता है।....'

आगे वे कार्तिकमें १९४६के पत्रमें प्रगट करते हैं।

'उस पवित्र दर्शनके बाद फिर चाहे कैसा आचरण क्यों न हो परन्तु उसे तीव्र बन्धन नहीं है, अनन्त संसार नहीं है, सोलह भव नहीं हैं, अभ्यन्तरमें दुःख नहीं है, शंकाका निमित्त नहीं है, अन्तरंगमें मोहिनी नहीं है, सत् सत्, निरुपम, सर्वोत्तम, शुक्ल, शीतल, अमृतमय दर्शनज्ञान;

एक अन्य स्थल पर भी वे अपनी दिव्य अनुभूतिका वर्णन करते हैं।

'प्रभातमें मैं जल्दी उठा, तबसे कोई अपूर्व आनन्द रहा करता था।....इस एकाकार वृत्तिका वर्णन शब्दोंसे कैसे हो सकता है? वह दिनके बारह बजे तक रहा।

शंकर पंचोली नामके एक विद्वान् ज्योतिषी थे। उन्हें गणित फलादेशका अच्छा ज्ञान था। चत्रभुजभाईने उनसे श्रीमद्के बम्बई प्रयाण और अर्थप्राप्तिके सम्बन्धमें पूछा। शंकर पंचोलीने प्रश्नकुंडली बनाकर बम्बई जानेके अमुक समय पश्चात् अर्थलाभ बताया। उसमेंसे अमुक फलित हुआ और अमुक बराबर न फला। इससे श्रीमद्को अच्छा ज्योतिष जान लेनेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी।

बम्बईमें शतावधान करके श्रीमद्ने अच्छी ख्याति प्राप्त की। उस समय बम्बईके अग्रगण्य विद्वान्, पंडित, श्रीमान् आदि उपस्थित थे। उनमें अच्छे अच्छे ज्योतिषी भी थे। उनमें ज्योतिषियोंका, छोटी आयुके प्रबल प्रतिभासम्पन्न श्रीमद्के प्रति आकर्षण हुआ। इस प्रकारसे श्रीमद्को ज्योतिष जाननेकी इच्छा की पूर्ति करनेवाले साधनोंकी प्राप्ति हुई। विद्वान् ज्योतिषियोंका निमित्त पाकर श्रीमद् उन विद्वानोंसे भी अधिक उस विद्यामें पारंगत हुए थे।

इस विषयका एक प्रसिद्ध प्रसंग है। जौहरी रेवाशंकरभाई वकालत करते थे और व्यापार करनेकी उनकी स्वप्नमें भी भावना नहीं थी। वे उस समय कुछ कर्जदार थे। उनकी कुंडली देखकर श्रीमद्ने कहा था कि उनको व्यापारमें अत्यन्त लाभ है, बल्कि लक्षाधिपति होनेका योग है, ऐसा कहकर वकालत छोड़कर बम्बई जानेकी प्रेरणा श्रीमद्ने उन्हें की थी। श्री रेवाशंकरभाईने तदनुसार किया और श्रीमद्का कहा हुआ वचन सत्य निकला।

अपूर्व आनन्द तो वैसेका वैसा ही है, परन्तु अन्य ज्ञानकी बातोंमें, उसक बादका काल व्यतीत किया।....'

अपने एक अद्‌भुत अनुभवके बारेमें श्रीमद् सं. १९४४के आषाढ़ वदी तृतीयाके दिन लिखे गये पत्रमें विदित करते हैं :

'यह एक अद्‌भुत बात है कि चार पाँच दिन हुए बाँई आँखमें, एक छोटा चक्र जैसा बिजलीके समान प्रकाश हुआ करता है, जो आँखसे थोडी दूर जाकर अदृश्य हो जाता है। लगभग पाँच मिनट रहकर फिर दिखाई देता है। यह मेरी दृष्टिमें बारम्बार देखनेमें आता है।

इस सम्बन्धमें किसी प्रकारकी भ्रमणा नहीं है। इसका कुछ निमित्तकारण नहीं दिखाई पड़ता। इससे बहुत आश्चर्य उत्पन्न होता है। आँखमें दूसरा किसी भी प्रकारका विकार नहीं है। प्रकाश और दिव्यता विशेष रूपसे रहा करती है। चार दिन पहले दोपहरको २–२० मिनट पर एक आश्चर्यभूत स्वप्न आया था, उसके बाद यह सब हुआ, ऐसा मालूम होता है। अन्तःकरणमें खूब प्रकाश रहता है, शक्ति खूब रहती है। ध्यान समाधिस्थ रहता है।....'

आगे वे कार्तिकमें १९४६ के पत्रमें प्रगट करते हैं।

'उस पवित्र दर्शनके बाद फिर चाहे कैसा आचरण क्यों न हो परन्तु उसे तीव्र बन्धन नहीं है, अनन्त संसार नहीं है, सोलह भव नहीं हैं, अभ्यन्तरमें दुःख नहीं है, शंकाका निमित्त नहीं है, अन्तरंगमें मोहिनी नहीं है, सत् सत्, निरुपम, सर्वोत्तम, शुक्ल, शीतल, अमृतमय दर्शनज्ञान;

सम्यक् ज्योतिर्मय चिरकाल आनन्दकी प्राप्ति है। उस अद्भुत सत् स्वरूप दर्शनकी बलिहारी है।

'जहाँ मतभेद नहीं, जहाँ शंका नहीं, कांक्षा, वितिगिच्छा (जुगुप्सा), मूढदृष्टि इनमेंसे कुछ भी नहीं है। और जो है उसे कलम नहीं लिख सकती, वचनसे उसका वर्णन नहीं हो सकता तथा मन भी जिसका विचार नहीं कर सकता।....'

श्रीमद्के पवित्र जीवनमें कल्याणकारी धार्मिक भावनायें यहाँ तक भरी हुई थीं कि स्वप्न भी उनको उस विषयका आया करता था।

सं. १९४६में जेष्ठ वदी बारसके एक पत्रमें श्रीमद् लिखते हैं।

'कल रातको एक अद्भुत स्वप्न आया था। उसमें दो पुरुषोंके समीप इस जगत्की रचनाके स्वरूपका वर्णन किया था। प्रथम सबकुछ भुलाकर जगत्का दर्शन कराया था। स्वप्नमें भगवान् महावीरका उपदेश सप्रमाण सिद्ध हुआ था। इस स्वप्नका वर्णन अतिशय सुन्दर और चमत्कारी होनेसे परमानन्द हुआ था।'

पुनः श्रीमद् श्री सौभागभाईको सं. १९४७में मार्गशीर्ष वदी अमावस्याके दिन लिखे गये एक पत्रमें अपने मनकी स्थितिका कथन करते हैं।

'सत्स्वरूपको अभेदभावसे अपूर्व समाधिमें स्मरण करता हूँ।

'अन्तिम स्वरूप समझनेमें उसका अनुभव करनेमें अल्प

भी न्यूनता नहीं रही है। जैसा है वैसा स्वरूप सब तरहसे समझमें आया है। सर्व प्रकारका, एक देश छोड़कर बाकी सब अनुभवमें आया है। एक देश भी समझे बिना नहीं रहा है, परन्तु योग(मन, वचन, काया)से असंग होनेके लिए वनवासकी आवश्यक्ता है और वैसा होनेपर वह देश भी अनुभवमें आयेगा अर्थात् उसीमें रहा जायेगा। परिपूर्ण लोकालोकज्ञान उत्पन्न होगा; और उसे उत्पन्न करनेकी तो इच्छा नहीं है, तो फिर कैसे उत्पन्न होगा? यह आश्चर्यकारक है। परिपूर्ण स्वरूपज्ञान तो उत्पन्न हुआ ही है, और इस समाधिसे निकलकर लोकालोकके दर्शनके प्रति जाना कैसे बनेगा? (यह भी एक मुझे नहीं परन्तु पत्र लिखनेवालेको विकल्प आता है।)

'...अब हम अपनी दशा किसी प्रकारसे नहीं कह सकेंगे, तो लिख सकेंगे कैसे? आपके दर्शन होनेपर यदि वाणी कुछ कह सकेगी तो कहेगी, बाकी तो निरुपायता है। मुक्ति भी नहीं चाहिए, और जिसको जैनोंका केवलज्ञान भी नहीं चाहिए, उस पुरुषको परमेश्वर फिर कौन-सा पद देगा? यह कुछ आपके विचारमें आता है? यदि आता हो तो आश्चर्ययुक्त होना; नहीं तो यहाँसे तो किसी प्रकारसे कुछ भी बाहर आ सके, ऐसा मालूम नहीं देता।

'आप जो कुछ व्यावहारिक धर्मप्रश्न भेजते हैं, उनपर भी लक्ष्य नहीं जाता। उनके अक्षर भी पूरे पढ़नेके लिए लक्ष्य नहीं जाता, तो फिर उनका उत्तर न दिया जा सके तो आप क्यों उसकी प्रतीक्षा करते हैं? अर्थात् अब वह

कब होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

'आप बारम्बार लिखते हैं कि दर्शन करनेकी अति आतुरता है, परन्तु महावीर देवने इस कालको पंचमकाल कहा है, व्यास भगवान्ने कलियुग कहा है; वह कहाँसे एक साथ रहने दे? और यदि रहने दे तो आपको उपाधि-युक्त क्यों न रखे?

'यह भूमिका उपाधिकी शोभाका संग्रहस्थान है।'

श्रीमद् संवत् १९४७ में पौष सुदी ५ को लिखते हैं:

'अलखनाम धुनी लगी गगनमें,
मगन भया मन मेरा जी;
आसन मारी सुरत दृढ़ धारी,
दिया अगम घर डेराजी;
दरश्या अलख देदाराजी।'

गगन—निर्विकल्प समाधि—में अलक्ष्य धुनी लगी हुई है, उसीमें मेरा मन मग्न—लीन हुआ है। आसन मारकर तथा अचल ध्यान धारणकर अगम परमात्माके घरमें डेरा जमाया है। अलख रूपके दर्शन हुए हैं।

उपर्युक्त वर्षके माह वदी ३ के दिनका अनुभव प्रगट करते हुए वे एक पत्रमें लिखते हैं:

'आज प्रभातसे निरंजनदेवका कोई अद्भुत अनुग्रह प्रकाशित हुआ है, आज चिरकालकी इच्छित पराभक्ति कोई अनुपम रूपमें उदित हुई है।'

इस प्रकार श्रीमद्का धीरोदात्त जीवनप्रवाह सम्पूर्ण विशुद्ध आत्मस्थितिकी ओर अविरत रूपसे वहने लगता

है। चौवीसवें वर्षमें अर्थात् १९४७ में श्रीमद् राजचन्द्रके परमानन्दकी मस्ती वढ़ती जाती है। सं. १९४७के आषाढ़ सुदी १३के पत्रको ही देखिये।

'सुखका सिन्धु श्री सहजानन्दजी,
जगजीवन के जगवन्दजी;
शरणागतना सदा सुखकन्दजी,
परमस्नेही छो परमानन्दजी.

श्री सहजानन्दजी आप सुखके सिन्धु हैं, जगत्के जीवन-आधार हैं, जगतमें वन्दनीय हैं। शरणागतके लिए आप सदा सुखके मूल हैं, परमस्नेहवाले हैं और परमानन्द स्वरूप हैं।

'हम हरिकृपासे परम प्रसन्न पदमें हैं।

'हालमें हमारी दशा कैसी है, यह जाननेकी आपकी इच्छा रहा करती है, परन्तु वह जैसे विस्तारसे चाहिए वैसे विस्तारसे नहीं लिखी जा सकती, इस कारण वारंवार नहीं लिखी है। यहाँ हम संक्षेपमें लिखते हैं।

'एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसंपत्तिके विना हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हमारी किसी पदार्थमें रुचि नहीं है, कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं होती, व्यवहार कैसे चलता है, इसका भी भान नहीं है; जगत् किस स्थितिमें है इसकी स्मृति नहीं रहती; शत्रु-मित्रमें कोई भेदभाव नहीं है; कौन मित्र और कौन शत्रु है, इसका ख्याल रहता नहीं है। हम देहधारी हैं या नहीं, इसका जव स्मरण करते हैं तव वडी कठिनतासे जानते हैं; हमें

कब होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

'आप बारम्बार लिखते हैं कि दर्शन करनेकी अति आतुरता है, परन्तु महावीर देवने इस कालको पंचमकाल कहा है, व्यास भगवान्ने कलियुग कहा है; वह कहाँसे एक साथ रहने दे? और यदि रहने दे तो आपको उपाधि-युक्त क्यों न रखे?

'यह भूमिका उपाधिकी शोभाका संग्रहस्थान है।'

श्रीमद् संवत् १९४७ में पौष सुदी ५ को लिखते हैं:

'अलखनाम धुनी लगी गगनमें,
मगन भया मन मेरा जी;
आसन मारी सुरत दृढ़ धारी,
दिया अगम घर डेराजी;
दरश्या अलख देदाराजी।'

गगन—निर्विकल्प समाधि—में अलक्ष्य धुनी लगी हुई है, उसीमें मेरा मन मग्न—लीन हुआ है। आसन मारकर तथा अचल ध्यान धारणकर अगम परमात्माके घरमें डेरा जमाया है। अलख रूपके दर्शन हुए हैं।

उपर्युक्त वर्षके माह वदी ३ के दिनका अनुभव प्रगट करते हुए वे एक पत्रमें लिखते हैं:

'आज प्रभातसे निरंजनदेवका कोई अद्‌भुत अनुग्रह प्रकाशित हुआ है, आज चिरकालकी इच्छित पराभक्ति कोई अनुपम रूपमें उदित हुई है।'

इस प्रकार श्रीमद्‌का धीरोदात्त जीवनप्रवाह सम्पूर्ण विशुद्ध आत्मस्थितिकी ओर अविरत रूपसे बहने लगता

है। चौवीसवें वर्षमें अर्थात् १९४७ में श्रीमद् राजचन्द्रके परमानन्दकी मस्ती बढ़ती जाती है। सं. १९४७के आषाढ़ सुदी १३के पत्रको ही देखिये।

'सुखका सिन्धु श्री सहजानन्दजी,
जगजीवन के जगवन्दजी;
शरणागतना सदा सुखकन्दजी,
परमस्नेही छो परमानन्दजी.

श्री सहजानन्दजी आप सुखके सिन्धु हैं, जगत्के जीवन-आधार हैं, जगतमें वन्दनीय हैं। शरणागतके लिए आप सदा सुखके मूल हैं, परमस्नेहवाले हैं और परमानन्द स्वरूप हैं।

'हम हरिकृपासे परम प्रसन्न पदमें हैं।

'हालमें हमारी दशा कैसी है, यह जाननेकी आपकी इच्छा रहा करती है, परन्तु वह जैसे विस्तारसे चाहिए वैसे विस्तारसे नहीं लिखी जा सकती, इस कारण वारंवार नहीं लिखी है। यहाँ हम संक्षेपमें लिखते हैं।

'एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसंपत्तिके विना हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हमारी किसी पदार्थमें रुचि नहीं है, कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं होती, व्यवहार कैसे चलता है, इसका भी भान नहीं है; जगत् किस स्थितिमें है इसकी स्मृति नहीं रहती; शत्रु-मित्रमें कोई भेदभाव नहीं है; कौन मित्र और कौन शत्रु है, इसका ख्याल रहता नहीं है। हम देहधारी हैं या नहीं, इसका जब स्मरण करते हैं तब बडी कठिनतासे जानते हैं; हमें

कब होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

'आप बारम्बार लिखते हैं कि दर्शन करनेकी अति आतुरता है, परन्तु महावीर देवने इस कालको पंचमकाल कहा है, व्यास भगवान्‌ने कलियुग कहा है; वह कहाँसे एक साथ रहने दे? और यदि रहने दे तो आपको उपाधि-युक्त क्यों न रखे?

'यह भूमिका उपाधिकी शोभाका संग्रहस्थान है।'

श्रीमद् संवत् १९४७ में पौष सुदी ५ को लिखते हैं:

'अलखनाम धुनी लगी गगनमें,
मगन भया मन मेरा जी;
आसन मारी सुरत दृढ़ धारी,
दिया अगम घर डेराजी;
दरश्या अलख देदाराजी।'

गगन – निर्विकल्प समाधि – में अलक्ष्य धुनी लगी हुई है, उसीमें मेरा मन मग्न – लीन हुआ है। आसन मारकर तथा अचल ध्यान धारणकर अगम परमात्माके घरमें डेरा जमाया है। अलख रूपके दर्शन हुए हैं।

उपर्युक्त वर्षके माह वदी ३ के दिनका अनुभव प्रगट करते हुए वे एक पत्रमें लिखते हैं:

'आज प्रभातसे निरंजनदेवका कोई अद्‌भुत अनुग्रह प्रकाशित हुआ है, आज चिरकालकी इच्छित पराभक्ति कोई अनुपम रूपमें उदित हुई है।'

इस प्रकार श्रीमद्‌का धीरोदात्त जीवनप्रवाह सम्पूर्ण विशुद्ध आत्मस्थितिकी ओर अविरत रूपसे बहने लगता

होने पर भी मनमानी उदासीनता नहीं है, ऐसा हम मानते हैं। अखंड प्रेमकी खुमारी जैसी प्रवाहित होनी चाहिए वैसी प्रवाहित नहीं है, ऐसा हम जानते हैं। ऐसा करनेसे वह अखंड खुमारी प्रवाहित होगी; ऐसा निश्चयरूपसे मानते हैं। परन्तु उसे करनेमें काल कारणभूत हो रहा है और यह सब दोष हमारा है या हरिका, ऐसा यथोचित निर्णय नहीं कर सकते।

'इतनी अधिक उदासीनता होने पर भी व्यापार करते हैं, लेते-देते हैं, लिखते-पढ़ते हैं, संभाल रखते हैं और खेद करते हैं तथा हंसते हैं। जिसका कोई ठिकाना नहीं ऐसी हमारी दशा है और उसका कारण यही है कि जबतक हरिकी इच्छाको सुखद नहीं माना है, तबतक खेद मिटनेवाला नहीं है।

'....प्रभुकी परम कृपा है। हमें किसीसे भिन्न भाव नहीं है। किसी पर दोषबुद्धि नहीं आती।....सिद्धान्तज्ञान हमारे हृदयमें आवरितरूपसे पड़ा है। यदि हरि–इच्छा प्रगट होने देनेकी होगी तो प्रगट होगा। हमारा देश हरि है, जाति हरि है, काल हरि है, देह हरि है, रूप हरि है, नाम हरि है, दिशा हरि है, सबकुछ हरि है, और वैसा होने पर भी इस प्रकार व्यापारमें हैं, यह इसकी इच्छाका कारण है।'

इसी मासमें लिखे हुए श्रीमद्के आत्मानुभूतिपूर्ण पद्यकी ओर दृष्टिपात करना अनुचित न होगा।

क्या करना है इसका कोई अनुमान नहीं कर शकता।

'सब पदार्थोंमें उदासी आ जानेसे हम इच्छानुसार प्रवृत्ति करते हैं। व्रत-नियमका कोई नियम नहीं रखा है। जाति-पांतिका कोई प्रसंग नहीं है। हमने जगत्‌में अपनेसे विमुख किसीको नहीं माना है; हमारे जैसे सत्संगी न मिलनेसे खेद रहता है, सम्पत्ति पूर्ण है इस कारण उसकी इच्छा नहीं रहती, अनुभवित शब्दादि विषय स्मृतिमें आनेसे अथवा ईश्वरेच्छासे उसकी इच्छा नहीं रही है, अपनी इच्छासे थोडी ही प्रवृत्ति की जाती है।

'हरिका इच्छित क्रम जैसे चलाता है वैसे चलते हैं। हृदय प्रायः शून्य-सा हो गया है। पाँचों इंद्रिय शून्यरूप प्रवर्तमान हैं। नय, प्रमाण आदि शास्त्रभेद याद नहीं आते, कुछ भी पढ़नेसे चित्त स्थिर नहीं रहता। खाने, पीने, बैठने, सोने, चलने और बोलनेकी वृत्तियाँ अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हैं। मन अपने स्वाधीन है या नहीं इसका यथायोग्य ज्ञान नहीं रहा है।

'इस प्रकार सब तरहसे विचित्र उदासीनता आ जानेसे चाहे जैसी प्रवृत्ति करते हैं। एक प्रकारसे यह पूरा पागलपन है और एक प्रकारसे उस पागलपनको कुछ छिपाकर रखते हैं। तथा जितने अंशमें उसे छिपाकर रखते हैं, उतने अंशमें हानि है। हम योग्य प्रवृत्ति करते हैं या अयोग्य इसका कुछ हिसाब नहीं रखा है।

'आदिपुरुषमें अखंड प्रेमके सिवाय अन्य मोक्षादि पदार्थोंकी आकांक्षा नष्ट हो गई है। इतना सब कुछ

होने पर भी मनमानी उदासीनता नहीं है, ऐसा हम मानते हैं। अखंड प्रेमकी खुमारी जैसी प्रवाहित होनी चाहिए वैसी प्रवाहित नहीं है, ऐसा हम जानते हैं। ऐसा करनेसे वह अखंड खुमारी प्रवाहित होगी; ऐसा निश्चयरूपसे मानते हैं। परन्तु उसे करनेमें काल कारणभूत हो रहा है और यह सब दोष हमारा है या हरिका, ऐसा यथोचित निर्णय नहीं कर सकते।

'इतनी अधिक उदासीनता होने पर भी व्यापार करते हैं, लेते-देते हैं, लिखते-पढ़ते हैं, संभाल रखते हैं और खेद करते हैं तथा हंसते हैं। जिसका कोई ठिकाना नहीं ऐसी हमारी दशा है और उसका कारण यही है कि जबतक हरिकी इच्छाको सुखद नहीं माना है, तबतक खेद मिटनेवाला नहीं है।

'....प्रभुकी परम कृपा है। हमें किसीसे भिन्न भाव नहीं है। किसी पर दोषबुद्धि नहीं आती।....सिद्धान्तज्ञान हमारे हृदयमें आवरितरूपसे पड़ा है। यदि हरि–इच्छा प्रगट होने देनेकी होगी तो प्रगट होगा। हमारा देश हरि है, जाति हरि है, काल हरि है, देह हरि है, रूप हरि हैं, नाम हरि है, दिशा हरि है, सबकुछ हरि है, और वैसा होने पर भी इस प्रकार व्यापारमें हैं, यह इसकी इच्छाका कारण है।'

इसी मासमें लिखे हुए श्रीमद्के आत्मानुभूतिपूर्ण पद्यकी ओर दृष्टिपात करना अनुचित न होगा।

'विना नयन पावे नहि, विना नयनकी बात;
सेवे सद्गुरुके चरन, सो पावे साक्षात्. १
बूझी चहत जो प्यास को, है बूझनकी रीत;
पावे नहि गुरुगम विना, एहि अनादि स्थित. २
एहि नहि है कल्पना, एहि नहि विभंग;
कई नर पंचमकालमें, देखी वस्तु अभंग. ३
नहि दे तु उपदेशकुं, प्रथम लेहि उपदेश;
सबसें न्यारा अगम है, वो ज्ञानीका देश. ४
जप, तप, और व्रतादि सब, तहाँ लगी भ्रमरूप;
जहाँ लगी नहि संतकी, पाई कृपा अनूप. ५
पायाकी ए बात है, निज छन्दनको छोड;
पिछे लाग सत्पुरुषके, तो सब बन्धन तोड़.' ६

इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्र आगे बढ़ते वढ़ते उस स्थितिको प्राप्त होते हैं, जिसके लिए वे आतुर थे। और इस गाढ़ स्वरूपस्थितिकी दशामें वे अपने पत्रोंमें अपने लिए 'यथार्थ बोधस्वरूप', 'श्री बोधस्वरूप', 'बोधबीज', 'समस्थितभाव', 'स्वरूपस्थ', 'निष्काम आत्मस्वरूप', 'सहजस्वरूप', 'अप्रतिवद्ध', 'अभिन्न वोधमय', 'समाधिरूप', 'अचिन्त्यदशास्वरूप' आदि उपनामोंका प्रयोग करते हैं। और एक स्थान पर तो श्रीमद् अपनेको आप ही प्रणाम करते हैं। वह वाक्य इस प्रकार है 'जिसमें अविषमरूपसे आत्मध्यान रहता है ऐसे श्री राजचन्द्रके प्रति पुनः पुनः (वारम्वार) नमस्कार।....'

और इस परमस्थिति प्राप्तिका आनन्दोद्गार श्रीमद्ने

एक पदमें उल्लासपूर्वक गाया है। उस पदकी थोड़ी-सी पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं:

'धन्य रे दिवस आ अहो,
जागी रे शान्ति अपूर्व रे;
दश वर्षे रे धारा ऊलसी,
मट्यो उदयकर्मनो गर्व रे.
ओगणीसें सुडताळीसे,
समकित शुद्ध प्रकाश्युं रे;
श्रुत अनुभव वधती दशा,
निज स्वरूप अवभास्युं रे.'

अहा! इस दिनको धन्य है, जब आत्मामें अपूर्व शान्ति जाग्रत हुई है। दश वर्षमें यह धारा उल्लसित हुई और उदयकर्मका गर्व दूर हो गया। अहा! इस दिनको धन्य है।

संवत् उन्नीससौ सेंतालीसमें शुद्ध समकितका प्रकाश हुआ; श्रुतका अनुभव, वढ़ती दशा और निज स्वरूपका दर्शन हुआ।

इस प्रकार सं. १९४७में श्रीमद् राजचन्द्रको सम्यग्दर्शन—आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति हुई और फिर वे शान्त, स्थिर होकर परम निर्ग्रन्थ पदकी ओर मुडे। इसी वातको वे एक पद्यसे प्रगट करते हैं।

'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं वाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?

'विना नयन पावे नहि, विना नयनकी वात;
सेवे सद्‌गुरुके चरन, सो पावे साक्षात्. १
बूझी चहत जो प्यास को, है बूझनकी रीत;
पावे नहि गुरुगम विना, एहि अनादि स्थित. २
एहि नहि है कल्पना, एहि नहि विभंग;
कई नर पंचमकालमें, देखी वस्तु अभंग. ३
नहि दे तुं उपदेशकुं, प्रथम लेहि उपदेश;
सबसें न्यारा अगम है, वो ज्ञानीका देश. ४
जप, तप, और व्रतादि सब, तहाँ लगी भ्रमरूप;
जहाँ लगी नहि संतकी, पाई कृपा अनूप. ५
पायाकी ए वात है, निज छन्दनको छोड;
पिछे लाग सत्पुरुषके, तो सब वन्धन तोड.' ६

इस प्रकार श्रीमद् राजचन्द्र आगे बढ़ते बढ़ते उस स्थितिको प्राप्त होते हैं, जिसके लिए वे आतुर थे। और इस गाढ़ स्वरूपस्थितिकी दशामें वे अपने पत्रोंमें अपने लिए 'यथार्थ बोधस्वरूप', 'श्री बोधस्वरूप', 'बोधबीज', 'समस्थितभाव', 'स्वरूपस्थ', 'निष्काम आत्मस्वरूप', 'सहजस्वरूप', 'अप्रतिवद्ध', 'अभिन्न वोधमय', 'समाधिरूप', 'अचिन्त्यदशास्वरूप' आदि उपनामोंका प्रयोग करते हैं। और एक स्थान पर तो श्रीमद् अपनेको आप ही प्रणाम करते हैं। वह वाक्य इस प्रकार है 'जिसमें अविषमरूपसे आत्मध्यान रहता है ऐसे श्री राजचन्द्रके प्रति पुनः पुनः (वारम्वार) नमस्कार।....'

और इस परमस्थिति प्राप्तिका आनन्दोद्‌गार श्रीमद्‌ने

१०

व्यवहारमें आदर्शरूप श्रीमद्

श्रीमद् जिस समय प्रबल आत्मचिन्तन और प्रबल आत्मस्थितिकी दशामेंसे पार हो रहे थे, उस समय दरम्यान ही उनकी व्यावहारिक उपाधि भी उतनी ही दृढ़ होती जाती थी। परन्तु अपनी आन्तर दशा और बाह्य उपाधि इन दोनोंके बीचमें भी श्रीमद् राजचन्द्रने कैसा उत्तम प्रकारका मेल किया था, वह इस वर्षमें उनके लिखे गये पत्रोंमें प्रायः देखनेको मिलता है।

संवत् १९४८की पौष सुदी सप्तमीके दिन लिखे गये पत्रमें श्रीमद्जी विदित करते हैं।

'कोई इस प्रकारका उदय है कि, अपूर्व वीतरागता होते हुए भी व्यापार सम्बन्धी हम कुछ प्रवृत्ति कर सकते हैं, तथा अन्य भी खाने-पीने आदिकी प्रवृत्ति बडी मुश्किलसे कर सकते हैं। मन कहीं विराम नहीं पाता, प्रायः वह यहाँ किसीका समागम भी नहीं चाहता।'

सं. १९४८के माह वदी ४के पत्रको देखिये:

'जहाँ चारों ओर उपाधिकी ज्वाला प्रज्वलित हो रही

सर्व सम्बन्धनुं बन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पन्थ जो ?'

ऐसा अपूर्व अवसर कव आयेगा ? कव मैं वाह्य और अन्तरंगसे निर्ग्रन्थ वनूँगा ? समस्त सम्बन्धसे तीक्ष्ण बन्धनको छेदकर कव मैं महान पुरुषोंके पन्थ पर विचरण करूँगा ? ऐसा अपूर्व अवसर कव प्राप्त होगा ?

१०

व्यवहारमें आदर्शरूप श्रीमद्

श्रीमद् जिस समय प्रवल आत्मचिन्तन और प्रवल आत्मस्थितिकी दशामेंसे पार हो रहे थे, उस समय दरम्यान ही उनकी व्यावहारिक उपाधि भी उतनी ही दृढ़ होती जाती थी। परन्तु अपनी आन्तर दशा और वाह्य उपाधि इन दोनोंके वीचमें भी श्रीमद् राजचन्द्रने कैसा उत्तम प्रकारका मेल किया था, वह इस वर्पमें उनके लिखे गये पत्रोंमें प्रायः देखनेको मिलता है।

संवत् १९४८की पौष सुदी सप्तमीके दिन लिखे गये पत्रमें श्रीमद्जी विदित करते हैं।

'कोई इस प्रकारका उदय है कि, अपूर्व वीतरागता होते हुए भी व्यापार सम्वन्धी हम कुछ प्रवृत्ति कर सकते हैं, तथा अन्य भी खाने-पीने आदिकी प्रवृत्ति वडी मुश्किलसे कर सकते हैं। मन कहीं विराम नहीं पाता, प्रायः वह यहाँ किसीका समागम भी नहीं चाहता।'

सं. १९४८के माह वदी ४के पत्रको देखिये:

'जहाँ चारों ओर उपाधिकी ज्वाला प्रज्वलित हो रही

सर्व सम्बन्धनुं बन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पन्थ जो?'

ऐसा अपूर्व अवसर कब आयेगा? कब मैं बाह्य और अन्तरंगसे निर्ग्रन्थ बनूँगा? समस्त सम्बन्धसे तीक्ष्ण बन्धनको छेदकर कब मैं महान पुरुषोंके पन्थ पर विचरण करूँगा? ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा?

इन तीनों योगोंसे व्रतोंका पालन करना चाहिए।'

इससे देवकरणजीने आक्षेप करते हुए कहा: 'आप गद्दी पर बैठते हैं और हीरामाणिक आपके पास रहते हैं, तो उस समय आपकी वृत्ति डोलायमान नहीं होती?'

श्रीमद्ने कहा: 'मुनि, हम तो उन्हें कालकूट विष मानते हैं।' पुनः श्रीमद्जीने पूछा: 'आप कौन हैं?'

श्री देवकरणजी बोले: 'जितने समयतक वृत्ति स्थिर रहती है, तबतक साधु।'

श्रीमद्ने कहा: 'इस प्रकार तो संसारीको भी साधु कह सकते हैं या नहीं?'

यह सुनकर देवकरणजी चुप रहे।

पुनः श्रीमद्जी बोले: 'नारियलका गोला जैसे उससे जुदा रहता है वैसे ही हम रहते हैं।'

एक दूसरा उदाहरण भी मननीय है।

एक समय श्रीमद् घूमने गये थे। श्मशानका स्थल आया, तब श्रीमद्ने साथमें आनेवाले एक भाईसे पूछा: 'यह क्या है?'

उसने कहा: 'श्मसान।'

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा: 'हमें तो सारी बम्बई श्मसान समान लगती है।'

सं. १९४८के माह वदीके एक पत्रका विचार कीजिये। वे लिखते हैं।

'क्षणभर भी अविकल्प समाधिका ध्यान नहीं दूर होता फिर भी अनेक वर्षोसे विकल्परूप उपाधिकी आराधना

हो ऐसे प्रसंगमें समाधि रहना परम दुष्कर है; और यह बात परम ज्ञानीके सिवाय अन्यसे बनना अति कठिन है। हमें भी आश्चर्य होता है, तथापि प्रायः इस प्रकार रहा करता है, ऐसा हमको अनुभव है।

'जो आत्मभावको यथार्थ समझता है, निश्चल रहता है, उसे यह समाधि प्राप्त होती है।

'हम सम्यग्दर्शनका लक्षण वीतरागता मानते हैं, और वैसा अनुभव है।'

इस बातके समर्थनमें श्रीमद्के जीवनकी एक घटना पाठकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी होगी।

खंभात संघके मुख्य आचार्य श्री हरखचंदजी महाराजके साधुओंमें श्री लल्लुजी महाराज नामके एक साधु थे। उनका श्रीमद्के साथ अत्यन्त परिचय था। श्री लल्लुजी महाराजके शिष्य श्री देवकरणजी महाराज कुशल व्याख्यान दाता थे। वे एक बार श्रीमद्से मिलने आये।

बातचीत करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रने देवकरणजीसे पूछा:

'व्याख्यानमें कितने मनुष्य आते हैं?'

देवकरणजीने कहा: 'करीब एक हजार मनुष्योंकी उपस्थिति रहती है।'

श्रीमद्ने प्रश्न किया: 'स्त्रियोंको व्याख्यानमें देखकर विकार होता है?'.

देवकरणजीने कहा: 'काया (शरीर)से नहीं होता, मनसे होता है।'

श्रीमद्ने कहा: 'मुनिको तो मन, वचन, और काया

इन तीनों योगोंसे व्रतोंका पालन करना चाहिए।'

इससे देवकरणजीने आक्षेप करते हुए कहा: 'आप गद्दी पर बैठते हैं और हीरामाणिक आपके पास रहते हैं, तो उस समय आपकी वृत्ति डोलायमान नहीं होती?'

श्रीमद्ने कहा: 'मुनि, हम तो उन्हें कालकूट विप मानते हैं।' पुनः श्रीमद्जीने पूछा: 'आप कौन हैं?'

श्री देवकरणजी बोले: 'जितने समयतक वृत्ति स्थिर रहती है, तबतक साधु।'

श्रीमद्ने कहा: 'इस प्रकार तो संसारीको भी साधु कह सकते हैं या नहीं?'

यह सुनकर देवकरणजी चुप रहे।

पुनः श्रीमद्जी बोले: 'नारियलका गोला जैसे उससे जुदा रहता है वैसे ही हम रहते हैं।'

एक दूसरा उदाहरण भी मननीय है।

एक समय श्रीमद् घूमने गये थे। श्मशानका स्थल आया, तब श्रीमद्ने साथमें आनेवाले एक भाईसे पूछा: 'यह क्या है?'

उसने कहा: 'श्मसान।'

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा: 'हमें तो सारी बम्बई श्मसान [illegible]न लगती है।'

सं. १९४८के माह वदीके एक पत्रका विचार कीजिये। वे लिखते हैं।

'क्षणभर भी अविकल्प समाधिका ध्यान नहीं दूर होता फिर भी अनेक वर्षोंसे विकल्परूप उपाधिकी आराधना

हो ऐसे प्रसंगमें समाधि रहना परम दुष्कर है; और यह वात परम ज्ञानीके सिवाय अन्यसे बनना अति कठिन है। हमें भी आश्चर्य होता है, तथापि प्रायः इस प्रकार रहा करता है, ऐसा हमको अनुभव है।

'जो आत्मभावको यथार्थ समझता है, निश्चल रहता है, उसे यह समाधि प्राप्त होती है।

'हम सम्यग्दर्शनका लक्षण वीतरागता मानते हैं, और वैसा अनुभव है।'

इस बातके समर्थनमें श्रीमद्के जीवनकी एक घटना पाठकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी होगी।

खंभात संघके मुख्य आचार्य श्री हरखचंदजी महाराजके साधुओंमें श्री लल्लुजी महाराज नामके एक साधु थे। उनका श्रीमद्के साथ अत्यन्त परिचय था। श्री लल्लुजी महाराजके शिष्य श्री देवकरणजी महाराज कुशल व्याख्यान दाता थे। वे एक बार श्रीमद्से मिलने आये।

बातचीत करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रने देवकरणजीसे पूछा:

'व्याख्यानमें कितने मनुष्य आते हैं?'

देवकरणजीने कहा: 'करीब एक हजार मनुष्योंकी उपस्थिति रहती है।'

श्रीमद्ने प्रश्न किया: 'स्त्रियोंको व्याख्यानमें देखकर विकार होता है?'.

देवकरणजीने कहा: 'काया(शरीर)से नहीं होता, मनसे होता है।'

श्रीमद्ने कहा: 'मुनिको तो मन, वचन, और काया

इन तीनों योगोंसे व्रतोंका पालन करना चाहिए।'

इससे देवकरणजीने आक्षेप करते हुए कहा: 'आप गद्दी पर बैठते हैं और हीरामाणिक आपके पास रहते हैं, तो उस समय आपकी वृत्ति डोलायमान नहीं होती?'

श्रीमद्ने कहा: 'मुनि, हम तो उन्हें कालकूट विप मानते हैं।' पुनः श्रीमद्जीने पूछा: 'आप कौन हैं?'

श्री देवकरणजी बोले: 'जितने समयतक वृत्ति स्थिर रहती है, तबतक साधु।'

श्रीमद्ने कहा: 'इस प्रकार तो संसारीको भी साधु कह सकते हैं या नहीं?'

यह सुनकर देवकरणजी चुप रहे।

पुनः श्रीमद्जी बोले: 'नारियलका गोला जैसे उससे जुदा रहता है वैसे ही हम रहते हैं।'

एक दूसरा उदाहरण भी मननीय है।

एक समय श्रीमद् घूमने गये थे। श्मशानका स्थल आया, तब श्रीमद्ने साथमें आनेवाले एक भाईसे पूछा: 'यह क्या है?'

उसने कहा: 'श्मसान।'

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा: 'हमें तो सारी वम्बई श्मसान समान लगती है।'

सं. १९४८के माह वदीके एक पत्रका विचार कीजिये। वे लिखते हैं।

'क्षणभर भी अविकल्प समाधिका ध्यान नहीं दूर होता फिर भी अनेक वर्षोंसे विकल्परूप उपाधिकी आराधना

करते आ रहे हैं।

'जहाँतक संसारका उदय है वहाँतक किसी न किसी प्रकारकी उपाधिका संभव ही है। फिर भी अविकल्प समाधिमें रहनेवाले ज्ञानीको तो वह उपाधि भी अबाध है, अर्थात् समाधि ही है।

'जो कि इस देहको धारण करके किसी प्रकारकी महान श्रीमन्तता नहीं भोगी, शब्दादि विषयोंका पूरा वैभव प्राप्त नहीं हुआ, कोई विशेष राज्याधिकार सहित दिन नहीं बिताये, अपने निजके गिने जानेवाले ऐसे किसी धाम, आरामका सेवन नहीं किया और अभी युवावस्थाका प्रथम भाग चल रहा है, तथापि इनमेंसे किसीकी हमें आत्मभावसे लेशमात्र इच्छा नहीं। यह एक महान आश्चर्य जानकर हम प्रवृत्ति करते हैं और इन पदार्थोंकी प्राप्ति अप्राप्ति दोनोंको समान जानकर अनेक प्रकारसे अविकल्प समाधिका ही अनुभव करते हैं।

'ऐसा होने पर भी बारम्बार वनवासकी याद आया करती है। किसी प्रकारके लोकपरिचयमें रुचि नहीं रहती; सत्संगमें भाव रहा करता है, और अव्यवस्थित दशासे उपाधि योगमें रहते हैं। एक अविकल्प समाधिके सिवाय अन्य कुछ स्मृतिमें नहीं रहता, चिन्तन नहीं रहता, रुचि नहीं रहती, अथवा कोई भी काम नहीं किया जाता।....'

संवत् १९४८में श्रावण वदी १४के एक पत्रमें श्रीमद् लिखते हैं कि:

'चित्तके बन्धनयुक्त न हो सकनेके कारण, जो जीव

संसारके सम्बन्धमें स्त्री आदि रूपसे प्राप्त हुए हैं, उन जीवोंकी इच्छाको भी दुखित करनेकी इच्छा नहीं होती, अर्थात् उसे भी अनुकम्पासे और माँबाप आदिके उपकार आदि कारणोंसे उपाधियोगको 'बलवान रीतसे सहन करते हैं। और जिस जिसकी जो कामना है, उस उस प्रकारके उदयमें जिस प्रकारसे उसकी पूर्ति होना है, जबतक वह उस प्रकारसे न हो तबतक निवृत्ति ग्रहण करते हुए जीव उदासीन ही रहता है। इसमें किसी प्रकारकी हमारी इच्छा नहीं है, हम तो सबमें निष्काम ही हैं। ऐसा है फिर भी उस प्रकारके बन्धन रखनेका प्रारब्ध उदयमें रहता है; इसे भी दूसरे मुमुक्षुओंकी परमार्थ वृत्ति उत्पन्न करनेमें विघ्नरूप समझते हैं।'

संवत् १९४८के असोज मासमें लिखे गये एक पत्रमें श्रीमद् विदित करते हैं:

'हम किसी भी प्रकारके अपने आत्मिक बन्धनके कारण संसारमें नहीं रह रहे हैं। स्त्रीसे पूर्वमें बाँधा हुआ कर्म निवृत्त करना है, कुटुम्बका पूर्वमें लिया हुआ कर्ज वापिस देकर निवृत्त होनेके लिए उसमें निवास करते हैं। रेवाशंकरभाईका हमसे जो लेना है, उसे देनेके लिए रह रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो जो प्रसंग हैं, वे सब उसीके अन्दर समा जाते हैं। तनके लिए, धनके लिए, भोगके लिए, सुखके लिए, स्वार्थके लिए या अन्य किसी तरहके आत्मिक बन्धनके कारण हम संसारमें नहीं रह रहे हैं।.... किसी दुःखके भयसे भी हम संसारमें रहते हैं, ऐसा नहीं

करते आ रहे हैं।

'जहाँतक संसारका उदय है वहाँतक किसी न किसी प्रकारकी उपाधिका संभव ही है। फिर भी अविकल्प समाधिमें रहनेवाले ज्ञानीको तो वह उपाधि भी अबाध है, अर्थात् समाधि ही है।

'जो कि इस देहको धारण करके किसी प्रकारकी महान श्रीमन्तता नहीं भोगी, शब्दादि विषयोंका पूरा वैभव प्राप्त नहीं हुआ, कोई विशेष राज्याधिकार सहित दिन नहीं बिताये, अपने निजके गिने जानेवाले ऐसे किसी धाम, आरामका सेवन नहीं किया और अभी युवावस्थाका प्रथम भाग चल रहा है, तथापि इनमेंसे किसीकी हमें आत्मभावसे लेशमात्र इच्छा नहीं। यह एक महान आश्चर्य जानकर हम प्रवृत्ति करते हैं और इन पदार्थोंकी प्राप्ति अप्राप्ति दोनोंको समान जानकर अनेक प्रकारसे अविकल्प समाधिका ही अनुभव करते हैं।

'ऐसा होने पर भी बारम्बार वनवासकी याद आया करती है। किसी प्रकारके लोकपरिचयमें रुचि नहीं रहती; सत्संगमें भाव रहा करता है, और अव्यवस्थित दशासे उपाधि योगमें रहते हैं। एक अविकल्प समाधिके सिवाय अन्य कुछ स्मृतिमें नहीं रहता, चिन्तन नहीं रहता, रुचि नहीं रहती, अथवा कोई भी काम नहीं किया जाता।....'

संवत् १९४८में श्रावण वदी १४के एक पत्रमें श्रीमद् लिखते हैं कि :

'चित्तके बन्धनयुक्त न हो सकनेके कारण, जो जीव

संसारके सम्बन्धमें स्त्री आदि रूपसे प्राप्त हुए हैं, उन जीवोंकी इच्छाको भी दुखित करनेकी इच्छा नहीं होती, अर्थात् उसे भी अनुकम्पासे और माँबाप आदिके उपकार आदि कारणोंसे उपाधियोगको बलवान रीतसे सहन करते हैं। और जिस जिसकी जो कामना है, उस उस प्रकारके उदयमें जिस प्रकारसे उसकी पूर्ति होना है, जबतक वह उस प्रकारसे न हो तबतक निवृत्ति ग्रहण करते हुए जीव उदासीन ही रहता है। इसमें किसी प्रकारकी हमारी इच्छा नहीं है, हम तो सबमें निष्काम ही हैं। ऐसा है फिर भी उस प्रकारके बन्धन रखनेका प्रारब्ध उदयमें रहता है; इसे भी दूसरे मुमुक्षुओंकी परमार्थ वृत्ति उत्पन्न करनेमें विघ्नरूप समझते हैं।'

संवत् १९४८के असोज मासमें लिखे गये एक पत्रमें श्रीमद् विदित करते हैं:

'हम किसी भी प्रकारके अपने आत्मिक बन्धनके कारण संसारमें नहीं रह रहे हैं। स्त्रीसे पूर्वमें बाँधा हुआ कर्म निवृत्त करना है, कुटुम्बका पूर्वमें लिया हुआ कर्ज वापिस देकर निवृत्त होनेके लिए उसमें निवास करते हैं। रेवाशंकरभाईका हमसे जो लेना है, उसे देनेके लिए रह रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो जो प्रसंग हैं, वे सब उसीके अन्दर समा जाते हैं। तनके लिए, धनके लिए, भोगके लिए, सुखके लिए, स्वार्थके लिए या अन्य किसी तरहके आत्मिक बन्धनके कारण हम संसारमें नहीं रह रहे हैं।.... किसी दुःखके भयसे भी हम संसारमें रहते हैं, ऐसा नहीं

है। मान अपमानका जो कुछ थोडा-वहुत भेद है, वह दूर हो गया है।'

इस तथा इस समयके अन्य पत्रोंके अवलोकनसे आसानीसे समझमें आता है कि श्रीमद् राजचन्द्रने अपने ऊपर आई हुई उपाधिकी आपत्तिको, संप्राप्त व्यवहारोंको निष्कामतासे, वीतरागतासे स्वस्थ, शान्त चित्तसे अदा करनेकी लोकोत्तर अद्भुत अवस्था प्राप्त कर ली थी।

इतनी भूमिकाको ध्यानमें रखकर अब हम श्रीमद् राजचन्द्रके व्यावहारिक जीवनकी ओर दृष्टिपात करते हैं।

यों तो श्रीमद् बचपनमें अपने पिताकी दुकानमें बैठते थे, इस बातका आगे विचार हो चुका है।

उस समय भी वे अपनी छोटी अवस्थामें पवित्र भावनासे अपना काम करते थे। 'किसीको मैंने न्यूनाधिक भाव नहीं कहा या किसीको न्यूनाधिक नहीं तौला है।' यह भावना बडेपनमें भी इनमें उतनी ही दृढ़ थी।

इक्कीसवें वर्षमें श्रीमद् जवाहिरातके व्यवसायमें लगे थे। बहुत ही थोडे समयमें उन्होंने एक अच्छे जौहरीके तौर पर कीर्ति प्राप्त की थी।

श्रीमद् बम्बईमें व्यापारमें पडे, उस समयसे हिस्सेदारोंके साथ किस प्रकारका आचरण करना उसका निर्णय उन्होंने कर रखा था। संवत् १९४६की उनकी रोजनीशी (डायरी) में उसका उल्लेख मिलता है। यह आदर्श हम लोगोंको सहायरूप हो, ऐसा अवश्य है।

१. 'किसीके भी दोषोंको मत देख। तेरा जो होना

है वह अपने दोषसे होता है ऐसा तू मान।

२. 'तू अपनी (आत्म) प्रशंसा न करना, और यदि करेगा तो तू तुच्छ है, ऐसा मैं मानता हूँ।

३. 'जिस प्रकार दूसरेको प्रिय लगे वैसा व्यवहार करनेका तू प्रयत्न करना। कदाचित् उसमें तुझे एकदम सिद्धि प्राप्त न हो, या विघ्न आये तो भी दृढ़ आग्रहसे धीरे-धीरे उस क्रम पर तू अपनी स्थिति करना।

४. 'जिसके साथ तूने व्यवहार-सम्बन्ध किया है, उसके साथ अमुक प्रकारके आचरणका निश्चय करके, उसे कह दे। यदि उसे अनुकूल आये तो ठीक, नहीं तो वह कहे वैसा करना। साथमें उसे कह देना कि तुम्हारे कार्य (जो मुझे सौंपा गया है) में मैं किसी तरहसे अपनी निष्ठासे हानि नहीं पहुँचाऊँगा। तुम मेरे सम्बन्धमें अन्य शंका न करना। मुझे व्यवहार सम्बन्धी अन्यथा भाव नहीं है। तथा मैं तुमसे अन्यथा व्यवहार नहीं करना चाहता; इतना ही नहीं परन्तु यदि मेरे मन, वचन और कायसे थोड़ा भी विपरीताचरण हुआ हो तो मैं उसके लिए पश्चात्ताप करूँगा। ऐसा न करनेकी प्रथमसे बहुत सावधानी रखूंगा। आपके सौंपे हुए कामको करते हुए मैं निरभिमानी रहूँगा। मेरी भूलके लिए यदि आप उपालंभ देंगे तो मैं सहन करूँगा।

'जहाँतक मेरा वश चलेगा वहाँतक स्वप्नमें भी आपसे द्वेष वा आप सम्बन्धी किसी भी प्रकारकी अन्यथा कल्पना न करूँगा। यदि आपको किसी भी प्रकारकी शंका उठे तो मुझसे कहेंगे तो मैं आपका उपकार मानूंगा और उसका

यथार्थ स्पष्टीकरण करूँगा। यदि स्पष्टीकरण न होगा तो मौन रहूँगा, परन्तु असत्य नहीं बोलूँगा।

केवल आपसे इतना ही चाहता हूँ कि आप किसी प्रकारसे मुझे निमित्त बनाकर अशुभयोगमें प्रवृत्ति न करें; आप अपनी इच्छानुसार चलें, उसमें मुझे कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मुझे केवल अपनी निवृत्ति श्रेणीमें प्रवर्तन करनेमें किसी तरहसे आप अपना अन्तःकरण संकुचित न करें। और यदि मनको संकुचित करनेकी आपकी इच्छा हो तो अवश्य मुझे पहलेसे सूचित कर दें। मेरी उस श्रेणीको निभानेकी इच्छा है, और उसके लिए मैं यथायोग्य कर लूँगा। जहाँतक मेरा वश चलेगा वहाँतक मैं दुःखी नहीं करूँगा। और अन्तमें यदि आपको यह निवृत्ति-श्रेणी अप्रिय होगी तो जैसे बनेगा वैसे मैं सावधानीसे आपके पाससे, आपको किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये बिना, उचित लाभ करके और बादमें भी किसी भी समयके लिए वही इच्छा रखकर दूर हो जाऊँगा।'

श्रीयुत माणिकलाल घेलाभाई श्रीमद्के बारेमें लिखते हैं:

'वे (श्रीमद्) कितने ही वर्षोंतक हमारे व्यापारमें हिस्सेदार रहे। कठिनाईके समयमें उन्होंने अपनी व्यापारिक कुशलताका अच्छा परिचय दिया था। हम लोग विलायतके व्यापारियोंके साथ हीरा-मोती सम्बन्धी कामकाज करते थे; वे लोग हमारी कार्यपद्धतिको देखकर भारतीय व्यापारियोंकी प्रशंसा करते। इस कार्यपद्धतिका सारा श्रेय श्रीमान् राजचन्द्रजीको ही था।'

जब श्रीमद् राजचन्द्रने हीरा-मोतीका व्यापार शुरू किया था उस समयमें महात्मा गाँधीजीका उनसे समागम हुआ था। महात्मा गाँधीजीने उस समयके श्रीमद् राजचन्द्रका सुन्दर उल्लेख अपने इनसे सम्बन्धित संस्मरणोंमें किया है। इसके लिए निम्नलिखित अवतरण देखिये:

'वणिक तेहनुं नाम, जेह जूठुं नव बोले;
वणिक तेहनुं नाम, तोल ओछुं नव तोले,
वणिक तेहनुं नाम, बापे बोल्युं ते पाळे;
वणिक तेहनुं नाम, व्याज सहित धन वाळे;
विवेक तोल ए वणिकनुं, सुलतान तोल ए शाख छे;
वेपार चूके जो वाणियो, दुःख दावानळ थाय छे.'

(वणिक वह है, जो कभी झूठ नहीं बोलता, वणिक वह है जो कभी कमती नहीं तौलता, वणिक वह है जो अपने बापके वचनका पालन करता है, और वणिक वह है जो व्याज सहित लिये हुए धनको वापस लौटाता है।

वणिककी कीमत विवेकसे और राजाकी कीमत मर्यादापूर्वक चलनेसे है। यदि बनिया व्यापार चूके तो वह दुःखका दावानल होता है। अर्थात् दुःखी होता है।)

—शामल भट्ट

'प्रायः सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार-व्यापार, परमार्थ अथवा धर्म ये दोनों भिन्न और विरोधी हैं। व्यापारमें धर्मका समावेश करना यह एक प्रकारका पागलपन है। ऐसा करनेसे दोनों बिगड़ते हैं। यदि यह मान्यता खोटी न हो तो हमारे भाग्यमें केवल निराशा ही हो।

ऐसी एक भी वस्तु नहीं है, ऐसा एक भी व्यवहार नहीं है कि जिसमेंसे हम धर्मको दूर रख सकें या दूर कर सकें।

'धार्मिक मनुष्यका धर्म उसके प्रत्येक कार्यमें दिखाई देना चाहिए, ऐसा श्रीमद् रायचन्दभाईने अपने जीवनमें प्रगट किया था। धर्म कुछ एकादशीके दिन ही, पर्यूषणमें ही, ईदके दिन या रविवारके दिन पालनेका अथवा तो मन्दिरोंमें, देवलोंमें और मस्जिदोंमें पालनेका है, परन्तु दुकान वा दरबारोंमें नहीं, ऐसा कुछ नियम नहीं है। इतना ही नहीं, इस प्रकारसे कहना धर्मकी अज्ञानता सिद्ध करता है। यों रायचन्दभाई कहते, मानते तथा अपने आचारमें आचरण करते थे।

'उनका व्यवसाय हीरे-मोतीका था। श्री रेवाशंकर जगजीवन जौहरीके साथ उनकी हिस्सेदारी थी। साथमें वे कपडेकी भी दुकान करते थे। वे अपने व्यवहारमें सब तरहसे प्रमाणिकताका ध्यान रखते हैं, ऐसा मुझ पर प्रभाव पड़ा था। वे सौदा करते उस समय मैं भी कभी-कभी सहजमें उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही थी 'चालाकी' जैसा कुछ नहीं देखता—अर्थात् वे किसीको ठगनेके लिए कुछ नहीं करते थे। आनेवालेकी चालाकी वे शीघ्र समझ जाते थे, और उन्हें वह असह्य होती थी, ऐसे समयमें भ्रूकुटियाँ भी चढ़तीं और आँखोंमें ललाई भी मैं देख सकता था।

'धर्मकुशल मनुष्य व्यवहारकुशल नहीं होता, इस वहमको रायचंदभाईने असत्य सिद्ध कर बताया था।

अपने व्यापारमें पूरा लक्ष्य और होशियारी बताते। हीरे-मोतीकी परीक्षा अत्यन्त सूक्ष्मतासे कर सकते। यद्यपि उनको अंग्रेजीका ज्ञान नहीं था, फिर भी अपने कामके सम्बन्धके आये हुए तार, पत्रादिको अच्छी तरह समझ लेते थे, उन्हें उनके भावार्थ समझनेमें देर नहीं लगती थी। उनका किया गया अनुमान भी प्रायः सत्य हुआ करता था।

'इतनी देखभाल और होशियारी होने पर भी वे व्यापारकी उतावल या चिन्ता नहीं करते थे। दुकानमें बैठे हुए भी जब अपना काम पूरा हो जाता, तो धार्मिक पुस्तक जो उनके पास सदा ही रहती थी, उस पर दृष्टि करने लगते थे। मेरे जैसे जिज्ञासु रोज उनके पास आते और वे उनसे धर्मचर्चा करते हुए जरा भी संकोच नहीं करते थे।'

महात्मा गाँधीजी इस सम्बन्धमें अपनी 'आत्मकथा' में लिखते हैं :

'जिसके ऊपर मैं मुग्ध हुआ....वह था उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका शुद्ध चरित्र, और उनका आत्मदर्शन करनेका तीव्र उत्साह। वे आत्मदर्शनके लिए ही अपना जीवन व्यतीत करते थे, ऐसा मैंने बादमें देखा।

'हसतां रमतां प्रगट हरि देखुं रे,
मारुं जीव्युं सफल तव लेखुं रे;
मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे,
ओधा जीवनदोरी अमारी रे.'

जिस समय मैं हँसते खेलते हरिको प्रत्यक्षरूपसे

देखूँगा तब मैं अपने जीवनको सफल मानूँगा। हे उद्धवजी, 'मुक्तानन्द'का नाथ विहारी —उन्मुक्त आनन्दमें विहार करनेवाले भगवान्— हमारी जीवनदोरी अर्थात् आधार हैं।

मुक्तानन्दका यह पद उन्हें कंठाग्र तो था ही, परन्तु वह उनके हृदयमें भी अंकित हो गया था।

'स्वयं हजारोंका व्यापार करते थे, हीरे-मोतीकी परख करते थे, व्यापारकी जटिल समस्याओंका समाधान करते थे, फिर भी यह उनका विषय नहीं था। उनका विषय —उनका पुरुषार्थ—तो आत्मज्ञान—हरिदर्शन था। अपनी दुकान पर और कोई वस्तु हो वा न हो, परन्तु कोई न कोई धर्मपुस्तक और रोजनीशी (डायरी) तो अवश्य उपस्थित रहती। व्यापारकी बात खतम हुई कि वे तुरन्त धर्म-पुस्तक खोलते अथवा समीपमें रखी हुई नोंधपोथीमें कुछ लिखने बैठते। उनका जो लेखोंका संग्रह प्रगट हुआ है उसमें अधिकांश तो इस नोंधपोथीसे लिया गया है। जो मनुष्य लाखोंके सौदाकी बात करके तत्क्षण आत्मज्ञानकी गूढ़ बातें लिखने बैठ जाय, वह व्यापारी नहीं परन्तु शुद्ध ज्ञानी है।

'उनका इस प्रकारका अनुभव मुझे एक बार नहीं परन्तु अनेक वार हुआ है। मैंने उन्हें कभी मूर्च्छित (अत्यासक्त) स्थितिमें नहीं देखा। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नहीं था। मैं उनके अत्यन्त निकटमें रहा हूँ। मैं उस समय भिखारी बैरिस्टर था, परन्तु जब मैं उनकी दुकान पर पहूँचता तब वे मेरे साथ धर्मवार्ता सिवाय कोई

अन्य वात न करते थे। उस समय यद्यपि मैंने अपनी दिशा नहीं देखी थी और यह भी नहीं कहा जा सकता था कि सामान्य रीतिसे धर्मवार्तामें भाव था, फिर भी रायचन्दभाईकी धर्मवातोंमें आनन्द आता था। इसके वाद मैं अनेक धर्माचार्योंके प्रसंगमें आया हूँ। मैंने प्रत्येक धर्मके आचार्योंसे मिलनेका प्रयत्न किया है, परन्तु जो प्रभाव मेरे ऊपर रायचन्दभाईने डाला है वह कोई नहीं डाल सका। उनके वहुतसे वचन मुझमें सीधे अन्दर उतर जाते थे। उनकी वुद्धिके लिए मुझे मान था, उनकी प्रमाणिकताके लिए भी वैसा ही था। इससे मैं जानता था वे मुझे जानवूझकर अवमार्गका उपदेश नहीं करेंगे और जो अपने मनमें होगा वही कहेंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोंमें उनका आश्रय लेता था।'

गाँधीजीने श्रीमद् राजचन्द्रका सुन्दर रेखाचित्र अपने स्मरणोंमें अंकित किया है। उसे पढ़नेसे श्रीमद्का उदात्त व्यक्तित्व आँखोंके सामने खडा हो जाता है।

'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं वाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?
सर्व सम्वन्धनुं वन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो।
सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम हेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो।

देखूँगा तब मैं अपने जीवनको सफल मानूँगा। हे उद्धवजी, 'मुक्तानन्द'का नाथ विहारी —उन्मुक्त आनन्दमें विहार करनेवाले भगवान्— हमारी जीवनदोरी अर्थात् आधार हैं।

मुक्तानन्दका यह पद उन्हें कंठाग्र तो था ही, परन्तु वह उनके हृदयमें भी अंकित हो गया था।

'स्वयं हजारोंका व्यापार करते थे, हीरे-मोतीकी परख करते थे, व्यापारकी जटिल समस्याओंका समाधान करते थे, फिर भी यह उनका विषय नहीं था। उनका विषय –उनका पुरुषार्थ–तो आत्मज्ञान–हरिदर्शन था। अपनी दुकान पर और कोई वस्तु हो वा न हो, परन्तु कोई न कोई धर्मपुस्तक और रोजनीशी (डायरी) तो अवश्य उपस्थित रहती। व्यापारकी बात खतम हुई कि वे तुरन्त धर्म-पुस्तक खोलते अथवा समीपमें रखी हुई नोंधपोथीमें कुछ लिखने बैठते। उनका जो लेखोंका संग्रह प्रगट हुआ है उसमें अधिकांश तो इस नोंधपोथीसे लिया गया है। जो मनुष्य लाखोंके सौदाकी बात करके तत्क्षण आत्मज्ञानकी गूढ़ बातें लिखने बैठ जाय, वह व्यापारी नहीं परन्तु शुद्ध ज्ञानी है।

'उनका इस प्रकारका अनुभव मुझे एक बार नहीं परन्तु अनेक बार हुआ है। मैंने उन्हें कभी मूर्च्छित (अत्यासक्त) स्थितिमें नहीं देखा। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नहीं था। मैं उनके अत्यन्त निकटमें रहा हूँ। मैं उस समय भिखारी बैरिस्टर था, परन्तु जब मैं उनकी दुकान पर पहूँचता तब वे मेरे साथ धर्मवार्ता सिवाय कोई

अन्य वात न करते थे। उस समय यद्यपि मैंने अपनी दिशा नहीं देखी थी और यह भी नहीं कहा जा सकता था कि सामान्य रीतिसे धर्मवार्तामें भाव था, फिर भी रायचन्दभाईकी धर्मवार्तोमें आनन्द आता था। इसके वाद मैं अनेक धर्माचार्योंके प्रसंगमें आया हूँ। मैंने प्रत्येक धर्मके आचार्योंसे मिलनेका प्रयत्न किया है, परन्तु जो प्रभाव मेरे ऊपर रायचन्दभाईने डाला है वह कोई नहीं डाल सका। उनके वहुतसे वचन मुझमें सीधे अन्दर उतर जाते थे। उनकी बुद्धिके लिए मुझे मान था, उनकी प्रमाणिकताके लिए भी वैसा ही था। इससे मैं जानता था वे मुझे जानबूझकर अवमार्गका उपदेश नहीं करेंगे और जो अपने मनमें होगा वही कहेंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोंमें उनका आश्रय लेता था।'

गाँधीजीने श्रीमद् राजचन्द्रका सुन्दर रेखाचित्र अपने स्मरणोंमें अंकित किया है। उसे पढ़नेसे श्रीमद्का उदात्त व्यक्तित्व आँखोंके सामने खडा हो जाता है।

'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं वाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?
सर्व सम्वन्धनुं वन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो।
सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम हेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो।

देखूँगा तब मैं अपने जीवनको सफल मानूँगा। हे उद्धवजी, 'मुक्तानन्द'का नाथ विहारी —उन्मुक्त आनन्दमें विहार करनेवाले भगवान्— हमारी जीवनदोरी अर्थात् आधार हैं।

मुक्तानन्दका यह पद उन्हें कंठाग्र तो था ही, परन्तु वह उनके हृदयमें भी अंकित हो गया था।

'स्वयं हजारोंका व्यापार करते थे, हीरे-मोतीकी परख करते थे, व्यापारकी जटिल समस्याओंका समाधान करते थे, फिर भी यह उनका विषय नहीं था। उनका विषय –उनका पुरुषार्थ–तो आत्मज्ञान–हरिदर्शन था। अपनी दुकान पर और कोई वस्तु हो वा न हो, परन्तु कोई न कोई धर्मपुस्तक और रोजनीशी (डायरी) तो अवश्य उपस्थित रहती। व्यापारकी बात खतम हुई कि वे तुरन्त धर्म-पुस्तक खोलते अथवा समीपमें रखी हुई नोंधपोथीमें कुछ लिखने बैठते। उनका जो लेखोंका संग्रह प्रगट हुआ है उसमें अधिकांश तो इस नोंधपोथीसे लिया गया है। जो मनुष्य लाखोंके सौदाकी बात करके तत्क्षण आत्मज्ञानकी गूढ़ बातें लिखने बैठ जाय, वह व्यापारी नहीं परन्तु शुद्ध ज्ञानी है।

'उनका इस प्रकारका अनुभव मुझे एक बार नहीं परन्तु अनेक बार हुआ है। मैंने उन्हें कभी मूर्च्छित (अत्यासक्त) स्थितिमें नहीं देखा। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नहीं था। मैं उनके अत्यन्त निकटमें रहा हूँ। मैं उस समय भिखारी बैरिस्टर था, परन्तु जब मैं उनकी दुकान पर पहूँचता तब वे मेरे साथ धर्मवार्ता सिवाय कोई

अन्य बात न करते थे। उस समय यद्यपि मैंने अपनी दिशा नहीं देखी थी और यह भी नहीं कहा जा सकता था कि सामान्य रीतिसे धर्मवार्तामें भाव था, फिर भी रायचन्दभाईकी धर्मवातोंमें आनन्द आता था। इसके बाद में अनेक धर्माचार्योंके प्रसंगमें आया हूँ। मैंने प्रत्येक धर्मके आचार्योंसे मिलनेका प्रयत्न किया है, परन्तु जो प्रभाव मेरे ऊपर रायचन्दभाईने डाला है वह कोई नहीं डाल सका। उनके बहुतसे वचन मुझमें सीधे अन्दर उतर जाते थे। उनकी बुद्धिके लिए मुझे मान था, उनकी प्रमाणिकताके लिए भी वैसा ही था। इससे मैं जानता था वे मुझे जानबूझकर अवमार्गका उपदेश नहीं करेंगे और जो अपने मनमें होगा वही कहेंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोंमें उनका आश्रय लेता था।'

गाँधीजीने श्रीमद् राजचन्द्रका सुन्दर रेखाचित्र अपने स्मरणोंमें अंकित किया है। उसे पढ़नेसे श्रीमद्का उदात्त व्यक्तित्व आँखोंके सामने खडा हो जाता है।

'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?
सर्व सम्बन्धनुं बन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो।
सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयम हेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो।

ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा? कब मैं बाह्य और अभ्यन्तरसे निर्ग्रन्थ बनूँगा? सब प्रकारके तीक्ष्ण बन्धनोंको छेदकर कब मैं महान् पुरुषोंके पथ पर विचरण करूँगा? ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा?

समस्त पदार्थोंसे उदासीन वृत्ति करके, यह देह भी केवल संयमका कारण हो, तथा अन्य किसी कारणसे कुछ भी ग्रहण न हो, और देहमें भी किंचिन्मात्र मूर्च्छा—आसक्ति न रहे। ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा?

'जो वैराग्य श्रीमद्की इन पंक्तियोंमें झलक रहा है वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयमें उनमें प्रतिक्षण देखा था। उनके लेखोंकी एक असाधारणता यह है कि उन्होंने स्वयं जो अनुभव किया, वही लिखा है, उनमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरों पर प्रभाव डालनेके लिए उन्होंने एक अक्षर भी नहीं लिखा, ऐसा मैंने देखा है। उनके पास हमेशा कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी नोट-बुक पडी ही रहती थी। उस नोट-बुकमें, जो विचार आते उन्हें लिख डालते थे। किसी समय गद्यमें तो किसी समय पद्यमें। इसी प्रकारसे ही 'अपूर्व अवसर' भी लिखा होना चाहिए।

'खाते, पीते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमें वैराग्य तो रहता ही था। किसी समय इस जगत्के किसी भी वैभवमें उन्हें मोह उत्पन्न हुआ हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा।

'मैं उनके रहन-सहनको आदरपूर्वक फिर भी सूक्ष्मतासे

देखता। भोजनमें उन्हें जो मिले उससे वे सन्तुष्ट थे। पोशाक सादी, कुर्त्ता, अंगरखा, दुपट्टा सूतीसाफा और धोती। ये सब बहुत साफ या इस्त्रीबन्द रहते इसका मुझे स्मरण नहीं है। जमीन पर बैठना, या कुर्सी पर बैठना दोनों समान थे। सामान्य रीतिसे अपनी दुकानमें गद्दी पर बैठते थे।

'उनकी चाल धीमी थी, और देखनेवाला भी समझ सकता कि चलते हुए भी ये अपने विचारमें ग्रस्त हैं। आँखोंमें चमत्कार था अत्यन्त तेजस्वी; विह्वलता जरा भी नहीं थी। दृष्टिमें एकाग्रता थी। चेहरा गोलाकार, होंठ पतले, नाक नोकदार भी नहीं चपटी भी नहीं, शरीर इकहरा, कद मध्यम, वर्ण श्याम, देखाव शान्त मूर्तिका-सा था। उनके कंठमें इतना अधिक माधुर्य था कि उसे सुनते हुए मनुष्य ऊबता नहीं। चेहरा हंसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अन्तरानन्दकी छाया थी। भाषा इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हें अपने विचारोंको प्रगट करनेके लिए शब्द खोजने पडे हों, ऐसा मुझे याद नहीं है। पत्र लिखने बैठें उस समय कदाचित् ही मैंने उन्हें शब्द बदलते देखा होगा; फिर भी पढ़नेवालेको ऐसा नहीं लगता कि विचार अपूर्ण है या वाक्य रचना खंडित है, अथवा शब्दोंके चुनावमें कमी है।

'यह वर्णन संयमीमें संभवित है। बाह्याडम्बरसे मनुष्य वीतरागी नहीं हो सकता। वीतरागता आत्माकी प्रसादी है। अनेक जन्मके प्रयत्नसे वह प्राप्त होती है

और प्रत्येक मनुष्य उसका अनुभव कर सकता है। राग-भावको दूर करनेका पुरुषार्थ करनेवाला जानता है कि रागरहित होना कितना कठिन है। यह रागरहित दशा कवि(श्रीमद्)को स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पडी थी।

'मोक्षकी प्रथम पैडी वीतरागता है। जहाँ तक मन जगत्की किसी भी वस्तुमें फंसा हुआ है, वहाँतक उसे मोक्षकी बात कैसे रुचे? और यदि रुचे तो वह केवल कानको ही—जैसे हम लोगोंको, अर्थ समझे या जाने बिना किसी संगीतका मात्र स्वर ही अच्छा लगता है वैसे, मात्र ऐसी कर्णप्रिय क्रीडामेंसे मोक्षका अनुसरण करनेवाले आचरण तक आनेमें बहुत-सा समय निकल जाता है। अन्तरंग वैराग्यके बिना मोक्षकी भावना नहीं होती, वैराग्यका तीव्र भाव कविमें था।

'....व्यवहारकुशलता और धर्मपरायणताका जितना उत्तम मेल मैंने कविमें देखा उतना किसी अन्यमें नहीं देखा।'

उस समयका एक प्रेरक प्रसंग है। श्रीमद्ने जवाहि-रातके साथसाथ मोतीका व्यापार भी प्रारंभ किया था। वे सभी व्यापारियोंमें सबसे विशेष विश्वासपात्र व्यापारीके तौर पर प्रसिद्ध हुए थे।

एक अरब व्यापारी अपने छोटे भाईके साथ बम्बईमें मोतीकी आडतका व्यापार करता था।

छोटे भाईको एक दिन विचार आया कि आज मैं भी बडे भाईके समान मोतीका कुछ बड़ा व्यापार करूँ। इससे

जो माल बाहर परदेशसे आया हुआ था उसे लेकर वह बाजारमें गया। वहाँ एक दलालसे उसने कहा, 'मुझे कोई अच्छा प्रमाणिक सेठ बताइये।'

दलालने श्रीमद्से उसकी मुलाकात कराई। श्रीमद्ने सभी माल बराबर देखा-भाला और उसकी योग्य कीमत चुका दी।

छोटा भाई रूपये लेकर प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया। बड़ा भाई घर आया तब उसने अपने व्यापारकी बात कह सुनाई।

बडे भाईने सोचा कि छोटा भाई सौदा करनेमें ठगा गया तो नहीं है? श्रीमद्ने कीमत बराबर की थी। परन्तु बात यह हुई कि, जिस आदमीका वह माल था उसका उसी दिन पत्र आया था। उसमें उसने लिखा था, अमुक कीमत सिवाय माल मत बेचना। यह कीमत चालू बाजार भावकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। अब क्या हो? यह तो बडा नुकसान हुआ। वह एकदम गुस्सेमें बोल उठा, 'अबे, तूने यह क्या किया? मुझे दिवाला ही निकालना पडेगा!'

वह अरब घबराता हुआ श्रीमद्के पास आया। उसने गिड़-गिड़ाते हुए अपने व्यापारीका पत्र पढ़ाकर कहा, 'साहिब, कुछ दया करो। नहीं तो मैं गरीब आदमी चौपट हो जाऊँगा।'

श्रीमद्ने स्वस्थतासे कहा, 'भाई, तुम्हारा माल यह पड़ा है। तुम खुशीसे ले जाओ।' यह कहकर उस अरबको

उन्होंने माल वापस लौटा दिया और रुपये ले लिए। मानो कुछ सौदा ही नहीं हुआ है ऐसा मानकर, जो बहुत-सा नफा होनेवाला था, उसे जाने दिया।

यह अरब श्रीमद्को खुदाके पैगम्बर समान मानने लगा।

श्रीमद् राजचन्द्रकी करुणामय जीवनदृष्टिका दूसरा एक प्रसंग देखें।

एक बार एक व्यापारीके साथ श्रीमद्ने हीरोंका सौदा किया। इसमें ऐसा तय हुआ कि अमुक समयमें निश्चित किये हुए भावसे वह व्यापारी श्रीमद्को अमुक हीरे दे। इस विषयकी चिट्ठी भी व्यापारीने लिख दी थी।

परन्तु हुआ ऐसा कि, मुद्दतके समय उन हीरोंकी कीमत खूब बढ़ गई थी। यदि व्यापारी चिट्ठीके अनुसार श्रीमद्को हीरे दे, तो उस बेचारेको बड़ा भारी नुकसान सहन करना पडे; अपनी सभी संपत्ति बेचनी पडे। अब क्या हो?'

इधर जिस समय श्रीमद्को हीरोंका बाजार-भाव मालूम पड़ा, उस समय वे शीघ्र ही उस व्यापारीकी दुकान पर जा पहुँचे।

श्रीमद्को अपनी दुकान पर आये देखकर व्यापारी घबराहटमें पड़ गया। वह गिड़गिड़ाते बोला, 'रायचन्द-भाई, हमलोगोंके बीचमें किये हुए सौदाके सम्बन्धमें मैं खूब ही चिन्तामें पड़ा हुआ हूँ। मेरा जो कुछ होना हो, वह भले हो, परन्तु आप विश्वास रखना कि मैं आपको आजके बाजार भावसे सौदा चुका दूंगा। आप चिन्ता न करें।'

यह सुनकर राजचन्द्रजी करुणाभरी आवाजमें बोले, 'वाह! भाई, वाह! मैं चिन्ता क्यों न करूँ? तुमको सौदाकी चिन्ता होती हो तो मुझे चिन्ता क्यों न होनी चाहिए? परन्तु हम दोनोंकी चिन्ताका मूल कारण यह चिठ्ठी ही है न? यदि इसको फाडकर फेंक दें तो हम दोनोंकी चिन्ता मिट जायगी।'

यों कहकर श्रीमद् राजचन्द्रने सहज भावसे वह दस्तावेज फाड़ डाला।

तत्पश्चात् श्रीमद् बोले: 'भाई, इस चिठ्ठीके कारण तुम्हारे हाथपाँव बंधे हुए थे। बाजारभाव बढ़ जानेसे तुमसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये लेना निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रुपये मैं तुमसे लूँ तो तुम्हारी क्या दशा हो? परन्तु राजचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं।'

वह बेचारा व्यापारी तो आभारवश बनकर फिरस्ता समान श्रीमद्को देखता ही रहा।

यह सब देखकर, श्रीमद्ने श्रावण वदी १९४८के पत्रमें जो उद्‌गार प्रगट किये हैं, वे ही उद्‌गार हमारे अन्तःकरणमेंसे श्रीमद् राजचन्द्रजीके लिए व्यक्त हो जाते हैं।

वह पुरुष नमन करने योग्य है,

कीर्तन करने योग्य है,

परमप्रेमपूर्वक गुणगान करने योग्य है।

पुनः पुनः विशिष्ट आत्मपरिणामसे ध्यान करने योग्य है,

कि

जिस पुरुषको द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे

किसी भी प्रकारकी प्रतिबद्धता नहीं है।

७

११

श्रीमद्‌की अेकान्त चर्या

हम देख चुके हैं कि श्रीमद् हीरे-मोतीका लाखोंका व्यापार करते थे, परन्तु साथ-साथ उनका अभ्यन्तर जीवन भी विकसित होता जाता था। व्यापारमें लाभ हानि भी होती, परन्तु यह सब इनके मनमें क्षणिक थी। इनका सच्चा जीवन तो धर्मको अनिवार्य समझकर उसमें ही ओतप्रोत रहता था। और उस प्रकारकी बढ़ती जाती व्यापारकी उपाधियोंमें भी धर्म और तत्त्वज्ञानके अपने प्रिय अभ्यासमें उन्होंने खलल नहीं आने दिया था। उद्योगरत जीवनमें शान्त और स्वस्थ चित्तसे चुपचाप रूपसे वे ज्ञान-वृद्धि किये जाते थे, तथा हमेशा धर्मग्रन्थोंके पठन-मननमें गुथे रहते थे। इस प्रकार श्रीमद्‌ने बाह्य उपाधि और अन्तरंग दशाके मध्यमें अद्‌भुत सुमेल साधा था। इसमें भी श्रीमद् भगवानकी कृपा ही देखते थे।

वे लिखते हैं: 'यदि भगवानकी कृपा न हो तो इस कालमें इस प्रकारकी उपाधिके योगमें मस्तकका धड़के ऊपर रहना मुश्किल हो जाय।....हृदयमें प्रभुका नाम रखकर

कठिनतासे हम प्रवर्तन कर सकते हैं।'

इस तरह ईश्वरार्पितभावमें रहकर समतासे श्रीमद् राजचन्द्र सभी उपाधियोंका निष्कामतासे निर्वाह करते थे। परन्तु उद्योग-प्रवृत्तिरत जीवनमेंसे भी वे बीचबीचमें आत्म-चिन्तनके लिए बम्बई छोड़कर एकान्त स्थलोंमें, वनोंमें या पर्वतोंमें कितनी ही बार अकेले चले जाते थे। वे अपनी दुकान पर कह जाते कि जबतक मैं स्वयं पत्र न लिखूँ, वहाँतक कोई मेरे साथ किसी भी प्रकारका पत्र व्यवहार न करे। इस तरह श्रीमद् चरोतर, सौराष्ट्र ईडर आदि प्रदेशोंमें एकान्तमें रहे थे। कदाचित् कोई पहचान न जाय अथवा अपने एकान्त स्थलकी खबर न पड़ जाय इस डरसे वे खूब गुप्त रहनेका हमेशा प्रयास करते, फिर भी वे बारम्वार पहचाने जाते और लोगोंकी अधिक संख्या उनका उपदेश, शिक्षावचन श्रवण करनेकी अभिलाषासे उनके पीछे पड़ती।

श्रीमद्की एकान्त चर्याकी सम्पूर्ण जानकारी नहीं मिल सकी, परन्तु जो मनुष्य उनके समागममें आये थे उनसे मिली हुई बातों परसे यहाँ संक्षेपमें उनका विचार करते हैं।*

संवत् १९४६ में श्रीमद् खंभातमें प्रथम एक सप्ताह रहे थे। तत्पश्चात् थोडे समय खंभातसे कुछ दूर रालज नामके गाँवमें सं. १९४७ में रहे थे। उस समय कोई न

* विस्तृत जानकारीके लिए ब्र. गोवर्धनदासजी कृत 'श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला' देखिये।

जाने इस प्रकार एकान्तमें निवास किया था।

संवत् १९५१में श्रीमद् अवकाश लेकर सौराष्ट्रमें राणपुर समीपके हडमताला (हडमतिया) नामके छोटे गाँवकी ओर रहे थे। वहाँ बडौदा, बोटाद, सायला और मोरबी आदि अनेक स्थानोंसे धर्मजिज्ञासु आये थे और अनेक जीवोंको सत्समागम, बोध इत्यादिका लाभ मिला था।

पश्चात् हडमतालासे बम्बई जाते समय बीचमें खंभात संवत् १९५१के असोज मासमें श्रीमद् रहे थे। सं. १९५२में श्रीमद् बम्बईसे अढाई मास जितनी निवृत्ति लेकर गुजरातके चरोतर प्रदेशमें गये थे।

वे, अम्बालालभाई, सौभागभाई तथा डुंगरशी गोसालियाके साथ बारह दिन अगासके पासके काविठा गाँवमें रहे थे। बादमें श्रीमद् खंभातके समीपवाले रालज गाँवमें पारसीके बंगलेमें आठ दस दिन रहे थे।

ईसके बाद एक बार खंभातके पास वडवा स्थान पर श्री लल्लुजी महाराज और दूसरे पाँच मुनि श्रीमद्‌के समागमके लिए गये थे। श्रीमद्‌ने वडवामें एकान्त स्थल पर इन छः मुनियोंको बुलवाया था। वहाँ उन्होंने छः दिन रहकर श्रीमद्‌के मुखसे परमबोधका ग्रहण किया था। छठ्ठे दिन श्रीमद्‌ने इन छः मुनियोंको जीवनप्रेरक उपदेश देते हुए कहा था:

'आप लोग गृह, कुटुम्ब, परिवार तथा पंचकी साक्षी-पूर्वक विवाहित स्त्री — इन सब पर निर्मोही होकर निकले हैं। तो आप सच्चे साधु बनिये, आत्मामें सत्य प्रगट

कीजिये। (१) आत्मा है; (२) आत्मा नित्य है; (३) आत्मा कर्ता है, (४) आत्मा भोक्ता है, (५) मोक्ष है और (६) मोक्षका उपाय है, इन छ पदोंका हे मुनियो! आप लोग बारम्बार विचार करना।

'वडवामें जो इतने समय तक रुकना हुआ है वह आपके ही लिए हुआ है। आप लोगोंको (हमारी) इस वेशमें जो प्रतीति होगी वह यथार्थ सत्य होगी। क्योंकि आप लोगोंका त्यागीका वेश है और हमारे पास वैसा कुछ दिखाई तो भी, आत्मपरिणति पर लक्ष्य करनेसे प्रतीतिका कारण होगा।'

श्रीमद् काविठामें स्वयं अकेले ही वहाँके खेतोंमें विचरते थे। किसी प्रसंग पर जन-समुदाय एकत्रित होता तो वे सहज बोधरूपसे करुणा करते थे। रालजमें भी उसी प्रकारके बोधके प्रसंग बने थे। वडवामें तो खंभातके पहचानवाले अनेक धर्मजिज्ञासु आनेसे प्रतिदिन बोधका प्रवाह बहता था। आणंद, काविठा, रालज और वडवाके उपदेशसे स्मृतिमें रहे हुए विचारोंको, बहुत करके श्रीमद्के ही शब्दोंमें, प्रभावशाली स्मरणशक्तिवाले अम्बालालभाईने उतार लिया था। ये विचार 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थमें 'उपदेश छाया'के नामसे प्रकाशित हुए हैं।

श्रीमद् आणंदसे नडियाद सं. १९५२में आये थे। उनकी सेवा भक्तिमें अम्बालालभाई सभी गाँवोंमें साथ ही रहते थे। इसी नडियाद स्थान पर शरद्पूर्णिमाके दूसरे दिन रातके समय एक ही बैठकमें श्रीमद् राजचन्द्रने 'आत्म-

सिद्धिशास्त्र'को पद्यरूपमें रचा था।*

श्रीमद् नडियादमें सं. १९५२की दिवालीके बाद भी कुछ समय रहे थे। इसके बाद ववाणिया, मोरबी, सायला तरफ वैशाख मास तक रहे थे। और इसी मासमें ईडर होकर बम्बई चले गये थे।

श्रीमद्का मोरबीमें तीन महीने सं. १९५४में चैत्र महीने तक रहना हुआ था। उस अवसर पर हुए व्याख्यानोंको एक मुमुक्षुने लेख रूपमें लिख लिया था। ये लेख 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थमें 'व्याख्यानसार' नामसे प्रकाशित हुए हैं।

श्रावण मासके प्रारंभमें श्रीमद् पेटलाद होकर काविठा गये थे। वहाँ एक मास नौ दिन तक निवृत्तिमें रहे। अंबालालभाई उनकी परिचर्यामें साथ थे। मुनिश्री लल्लुजी आदिका चौमासा वसोमें था। और देवकरणजी महाराज आदिका चौमासा खेडामें था। इससे श्रीमद् काविठासे नडियाद होकर वसो भी गये थे। श्री लल्लुजीको श्रीमद्ने पूछा: 'कहिये, मुनि, यहाँ हम कितने दिन रहें?'

श्री लल्लुजी महाराजकी इच्छा श्रीमद्के साथ अधिक समय तक समागम करनेकी थी। इससे उन्होंने जवाब दिया: 'एक मास यहाँ रहें तो अच्छा।'

श्रीमद् मौन रहे।

श्री लल्लुजी महाराज वसो गाँवमें वडे-वडे लोगोंके

* 'आत्मसिद्धिशास्त्र'की विशेष जानकारीके लिए प्रकरण १४वाँ देखिये।

यहाँ आहारपानी लेने जाते, उस समय वे सबसे कहते कि, 'बम्बईसे एक बडे महात्मा आये हैं। वे बडे भारी विद्वान हैं। यदि तुम लोग उनका व्याख्यान सुनने आओगे तो बहुत लाभ होगा।'

इससे अनेक मनुष्य श्रीमद्के पास आने लगे। यह देखकर श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे कहा, 'जिस समय सब यहाँ आयें उस समय तुम मुनियोंको नहीं आना चाहिए।'

यह सुनकर श्री लल्लुजीको अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ कि मैंने इनसे एक मासके समागमकी याचना की थी। परन्तु इस प्रकारसे अन्तराय आ गया।

श्रीमद् वनमें बाहर जाते तब समस्त मुनियोंको ज्ञान-वार्ताका लाभ मिलता। वसोसे एक मील दूरकी गोचर भूमिमें बैठकर श्रीमद् ज्ञानवार्ता आदि करते थे।

एक मास पूर्ण हुआ, उस समय मुनियोंको जाग्रत रहनेकी सूचना करते हुए श्रीमद् राजचन्द्रने कहा:

हे मुनियो! इस समय ज्ञानी पुरुषके प्रत्यक्ष समागममें आप लोग सब प्रमाद करते हैं। परन्तु जब ज्ञानी पुरुष न होगा तब पश्चात्ताप करेंगे। पाँचसौ पाँचसौ कोस तक पर्यटन करने पर भी ज्ञानी पुरुषका समागम नहीं होगा।'

श्रीमद् राजचन्द्रने श्री लल्लुजीको बताया:

'कोई मुमुक्षु भाई अथवा बहिन यदि तुमसे आत्मार्थ साधन माँगे तो उसे इस प्रकार आत्महितके साधन बताना।

'१. सात व्यसनोंके त्यागका नियम कराना।

'२. हरी वनस्पतिका त्याग कराना।

'३. कन्दमूलका त्याग कराना।

'४. अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग कराना।

'५. रात्रि भोजनका त्याग कराना।

'६. पांच मालायें जप करनेका नियम कराना।

'७. स्मरण बताना।

'८. क्षमापनाका पाठ और बीस दोहोंका नित्य पठन-मनन करनेके लिए जताना।

'९. सत्समागम और सत्शास्त्रके सेवन करनेको कहना।'

वसोमें भाई मोतीलाल नामके नडियादके भावसार श्रीमद्की सेवामें रहते थे। उनके द्वारा श्रीमद्ने नडियादके आसपास रहने योग्य किसी एकान्त स्थलकी खोज कराई थी। नडियाद और उत्तरसंडाके बीचमें एक बंगला मिल सकनेकी व्यवस्था हुई। इससे श्रीमद् अंबालालभाई, लहराभाई और मोतीलालभाईके साथ उत्तरसंडाके बंगलेमें पधारे। वहाँ पर दूसरोंके आनेकी मनाई थी।

पन्द्रह दिन तक अम्बालाल सेवामें रहे और सभी व्यवस्था स्वयं कर लेते थे।

परन्तु श्रीमद्की बिलकुल एकान्त निवृत्तिकी वृत्ति होनेसे अम्बालालभाई जो रसोईका सामान, गद्दे, बरतन आदि लाये थे उन सबको ले जानेकी आज्ञा की, एक मात्र मोतीलालभाईको सेवामें रखा।

अम्बालालभाई बंगला खाली करके सब सामान बैल-गाडीमें भरकर नडियाद ले गये। मोतीलालभाईने अपने

लिए एक गद्दा रखाया था। उस गद्दे और पानीके लोटेके सिवाय वहाँ दूसरा कुछ भी नहीं रखा था।

श्री अम्बालालभाई मोतीलालभाईको सूचना दे गये कि, 'रातको दो-तीन बार श्रीमद्जीकी देखभाल करते रहना।'

श्रीमद् वनमें अकेले दूर तक घूमने चले गये और रातके साढ़े-दस बजे वापस आये। मोतीलालभाईने बरामदेमें जो झूला था उस पर अपने लिए रखा हुआ गद्दा बिछा दिया था। उसे देखकर श्रीमद्ने पूछा : 'यह गद्दा कहाँसे लाये?'

मोतीलालभाईने कहा : 'मैंने अपने लिए रखाया था, उसे बिछाया है।'

श्रीमद्ने कहा : 'तुम इस गद्देको ले लो।'

मोतीलालभाईने अतिशय आग्रह किया इससे श्रीमद्ने उस गद्देको रहने दिया।

थोडी देर बाद मोतीलालभाई देखने आये तो गद्दा नीचे पड़ा था, और मच्छर विशेष मालूम पडे, इससे वे श्रीमद्जीको एक धोतीसे ढाँककर बादमें अन्दर जाकर सो गये।

मोतीलालभाई रातमें उन्हें दूसरी बार देखने आये, उस समय धोती नीचे पडी हुई थी और श्रीमद् गाथायें बोला करते थे। इससे पुनः ओढाकर वे अन्दर जाकर सो गये।

इस प्रकार शरीरकी संभाल किये बिना श्रीमद् रातको भी धर्मध्यानमें लीन रहते थे।

दूसरे दिन श्रीमद् जंगलमें गये थे और वहाँसे दो घण्टे बाद वापस हुए थे।

थोडी देरके बाद मोतीलालभाईने श्रीमद्‌से पूछा, 'खाने-पीनेके लिए क्या करें?'

श्रीमद्‌ने कहा : 'तुम नडियाद जाओ। तुम्हारी स्त्रीको स्नान कराकर उससे रोटी और शाक बनवाना। लोहेका बरतन उपयोगमें न ले तथा शाक आदिमें तेल और पानी न डाले यह जता देना।'

मोतीलालभाई नडियाद गये और की हुई सूचनाके अनुसार रोटी तथा शाक तैयार कराया। अम्बालालभाई नडियादमें ही थे। उन्होंने चूरमा आदि रसोई तैयार कराके रखी थी। परन्तु जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार दूध और घीमें बनी हुई रसोई लेकर वे बंगले पर आये।

मोतीलालभाई इस प्रकार प्रतिदिन नडियाद भोजन करके आते और श्रीमद्‌जीके लिए शुद्ध आहार साथमें लेते आते थे। मोतीलालभाई भी एक ही बार भोजन करते, जिससे प्रमाद कम हो।

शामके समय श्रीमद्‌ बाहर अकेले दूर तक घूमने जाते रातको लगभग दस बजे वापस आते। किसी समय मोतीलालभाई भी साथ जाते थे। एक दिन चलते-चलते श्रीमद्‌ बोले :

'तुम क्यों प्रमादमें पडे हुए हो? वर्तमानमें मार्ग ऐसे काँटोंसे भरा हुआ है, कि उन काँटोंको दूर करते हुए हमें जो श्रम उठाना पड़ा है, उसे हमारा आत्मा ही जानता है। यदि वर्तमानमें ज्ञानीपुरुष विद्यमान होता तो हम उसके पीछे-पीछे चले जाते, परन्तु तुमको प्रत्यक्ष ज्ञानीका

लिए एक गद्दा रखाया था। उस गद्दे और पानीके लोटेके सिवाय वहाँ दूसरा कुछ भी नहीं रखा था।

श्री अम्बालालभाई मोतीलालभाईको सूचना दे गये कि, 'रातको दो-तीन बार श्रीमद्जीकी देखभाल करते रहना।'

श्रीमद् वनमें अकेले दूर तक घूमने चले गये और रातके साढ़े-दस बजे वापस आये। मोतीलालभाईने बरामदेमें जो झूला था उस पर अपने लिए रखा हुआ गद्दा बिछा दिया था। उसे देखकर श्रीमद्ने पूछा: 'यह गद्दा कहाँसे लाये?'

मोतीलालभाईने कहा: 'मैंने अपने लिए रखाया था, उसे बिछाया है।'

श्रीमद्ने कहा: 'तुम इस गद्देको ले लो।'

मोतीलालभाईने अतिशय आग्रह किया इससे श्रीमद्ने उस गद्देको रहने दिया।

थोडी देर बाद मोतीलालभाई देखने आये तो गद्दा नीचे पड़ा था, और मच्छर विशेष मालूम पडे, इससे वे श्रीमद्जीको एक धोतीसे ढाँककर बादमें अन्दर जाकर सो गये।

मोतीलालभाई रातमें उन्हें दूसरी बार देखने आये, उस समय धोती नीचे पडी हुई थी और श्रीमद् गाथायें बोला करते थे। इससे पुनः ओढाकर वे अन्दर जाकर सो गये।

इस प्रकार शरीरकी संभाल किये बिना श्रीमद् रातको भी धर्मध्यानमें लीन रहते थे।

दूसरे दिन श्रीमद् जंगलमें गये थे और वहाँसे दो घण्टे बाद वापस हुए थे।

थोडी देरके बाद मोतीलालभाईने श्रीमद्‌से पूछा, 'खाने-पीनेके लिए क्या करें?'

श्रीमद्‌ने कहा : 'तुम नडियाद जाओ। तुम्हारी स्त्रीको स्नान कराकर उससे रोटी और शाक बनवाना। लोहेका बरतन उपयोगमें न ले तथा शाक आदिमें तेल और पानी न डाले यह जता देना।'

मोतीलालभाई नडियाद गये और की हुई सूचनाके अनुसार रोटी तथा शाक तैयार कराया। अम्बालालभाई नडियादमें ही थे। उन्होंने चूरमा आदि रसोई तैयार कराके रखी थी। परन्तु जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार दूध और घीमें बनी हुई रसोई लेकर वे बंगले पर आये।

मोतीलालभाई इस प्रकार प्रतिदिन नडियाद भोजन करके आते और श्रीमद्‌जीके लिए शुद्ध आहार साथमें लेते आते थे। मोतीलालभाई भी एक ही बार भोजन करते, जिससे प्रमाद कम हो।

शामके समय श्रीमद्‌ बाहर अकेले दूर तक घूमने जाते रातको लगभग दस बजे वापस आते। किसी समय मोतीलालभाई भी साथ जाते थे। एक दिन चलते-चलते श्रीमद्‌ बोले :

'तुम क्यों प्रमादमें पडे हुए हो? वर्तमानमें मार्ग ऐसे काँटोंसे भरा हुआ है, कि उन काँटोंको दूर करते हुए हमें जो श्रम उठाना पड़ा है, उसे हमारा आत्मा ही जानता है। यदि वर्तमानमें ज्ञानीपुरुष विद्यमान होता तो हम उसके पीछे-पीछे चले जाते, परन्तु तुमको प्रत्यक्ष ज्ञानीका

लिए एक गद्दा रखाया था। उस गद्दे और पानीके लोटेके सिवाय वहाँ दूसरा कुछ भी नहीं रखा था।

श्री अम्बालालभाई मोतीलालभाईको सूचना दे गये कि, 'रातको दो-तीन बार श्रीमद्‌जीकी देखभाल करते रहना।'

श्रीमद् वनमें अकेले दूर तक घूमने चले गये और रातके साढ़े-दस बजे वापस आये। मोतीलालभाईने बरामदेमें जो झूला था उस पर अपने लिए रखा हुआ गद्दा बिछा दिया था। उसे देखकर श्रीमद्‌ने पूछा: 'यह गद्दा कहाँसे लाये?'

मोतीलालभाईने कहा: 'मैंने अपने लिए रखाया था, उसे बिछाया है।'

श्रीमद्‌ने कहा: 'तुम इस गद्देको ले लो।'

मोतीलालभाईने अतिशय आग्रह किया इससे श्रीमद्‌ने उस गद्देको रहने दिया।

थोडी देर बाद मोतीलालभाई देखने आये तो गद्दा नीचे पड़ा था, और मच्छर विशेष मालूम पडे, इससे वे श्रीमद्‌जीको एक धोतीसे ढाँककर बादमें अन्दर जाकर सो गये।

मोतीलालभाई रातमें उन्हें दूसरी बार देखने आये, उस समय धोती नीचे पडी हुई थी और श्रीमद् गाथायें बोला करते थे। इससे पुनः ओढाकर वे अन्दर जाकर सो गये।

इस प्रकार शरीरकी संभाल किये बिना श्रीमद् रातको भी धर्मध्यानमें लीन रहते थे।

दूसरे दिन श्रीमद् जंगलमें गये थे और वहाँसे दो घण्टे बाद वापस हुए थे।

थोडी देरके बाद मोतीलालभाईने श्रीमद्‌से पूछा, 'खाने-पीनेके लिए क्या करें?'

श्रीमद्‌ने कहा : 'तुम नडियाद जाओ। तुम्हारी स्त्रीको स्नान कराकर उससे रोटी और शाक बनवाना। लोहेका बरतन उपयोगमें न ले तथा शाक आदिमें तेल और पानी न डाले यह जता देना।'

मोतीलालभाई नडियाद गये और की हुई सूचनाके अनुसार रोटी तथा शाक तैयार कराया। अम्बालालभाई नडियादमें ही थे। उन्होंने चूरमा आदि रसोई तैयार कराके रखी थी। परन्तु जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार दूध और घीमें बनी हुई रसोई लेकर वे बंगले पर आये।

मोतीलालभाई इस प्रकार प्रतिदिन नडियाद भोजन करके आते और श्रीमद्‌जीके लिए शुद्ध आहार साथमें लेते आते थे। मोतीलालभाई भी एक ही बार भोजन करते, जिससे प्रमाद कम हो।

शामके समय श्रीमद्‌ बाहर अकेले दूर तक घूमने जाते रातको लगभग दस बजे वापस आते। किसी समय मोतीलालभाई भी साथ जाते थे। एक दिन चलते-चलते श्रीमद्‌ बोले :

'तुम क्यों प्रमादमें पडे हुए हो? वर्तमानमें मार्ग ऐसे काँटोंसे भरा हुआ है, कि उन काँटोंको दूर करते हुए हमें जो श्रम उठाना पड़ा है, उसे हमारा आत्मा ही जानता है। यदि वर्तमानमें ज्ञानीपुरुष विद्यमान होता तो हम उसके पीछे-पीछे चले जाते, परन्तु तुमको प्रत्यक्ष ज्ञानीका

योग है। फिर भी ऐसे योगसे जाग्रत नहीं होते। प्रमादको दूर करो, जाग्रत होओ। हम जिस समय श्री वीर प्रभुके अन्तिम शिष्य थे, उस समयमें लघुशंका जितना प्रमाद करनेसे हमें इतने भव करने पडे हैं। परन्तु जीवोंको प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषका पहचान होना अत्यन्त दुष्कर है।'

एक दिन मोतीलालभाईने अपनी पत्नीको सूचना की कि, 'फास्ट गाडीके जानेके बाद तुम बंगलेकी ओर खाना लेकर आना और तीन चार खेत दूर रहना। वहाँ आकर मैं ले जाऊँगा।' परन्तु वह बाई तो बंगलेके समीप आ पहुँचीं। इससे मोतीलालभाईने उसे खूब उलाहना दिया। क्योंकि श्रीमद्से इस व्यवस्थाके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा गया था।

यह बात श्रीमद्के जाननेमें आई, इससे उन्होंने मोतीलालभाईसे कहा: 'तुम क्यों गुस्से हुए? अपना स्वामीपन दिखाते हो? नहीं, नहीं; ऐसा कभी न होना चाहिए। उलटा तुम्हें उस बाईका उपकार मानना चाहिए। यह बाई आठ भव करके मोक्ष पानेवाली है। उस बाईको यहाँ आने दो।'

मोतीलालभाईने तुरन्त जाकर अपनी स्त्रीसे कहा यदि तुम्हें दर्शन करनेकी इच्छा हो तो आओ। तुमको आनेकी आज्ञा मिली है।

इससे वह दर्शन करने आई।

श्रीमद्ने प्रमाद छोड़नेके लिए उपदेश देते हुए कहा: 'प्रमादसे जाग्रत होओ। पुरुषार्थ रहित होकर इस प्रकार

शिथिलतासे क्यों प्रवृत्ति हो रही है? ऐसा योग मिलना महाविकट है। महापुण्यसे ऐसा योग मिला है, उसे व्यर्थ न गुमाना चाहिए। जाग्रत होओ, जाग्रत होओ। किसी भी प्रकारसे हमारा जो कहना है वह केवल यही कि जाग्रत रहो।'

इस निवासके समय श्रीमद् दो रुपयेभर आटेकी रोटी और थोड़ा शाक तथा थोड़ा-सा दूध सारे दिनमें लेते थे। इसके सिवाय वे दूसरी बार दूध भी न लेते थे। एक पंचा बीचमेंसे पहनते और उसके दोनों छोर आमने-सामने कन्धे पर डालते। एक समय श्रीमद्‌ने कहा था कि,' यह शरीर हमारे साथ लड़ाई करता है; परन्तु हम उसे सफल नहीं होने देते।'

श्रीमद् उत्तरसंडासे मोतीलालभाईके साथ तांगेमें बैठकर खेडा गये। वहाँ गाँवके बाहर बंगलेमें रहे थे। श्री अम्बालालभाईने खेडा आकर दो दिन गाँवमें निवास किया था और वे दर्शन करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते थे। श्रीमद्‌की आज्ञा मिलने पर उन्हें उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्रीमद् इस एकान्त-चर्याके समयमें ध्यानस्थ अवस्थामें विशेष रहते। घूमने जाते समय भी आत्मचिन्तवन या ध्यानमें इतने एकाग्र रहते कि उनको अपने शरीरका ध्यान भी नहीं रहता था। एक दिन घूमने जाते समय मोतीलालभाईने अपने नये जूते श्रीमद्‌के सामने रख दिये। श्रीमद्‌ने उन्हें पहर लिये। कोस डेढ़ कोस चलनेके बाद

योग है। फिर भी ऐसे योगसे जाग्रत नहीं होते। प्रमादको दूर करो, जाग्रत होओ। हम जिस समय श्री वीर प्रभुके अन्तिम शिष्य थे, उस समयमें लघुशंका जितना प्रमाद करनेसे हमें इतने भव करने पडे हैं। परन्तु जीवोंको प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषका पहचान होना अत्यन्त दुष्कर है।'

एक दिन मोतीलालभाईने अपनी पत्नीको सूचना की कि, 'फास्ट गाडीके जानेके बाद तुम बंगलेकी ओर खाना लेकर आना और तीन चार खेत दूर रहना। वहाँ आकर मैं ले जाऊँगा।' परन्तु वह बाई तो बंगलेके समीप आ पहुँचीं। इससे मोतीलालभाईने उसे खूब उलाहना दिया। क्योंकि श्रीमद्से इस व्यवस्थाके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा गया था।

यह बात श्रीमद्के जाननेमें आई, इससे उन्होंने मोतीलालभाईसे कहा: 'तुम क्यों गुस्से हुए? अपना स्वामीपन दिखाते हो? नहीं, नहीं; ऐसा कभी न होना चाहिए। उलटा तुम्हें उस बाईका उपकार मानना चाहिए। यह बाई आठ भव करके मोक्ष पानेवाली है। उस बाईको यहाँ आने दो।'

मोतीलालभाईने तुरन्त जाकर अपनी स्त्रीसे कहा यदि तुम्हें दर्शन करनेकी इच्छा हो तो आओ। तुमको आनेकी आज्ञा मिली है।

इससे वह दर्शन करने आई।

श्रीमद्ने प्रमाद छोड़नेके लिए उपदेश देते हुए कहा: 'प्रमादसे जाग्रत होओ। पुरुषार्थ रहित होकर इस प्रकार

श्रीमद् एक जगह पर बैठे। वहां मोतीलालभाईकी दृष्टि उनके पाँव पर गई तो देखा कि नये जूतोंकी रगड़से उनके पाँवकी चमडी छिल गई थी और उसमेंसे रुधिर बह रहा था। श्रीमद्ने उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया था। मोतीलालभाईने जूतोंको निकालकर, चमडीको धीरेसे साफ कर, लगी हुई धूल दूर की। इसके बाद मोतीलाल-भाईने वे जूते उठा लिए।

श्री देवकरणजी आदि महाराज इस समय खेडामें थे। उन्हें तेईस दिन तक श्रीमद्के समागमका लाभ मिला। श्रीमद्की उस स्थितिका वर्णन श्री देवकरणजीने श्री लल्लुजी महाराज पर लिखे हुए पत्रमें निम्न प्रकारसे किया है:

'(श्रीमद्के) सर्वोपरि उपदेशमें यही आता है कि, शरीरको कृश करके, अन्तरंग तत्त्वकी खोज करके इस कलेवरको फेंक कर चले जाओ। विषयकषायरूपी चोरोंको अन्दरसे बाहर निकालकर, जलाकर, भस्मीभूतकर शान्त हो जाओ, छूट जाओ, समा जाओ, शान्ति, शान्ति शान्ति हो। जल्दीसे जल्दी ऐसा अवश्य करो।

इस समागममें श्री देवकरणको श्रीमद्के प्रति आस्था हुई। उनके अपने आग्रह दूर होकर श्रीम उनको अच्छी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन्होंने ऊपरके ही उल्लासपूर्ण लिखा है:

....असद्गुरुकी भ्रान्ति गई, सद्गुरुकी परिपूर्ण हुई, अत्यन्त निश्चय [illegible] स समय शरीर पुलकित सत्पुरुषकी प्रतीति [illegible] रोम-रोममें उतर

शिथिलतासे क्यों प्रवृत्ति हो रही है? ऐसा योग मिलना महाविकट है। महापुण्यसे ऐसा योग मिला है, उसे व्यर्थ न गुमाना चाहिए। जाग्रत होओ, जाग्रत होओ। किसी भी प्रकारसे हमारा जो कहना है वह केवल यही कि जाग्रत रहो।'

इस निवासके समय श्रीमद् दो रुपयेभर आटेकी रोटी और थोड़ा शाक तथा थोड़ा-सा दूध सारे दिनमें लेते थे। इसके सिवाय वे दूसरी बार दूध भी न लेते थे। एक पंचा बीचमेंसे पहनते और उसके दोनों छोर आमने-सामने कन्धे पर डालते। एक समय श्रीमद्ने कहा था कि,' यह शरीर हमारे साथ लड़ाई करता है; परन्तु हम उसे सफल नहीं होने देते।'

श्रीमद् उत्तरसंडासे मोतीलालभाईके साथ तांगेमें बैठकर खेडा गये। वहाँ गाँवके बाहर बंगलेमें रहे थे। श्री अम्बालालभाईने खेडा आकर दो दिन गाँवमें निवास किया था और वे दर्शन करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते थे। श्रीमद्की आज्ञा मिलने पर उन्हें उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्रीमद् इस एकान्त-चर्याके समयमें ध्यानस्थ अवस्थामें विशेष रहते। घूमने जाते समय भी आत्मचिन्तवन या ध्यानमें इतने एकाग्र रहते कि उनको अपने शरीरका ध्यान भी नहीं रहता था। एक दिन घूमने जाते समय मोतीलालभाईने अपने नये जूते श्रीमद्के सामने रख दिये। श्रीमद्ने उन्हें पहर लिये। कोस डेढ़ कोस चलनेके बाद

श्रीमद् एक जगह पर बैठे। वहां मोतीलालभाईकी दृष्टि उनके पाँव पर गई तो देखा कि नये जूतोंकी रगड़से उनके पाँवकी चमडी छिल गई थी और उसमेंसे रुधिर बह रहा था। श्रीमद्ने उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया था। मोतीलालभाईने जूतोंको निकालकर, चमडीको धीरेसे साफ कर, लगी हुई धूल दूर की। इसके बाद मोतीलाल-भाईने वे जूते उठा लिए।

श्री देवकरणजी आदि महाराज इस समय खेडामें थे। उन्हें तेईस दिन तक श्रीमद्के समागमका लाभ मिला। श्रीमद्की उस स्थितिका वर्णन श्री देवकरणजीने श्री लल्लुजी महाराज पर लिखे हुए पत्रमें निम्न प्रकारसे किया है :

'(श्रीमद्के) सर्वोपरि उपदेशमें यही आता है कि, शरीरको कृश करके, अन्तरंग तत्त्वकी खोज करके इस कलेवरको फेंक कर चले जाओ। विषयकषायरूपी चोरोंको अन्दरसे बाहर निकालकर, जलाकर, भस्मीभूतकर शान्त हो जाओ, छूट जाओ, समा जाओ, शान्ति, शान्ति शान्ति हो। जल्दीसे जल्दी ऐसा अवश्य करो।

इस समागममें श्री देवकरणको श्रीमद्के प्रति पूर्ण आस्था हुई। उनके अपने आग्रह दूर होकर श्रीमद् पर उनको अच्छी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन्होंने ऊपरके पत्रमें ही उल्लासपूर्ण लिखा है :

....असद्गुरुकी भ्रान्ति गई, सद्गुरुकी परिपूर्ण प्रतीति हुई, अत्यन्त निश्चय हुआ, उस समय शरीर पुलकित हुआ। सत्पुरुषकी प्रतीतिका दृढ़ निश्चय रोम-रोममें उतर गया,

आज्ञावश वृत्ति हुई....।

'आपने जो कहा, वैसा ही हुआ, फल पका, रस चखा और शान्त हुए.... ऐसी वृत्ति रहती है कि मानो सत्पुरुषके चरणोंमें मोक्ष प्रत्यक्ष नजरमें आता है। परमकृपालुदेवने पूर्ण कृपा की है.... हमारा एक आहारका समय बेकार जाता है। बाकी तो सद्गुरु-सेवामें काल व्यतीत होता है। यही योग्य है। वही वाक्य जब हम उनके मुखसे श्रवण करते हैं तब नवीन लगता है।.... यही लिखना है कि, हम लोग हर्षसहित श्रवण करते रहते हैं। ज्ञानी सद्गुरुके उपदिष्ट वचनोंको सुनकर यदि एक वचन भी पूर्ण प्रेमसे करें, तो वह आराधना ही मोक्ष है; मोक्ष बताती है।'

चौमासा पूर्ण होते ही सभी मुनि वसो और खेडासे नडियाद आये, और थोडे समय तक श्रीमद्के समागममें प्राप्त हुए अनुभवका आदान-प्रदान कर आत्मानन्दमें मग्न रहने लगे।

खेडासे श्रीमद् महेमदाबाद स्टेशनसे बम्बई चले गये। वहाँ एक मास रहकर वे निवृत्तिके लिए ईडर जानेके लिए निकले। नडियाद स्टेशन पर मोतीलालभाई मिले। मुनियोंके सम्बन्धमें पूछनेपर मोतीलालभाईने कहा कि सभी मुनि यहीं हैं। मैं निवृत्तिके लिए ईडर जा रहा हूँ, यह समाचार श्रीमद्ने मुनियोंको भिजवाया।

ईडरमें श्रीमद्का ककियाससुर डॉ. प्राणजीवनदास जगजीवनदास महेता ईडर स्टेटके चीफ मेडिकल ओफिसर थे। संवत् १९५५में श्रीमद् उनके यहाँ रहे थे। उस

समय गाँवमें प्रायः भोजन करने जितना काल व्यतीत करते और अधिक समय ईडरके पहाड़ और जंगलोंमें बिताते थे।

श्रीमद्ने डॉ. प्राणजीवनदाससे खास मनाई की थी, इस लिए जन-समाजमें उनके आने सम्बन्धी कोई समाचार प्रगट न हुए थे। ईडरके उस समयके महाराजा साहिबने श्रीमद्से दो बार मुलाकात ली थी तब ज्ञानवार्ता हुई थी। उसका सार 'देशी राज्य' नामकी मासिक पत्रिकामें ई. सन् १९२८में प्रगट हुआ था।

इस वार्तालापमें महाराजा साहिबने जो एक प्रश्न पूछा था उसका उत्तर यहाँ लिखने लायक है। क्योंकि इसमें श्रीमद्ने अपने पूर्वभवका उल्लेख किया है।

श्रीमद् बोले: 'इस प्रदेशमें ऐतिहासिक प्राचीन स्थानोंके देखनेसे, वे मुझे मूलकी—उसमें रहनेवालोंकी पूर्ण विजयी स्थिति और उनकी आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नतिका प्रमाण देते हैं। देखिये आपका ईडरका गढ़, उसके उपरके जैन मन्दिर, रूखी रानीकी मंजिल, रणमलकी चौकी, महात्माओंकी गुफायें, औषधि-वनस्पति, ये सब अलौकिक विचार कराते हैं।

'श्री जिन तीर्थंकरोंकी अन्तिम चौबीसीके पहले आदिनाथ —ऋषभदेव और अन्तिम महावीर स्वामीका नाम आपने सुना होगा। जैन शासनका पूर्णरूपसे प्रकाश करनेवाले इन अन्तिम तीर्थंकर और उनके शिष्य गौतमादि गणधरोंके विचरनेका भास होता है। उनके शिष्य निर्वाणको प्राप्त

हुए। उनमेंसे बाकी रहे हुए एक शिष्यका इस कालमें जन्म हुआ है। उससे अनेक जीवोंका कल्याण होना संभवित है।'

नडियाद स्टेशन पर श्रीमद्के साथ मोतीलालभाईकी जो बात हुई थी वह उन्होंने मुनियोंसे कही। इससे कुछ मुनि खंभातकी ओर और कुछ अहमदाबादकी ओर विहार करनेका विचार करते थे उसे बन्द रख कर, सभीको श्रीमद्के समागमकी भावना होनेसे सबने ईडरकी ओर विहार करनेका विचार किया।

मुनि श्री लल्लुजी, श्री मोहनलालजी और श्री नरसिंहरख ये तीन मुनि शीघ्रतासे विहार कर जल्दी ईडर पहुँच गये। मुनिश्री देवकरणजी, श्री वेलशीरख, श्री लक्ष्मीचन्दजी और श्री चतुरलालजी ये चार मुनि पीछेसे धीरे धीरे आने लगे।

यहाँ ईडरके पहाड़के ऊपर श्रीमद्ने इन सात मुनियोंको चार दिन तक ज्ञानवार्ता और सद्बोध आदिका लाभ दिया।

यों तो ईडर निवासके समय श्रीमद्को बिलकुल एकान्तकी आवश्यकता थी, इस कारण उन्हें ऐसे प्रसंगकी इच्छा नहीं थी। फिर भी जब स्वयं पहाड़ पर एकान्तमें घूमने जायें उस समय एक आम्र वृक्षके नीचे मुनियोंको मिलनेकी उन्होंने व्यवस्था की थी।

इसके अनुसार दूसरे दिन मुनि आम्र वृक्षके नीचे जाकर श्रीमद्के आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। इतनेमें दूर दूरसे मागधीकी गाथाओंके उच्चारणकी आवाज सुनाई पड़ने लगी।

श्रीमद् गाथाओंकी धून लगाते हुए वहाँ आ रहे थे। वे निम्न लिखित गाथाओंका रटन कर रहे थे। यह रटन एकाद घण्टे चलती रही।

'मा मुज्जह, मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्त झाणप्पसिद्धीए ।। ४८ ।।

जं किंचिवि चितंतो णिरीहवित्ती हुवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं झाणं ।। ५५ ।।

मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होई थिरो ।
अप्पा अप्पमि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ।। ५६ ।।

— द्रव्यसंग्रह

भावार्थ :

हे भव्य जनो! यदि तुम अनेक प्रकारके ध्यानकी सिद्धिके लिए चित्तको स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट और अनिष्ट विषयोंमें मोह न करो, राग न करो और द्वेष न करो। (४८)

किसी भी पदार्थका ध्येय रूपसे चिन्तवन करता हुआ साधु जब स्वरूपस्थितिरूप एकाग्रता प्राप्त करके निःस्पृह वृत्तिको धारण करनेवाला होता है, उस समय उसको भगवानने निश्चय ध्यान कहा है। (५५)

हे जीवो! तुम कायसे कुछ भी चेष्टा न करो, वचनसे किसी भी प्रकारका उच्चार न करो, और मनसे भी किसी भी प्रकारका विचार न करो। जिससे तुम्हारा आत्मा आत्मामें तल्लीन हो, क्योंकि जो आत्मामें लीन होना है वही परम ध्यान है। (५६)

इन गाथाओंकी धुन पूरी होने पर लगभग उतने ही समय श्रीमद् शान्त स्थिरतासे मन, वचन और काय तीनों योगोंको स्थिर कर ध्यानमें लीन हो गये, समाधिस्थ हो गये।

उस समयकी वीतरागता, आत्मस्थिरता और दिव्य दर्शनीय स्वरूपस्थ अवस्था देखकर मुनियोंने अपूर्व शान्तिका अनुभव किया।

ध्यान पूर्ण होने पर 'विचार करना', मुनियोंसे इतना ही कहकर श्रीमद् वहाँसे उठकर चले गये।

तीसरे दिन मुनि नियत समय पर उसी आम्र वृक्षके नीचे आ पहुँचे। मुनि श्री देवकरणका शरीर कृश होनेसे कंप रहा था। शीतकाल होनेसे अत्यन्त ठंड थी। इससे श्री लक्ष्मीचन्दजी मुनिने उन्हें वस्त्र ओढ़ाया।

यह देखकर श्रीमद्‌ने कहा: 'ठंड लगती है?' और बादमें बोले: 'ठंडको उड़ाना है?'

यों कहकर श्रीमद् खडे होकर चलने लगे। सभी मुनि पीछे-पीछे चलने लगे।

श्रीमद्‌जी अत्यन्त वेगसे कांटे, कंकर, झाडी और नुकीले पत्थरोंमें होकर शरीरकी परवाह किये बिना आत्मवेगमें चलते थे। मुनि उनके चरणोंका अवलम्बन ग्रहण कर चलते जाते थे।

इतनेमें एक विशाल शिला मिली। उसके ऊपर श्रीमद् पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हुए। मुनि लोग इनके सन्मुख बैठे। बादमें श्रीमद्‌ने 'बृहद् द्रव्यसंग्रह'

श्रीमद् गाथाओंकी धून लगाते हुए वहाँ आ रहे थे। वे निम्न लिखित गाथाओंका रटन कर रहे थे। यह रटन एकाद घण्टे चलती रही।

'मा मुज्जह, मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्त झाणप्पसिद्धीए ॥ ४८ ॥

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥ ५५ ॥

मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होई थिरो ।
अप्पा अप्पमि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥

— द्रव्यसंग्रह

भावार्थ :

हे भव्य जनो! यदि तुम अनेक प्रकारके ध्यानकी सिद्धिके लिए चित्तको स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट और अनिष्ट विषयोंमें मोह न करो, राग न करो और द्वेष न करो। (४८)

किसी भी पदार्थका ध्येय रूपसे चिन्तवन करता हुआ साधु जब स्वरूपस्थितिरूप एकाग्रता प्राप्त करके निःस्पृह वृत्तिको धारण करनेवाला होता है, उस समय उसको भगवानने निश्चय ध्यान कहा है। (५५)

हे जीवो! तुम कायसे कुछ भी चेष्टा न करो, वचनसे किसी भी प्रकारका उच्चार न करो, और मनसे भी किसी भी प्रकारका विचार न करो। जिससे तुम्हारा आत्मा आत्मामें तल्लीन हो, क्योंकि जो आत्मामें लीन होना है वही परम ध्यान है। (५६)

इन गाथाओंकी धुन पूरी होने पर लगभग उतने ही समय श्रीमद् शान्त स्थिरतासे मन, वचन और काय तीनों योगोंको स्थिर कर ध्यानमें लीन हो गये, समाधिस्थ हो गये।

उस समयकी वीतरागता, आत्मस्थिरता और दिव्य दर्शनीय स्वरूपस्थ अवस्था देखकर मुनियोंने अपूर्व शान्तिका अनुभव किया।

ध्यान पूर्ण होने पर 'विचार करना', मुनियोंसे इतना ही कहकर श्रीमद् वहाँसे उठकर चले गये।

तीसरे दिन मुनि नियत समय पर उसी आम्र वृक्षके नीचे आ पहुँचे। मुनि श्री देवकरणका शरीर कृश होनेसे कंप रहा था। शीतकाल होनेसे अत्यन्त ठंड थी। इससे श्री लक्ष्मीचन्दजी मुनिने उन्हें वस्त्र ओढ़ाया।

यह देखकर श्रीमद्‌ने कहा: 'ठंड लगती है?' और बादमें बोले: 'ठंडको उड़ाना है?'

यों कहकर श्रीमद् खडे होकर चलने लगे। सभी मुनि पीछे-पीछे चलने लगे।

श्रीमद्‌जी अत्यन्त वेगसे कांटे, कंकर, झाडी और नुकीले पत्थरोंमें होकर शरीरकी परवाह किये बिना आत्मवेगमें चलते थे। मुनि उनके चरणोंका अवलम्बन ग्रहण कर चलते जाते थे।

इतनेमें एक विशाल शिला मिली। उसके ऊपर श्रीमद् पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हुए। मुनि लोग इनके सन्मुख बैठे। बादमें श्रीमद्‌ने 'बृहद् द्रव्यसंग्रह'

पढ़ना शुरू किया। इस शिलाको उन्होंने 'पुढवी' शिला कहा था।

पाँचवें दिन श्रीमद् सभी मुनियोंको ऊँचे पहाड़ पर ले गये और वहाँ एक विशाल शिला पर विराजमान हुए तथा बोले, 'यहाँ समीपमें एक व्याघ्र रहता है, परन्तु तुम लोग निर्भय रहना। देखो, यह सिद्धशिला है।' यों कह कर उपदेश किया।

इस प्रकार प्रतिदिन श्रीमद् आत्मस्थितिके अनुसार चलते थे। वे किसी समय पठन-पाठन करते अथवा धार्मिक विवेचन करते। कोई वार तो हिंसक पशुओंके निवासस्थानके समीप जाकर बैठते थे।

इस समयमें श्रीमद्ने समस्त 'द्रव्यसंग्रह' ग्रन्थ मुनियोंको पढ़कर सुनाया था और इस पर वे मननीय प्रवचन भी करते जाते थे।

इस अपूर्व समागमका लाभ मिलनेसे मुनि श्री देवकरणजी आनन्दित होकर बोल उठे थे—'आजतक परम गुरुका जो जो समागम हुआ, उसमें यह समागम सर्वोपरि हुआ है। जिस प्रकार देवालयके शिखर पर कलश चढ़ाया जाता है, वैसे ही यह सत्संग परम कल्याणकारी है, सर्वोपरि समझा जाता है।'

इस समय श्रीमद् करीब तीन महीने ईडर रहे थे। अनेक वार गुफाओंमें रहते, तथा जंगलोंमें विचरते थे। ईडरनिवासी एक भाईने श्री लल्लुजी महाराजसे कहा था कि, यहाँके पहाड़के ऊपरकी एक प्राचीन गुफामें इससे पहले

एकवार श्रीमद् डेढ़ मास तक एकान्तमें रहे थे।

ईडरसे ववाणियाकी ओर श्रीमद् तीन महीनेके लिए गये थे और वापस थोडे समयके लिए ईडर आकर बम्बई चले गये थे।

धरमपुरके जंगलोंमें भी श्रीमद् कुछ समय संवत् १९५६में निवृत्तिके लिए रहे थे। वहाँसे वे ववाणिया गये और मोरबीमें पर्यूषण पर्व तक दो मास रहे थे।

❦

१२

श्रीमद्के समागममें

दीपक प्रकाशने लगता है कि उसकी ओर जैसे इधर-उधरसे पतंगे आकर्षित होने लगते हैं, इसी प्रकार श्रीमद् राजचन्द्रमें यथार्थ धर्म स्थितिका उदय होनेसे ही उनकी ओर गृहस्थ, साधु, सभी वर्गके मुमुक्षु, और जिज्ञासु मनुष्य आकर्षित होने लगे। स्वयं जब तक सम्पूर्णता प्राप्त न करें वहाँ तक उनकी बाहर (प्रगटमें) न आनेकी तीव्र इच्छा होते हुए भी, उनका प्रबल पुरुषार्थ और उज्ज्वल ज्ञान-प्रकाश छिपानेसे छिपा नहीं रहा। परिणाममें श्रीमद्का भक्त मंडल बढ़ता ही गया।

किसी भी व्यक्तिकी सत्य महत्ताकी कसौटी करनेके अनेक साधनोंमेंसे एक मुख्य साधन, इस व्यक्तिने आस-पासके मनुष्यों पर कितना व्यापक और चिरस्थायी प्रभाव डाला है, यह कितनोंके जीवनमें एकमेक बन गया है, कितना प्रेरणारूप हुआ है, यह माना जाता है। इस कारण श्रीमद् राजचन्द्रका वास्तविक परिचय प्राप्त करनेकी इच्छावाले जिज्ञासुको श्रीमद्के परिचयमें आये हुए मनुष्य उनके प्रति

कैसा भक्तिभाव रखते थे, उनके विषयमें क्या मानते थे, उनको कौनसे भावसे देखते थे तथा उनके जीवन पर श्रीमद् राजचन्द्रका कैसा प्रभाव पड़ा था ये सब अवश्य जानना चाहिए।

यहाँ हम श्रीमद्‌के सीधे प्रत्यक्ष समागममें आनेवाले व्यक्तियोंमेंसे, जिनका विशेष वृत्तान्त आज तक मिल सका है, उनका संक्षिप्त परिचय देते हैं:

१

श्री धारशीभाई कुशलचन्द संघवी

श्री धारशीभाई श्रीमद्‌के समागममें किस प्रकारसे आये, इस विषयमें हम आगे विचार कर चुके हैं।* राजकोटमें यह परिचय गाढ़ बना और फिर धारशीभाई श्रीमद्‌से मोरबीमें अनेक बार मिलते। उन दोनोंके बीचमें पत्रव्यवहार भी होता रहता था। श्रीमद् द्वारा सं. १९४८में बम्बईसे लिखा हुआ पत्र 'मनके कारण यह सब है' विचार करने योग्य है। उसमें श्रीमद् लिखते हैं: 'महात्माकी देह दो कारणोंसे विद्यमान रहती है। प्रारब्ध कर्म भोगनेके लिए और जीवोंके कल्याणके लिए; तथापि इन दोनोंमें वह उदास-रूपसे उदयमें आये हुए आचरणमें प्रवृत्ति करता है, ऐसा हम जानते हैं।'

श्रीमद्‌ने 'पंचास्तिकाय'का गुजरातीमें अनुवाद किया था। उसे धारशीभाईके अवगाहनके लिए भेजते हुए साथके पत्रमें श्रीमद् लिखते हैं:

* देखिये प्रकरण ५

'हे आर्य! द्रव्यानुयोगका फल समस्त भावोंसे विराम पाने रूप संयम है। इस पुरुषके उस वचनको तू अपने अन्तःकरणमें किसी दिन भी शिथिल न करना। अधिक क्या? समाधिका रहस्य यही है। समस्त दुःखोंसे मुक्त होनेका अनन्य उपाय यही है।'

इस प्रकार कितने ही पत्र श्रीमद्ने धारशीभाईको लिखे थे। वे 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित हुए हैं।

सं. १९५७की चैत्र सुदी तेरससे लेकर चैत्र वदी चौथ तक श्री धारसीभाई श्रीमद्की अन्तिम बीमारीमें राजकोट श्रीमद्के पास उपस्थित थे।

चैत्र वदी ४की शामको उन्हें मोरबी जाना था, इससे उन्होंने श्रीमद्से आज्ञा माँगी। उस समय श्रीमद्ने बारम्बार कहा—'जल्दी है?'

धारसीभाईने कहा–'दो चार दिनमें वापस आ जाऊँगा।'

अन्तमें श्रीमद्ने कहा—'धारशीभाई! बहुत कहना है। अवसर नहीं है। हमारे समागममें तीन पुरुषोंको स्वरूपकी प्राप्ति हुई है। सोभागभाई, अम्बालाल तथा मुनि श्री लल्लुजी।'

दूसरे दिन श्रीमद्के देहावसानके समाचारको तारसे जानकर उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उन्हें श्रीमद्का वियोग विशेष रूपसे वेदनमें आया था।

बादमें धर्मजिज्ञासाकी वृद्धि होनेपर वे संवत् १९६१में धंधुकामें श्री लल्लुजी स्वामीसे मिले। उन्होंने श्रीमद् द्वारा कही हुई अनेक बातें मुनिको विदित कीं और उनसे

विनयभावपूर्वक मंत्रकी आज्ञा प्राप्त की।

जीवनके अन्तिम वर्षमें श्री धारशीभाई सत्संग करनेके लिए खंभात आकर रहे थे। उस समय श्री लल्लुजी स्वामीके सहयोगी श्री मोहनलालजी मुनिका समागम उन्हें दो महीने रहा था। और नार निवासी भाईश्री रणछोडभाई भी अन्तिम आठ दिन पासमें रहे थे। वे दोनों धारशीभाईके समाधि-मरणके पुरुषार्थकी बारम्बार प्रशंसा करते थे। करीब पचहत्तर वर्षकी आयुमें संवत् १९७५के मार्गशीर्ष मासमें श्री धारशीभाईने खंभातमें समाधिपूर्वक इस क्षणिक शरीरका त्याग किया था।

श्री जूठाभाई उजमशीभाई

संवत् १९४४में श्रीमद् राजचन्द्र 'मोक्षमाला' छपवानेके लिए अहमदाबाद आये थे। इस विषयमें सलाह तथा सहायताके लिए वे अपने एक स्नेहीका अनुरोध पत्र सेठ जेशंगभाई उजमशीभाईके ऊपर लाये थे। तदनुसार सेठ जेशंगभाईने श्रीमद्की सहायता की थी। इस समय श्रीमद्का अहमदाबादमें बराबर रुकना हुआ था।

सेठ जेशंगभाईका कभी-कभी व्यवसायके कारणसे बाहरगाँव जाना होता था इससे अपनी अनुपस्थितिमें उन्होंने अपने छोटेभाई जूठाभाईको श्रीमद्की सेवा-टहलमें रखा था। इस प्रकारसे श्री जूठाभाई श्रीमद्के परिचयमें आये। श्रीमद् अनेक वार जूठाभाईकी दुकान पर जाते तथा दूसरेके मनकी बातें कहकर बतानेका प्रयोग करते। इससे उन्हें तथा

'हे आर्य! द्रव्यानुयोगका फल समस्त भावोंसे विराम पाने रूप संयम है। इस पुरुषके उस वचनको तू अपने अन्तःकरणमें किसी दिन भी शिथिल न करना। अधिक क्या? समाधिका रहस्य यही है। समस्त दुःखोंसे मुक्त होनेका अनन्य उपाय यही है।'

इस प्रकार कितने ही पत्र श्रीमद्ने धारशीभाईको लिखे थे। वे 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित हुए हैं।

सं. १९५७की चैत्र सुदी तेरससे लेकर चैत्र वदी चौथ तक श्री धारसीभाई श्रीमद्की अन्तिम बीमारीमें राजकोट श्रीमद्के पास उपस्थित थे।

चैत्र वदी ४की शामको उन्हें मोरबी जाना था, इससे उन्होंने श्रीमद्से आज्ञा माँगी। उस समय श्रीमद्ने बारम्बार कहा—'जल्दी है?'

धारसीभाईने कहा—'दो चार दिनमें वापस आ जाऊँगा।'

अन्तमें श्रीमद्ने कहा—'धारशीभाई! बहुत कहना है। अवसर नहीं है। हमारे समागममें तीन पुरुषोंको स्वरूपकी प्राप्ति हुई है। सोभागभाई, अम्बालाल तथा मुनि श्री लल्लुजी।'

दूसरे दिन श्रीमद्के देहावसानके समाचारको तारसे जानकर उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उन्हें श्रीमद्का वियोग विशेष रूपसे वेदनमें आया था।

बादमें धर्मजिज्ञासाकी वृद्धि होनेपर वे संवत् १९६१में धंधुकामें श्री लल्लुजी स्वामीसे मिले। उन्होंने श्रीमद् द्वारा कही हुई अनेक बातें मुनिको विदित कीं और उनसे

विनयभावपूर्वक मंत्रकी आज्ञा प्राप्त की।

जीवनके अन्तिम वर्षमें श्री धारशीभाई सत्संग करनेके लिए खंभात आकर रहे थे। उस समय श्री लल्लुजी स्वामीके सहयोगी श्री मोहनलालजी मुनिका समागम उन्हें दो महीने रहा था। और नार निवासी भाईश्री रणछोडभाई भी अन्तिम आठ दिन पासमें रहे थे। वे दोनों धारशीभाईके समाधि-मरणके पुरुषार्थकी बारम्बार प्रशंसा करते थे। करीब पचहत्तर वर्षकी आयुमें संवत् १९७५के मार्गशीर्ष मासमें श्री धारशीभाईने खंभातमें समाधिपूर्वक इस क्षणिक शरीरका त्याग किया था।

२
श्री जूठाभाई उजमशीभाई

संवत् १९४४में श्रीमद् राजचन्द्र 'मोक्षमाला' छपवानेके लिए अहमदावाद आये थे। इस विषयमें सलाह तथा सहायताके लिए वे अपने एक स्नेहीका अनुरोध पत्र सेठ जेशंगभाई उजमशीभाईके ऊपर लाये थे। तदनुसार सेठ जेशंगभाईने श्रीमद्की सहायता की थी। इस समय श्रीमद्का अहमदाबादमें बराबर रुकना हुआ था।

सेठ जेशंगभाईका कभी-कभी व्यवसायके कारणसे बाहरगाँव जाना होता था इससे अपनी अनुपस्थितिमें उन्होंने अपने छोटेभाई जूठाभाईको श्रीमद्की सेवा-टहलमें रखा था।

इस प्रकारसे श्री जूठाभाई श्रीमद्के परिचयमें आये। श्रीमद् अनेक वार जूठाभाईकी दुकान पर जाते तथा दूसरेके मनकी बातें कहकर बतानेका प्रयोग करते। इससे उन्हें तथा

दूसरे उपस्थित मनुष्योंको बहुत आश्चर्य होता। श्रीमद्‌जी बडे भारी विद्वान् हैं, ऐसा जूठाभाईको लगता। परन्तु उस समय जूठाभाईको आत्म-कल्याणकी भूख नहीं लगी थी, इससे उन्हें श्रीमद्‌की यथार्थ पहचान न हो सकी।

इसी अरसेमें सेठ दलपतभाई भगुभाईके बंडेमें श्रीमद्‌ने अवधानके प्रयोग करके बताये थे। यह देखकर जूठाभाई श्रीमद्‌की ओर अधिक आकर्षित हुए और श्रीमद्‌की सेवा-टहलमें वे रहने लगे। इस बीचमें धीरे धीरे जैसे जैसे परिचय बढ़ता गया वैसे वैसे श्रीमद्‌की सच्ची महत्ता उनकी समझमें आती गई और पूर्वके संस्कारोंके बलसे आगे जाने पर वे श्रीमद्‌के समागमसे सच्ची आध्यात्मिक जागृति प्राप्त कर सके।

एक समय श्रीमद्, जूठाभाईके साथ सेठ दलपतभाईके पुस्तक भंडारको देखने गये थे। इस बारेमें जूठाभाईने सेठ जेशंगभाईसे बात की थी कि श्रीमद् पुस्तकोंके पन्ने पलटते जाते और उन पुस्तकोंका रहस्य समझ जाते थे।

ववाणिया जाकर सं. १९४५में कार्तिक सुदी पूर्णिमाके आसपास श्रीमद् अहमदाबाद फिरसे आये थे। अनेक जिज्ञासु उनके साथ वार्तालाप करने आते। उस समय साध्वी श्री दिवालीबाई भी वहाँ थीं; उनके साथ जूठाभाई और उनके काका कर्मचन्द्रके समक्ष ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हुआ करते थे।

जूठाभाईके अत्यन्त परिचयमें आनेके बाद श्रीमद् जब अहमदाबाद आते तब उनके यहाँ ही उतरते थे।

जूठाभाई मोरबीमें श्रीमद्के साथ डेढ़ दो मास रहे थे। एक बार श्रीमद्के साथ भरूच भी गये थे। धर्मके कारण परस्पर पत्रव्यवहार भी होता था। जूठाभाईकी शरीर-प्रकृति उस समयमें बीमारीके कारण अत्यन्त शिथिल रहती; और वैराग्यवृत्ति वर्धमान होती जाती थी।

खंभातसे एक बार भाई अम्बालाल लालचन्द और एक दो भाई किसी विवाहके अवसर पर अहमदाबाद आये थे। वे समवयस्क होनेसे जूठाभाईके यहाँ आते-जाते रहते। वरयात्रा (बरात) निकलनेवाली थी उस समय अम्बालाल आदि जूठाभाईको बरातमें बुलानेके लिए आये। उन्होंने कहा: 'चलो जूठाभाई, बरातमें चलें।' उसे सुनकर, युवावस्था होने पर भी स्वाभाविक वैराग्यवान् जूठाभाईको विशेष आनन्द न आया। इन लोगोंको श्रीमद्के विषयमें कुछ बात करनेकी उनके अन्दरसे एक लहर उठी, परन्तु मनको रोककर जूठाभाई इतना ही बोले: 'कहाँ प्रतिबन्ध करूँ?'

यह सुनकर उन भाइयोंने कहा: 'आप क्या कहते हैं? हम लोग नहीं समझे!'

जूठाभाईके वैराग्ययुक्त व्यवहारकी छाप उन भाइयोंके ऊपर पडी, इससे वे लोग उनके पास, उनकी बात सुननेके लिए बैठे और वरयात्रामें नहीं गये।

इससे जूठाभाईने श्रीमद् सम्बन्धी गुणोंका वर्णन किया और अपने ऊपर आये हुए श्रीमद्के पत्रोंको इन भाइयोंको पढ़ाया। उन भाइयोंने वहींकी वहीं उन पत्रोंकी प्रतिलिपि कर ली।

दूसरे उपस्थित मनुष्योंको बहुत आश्चर्य होता। श्रीमद्जी बडे भारी विद्वान् हैं, ऐसा जूठाभाईको लगता। परन्तु उस समय जूठाभाईको आत्म-कल्याणकी भूख नहीं लगी थी, इससे उन्हें श्रीमद्की यथार्थ पहचान न हो सकी।

इसी अरसेमें सेठ दलपतभाई भगुभाईके बंडेमें श्रीमद्ने अवधानके प्रयोग करके बताये थे। यह देखकर जूठाभाई श्रीमद्की ओर अधिक आकर्षित हुए और श्रीमद्की सेवा-टहलमें वे रहने लगे। इस बीचमें धीरे धीरे जैसे जैसे परिचय बढ़ता गया वैसे वैसे श्रीमद्की सच्ची महत्ता उनकी समझमें आती गई और पूर्वके संस्कारोंके बलसे आगे जाने पर वे श्रीमद्के समागमसे सच्ची आध्यात्मिक जागृति प्राप्त कर सके।

एक समय श्रीमद्, जूठाभाईके साथ सेठ दलपतभाईके पुस्तक भंडारको देखने गये थे। इस बारेमें जूठाभाईने सेठ जेशंगभाईसे बात की थी कि श्रीमद् पुस्तकोंके पन्ने पलटते जाते और उन पुस्तकोंका रहस्य समझ जाते थे।

ववाणिया जाकर सं. १९४५में कार्तिक सुदी पूर्णिमाके आसपास श्रीमद् अहमदाबाद फिरसे आये थे। अनेक जिज्ञासु उनके साथ वार्तालाप करने आते। उस समय साध्वी श्री दिवालीबाई भी वहाँ थीं; उनके साथ जूठाभाई और उनके काका कर्मचन्द्रके समक्ष ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हुआ करते थे।

जूठाभाईके अत्यन्त परिचयमें आनेके बाद श्रीमद् जब अहमदाबाद आते तब उनके यहाँ ही उतरते थे।

जूठाभाई मोरबीमें श्रीमद्के साथ डेढ़ दो मास रहे थे। एक बार श्रीमद्के साथ भरूच भी गये थे। धर्मके कारण परस्पर पत्रव्यवहार भी होता था। जूठाभाईकी शरीर-प्रकृति उस समयमें बीमारीके कारण अत्यन्त शिथिल रहती; और वैराग्यवृत्ति वर्धमान होती जाती थी।

खंभातसे एक बार भाई अम्बालाल लालचन्द और एक दो भाई किसी विवाहके अवसर पर अहमदाबाद आये थे। वे समवयस्क होनेसे जूठाभाईके यहाँ आते-जाते रहते। वरयात्रा (बरात) निकलनेवाली थी उस समय अम्बालाल आदि जूठाभाईको बरातमें बुलानेके लिए आये। उन्होंने कहा: 'चलो जूठाभाई, बरातमें चलें।' उसे सुनकर, युवावस्था होने पर भी स्वाभाविक वैराग्यवान् जूठाभाईको विशेष आनन्द न आया। इन लोगोंको श्रीमद्के विषयमें कुछ बात करनेकी उनके अन्दरसे एक लहर उठी, परन्तु मनको रोककर जूठाभाई इतना ही बोले: 'कहाँ प्रतिबन्ध करूँ?'

यह सुनकर उन भाइयोंने कहा: 'आप क्या कहते हैं? हम लोग नहीं समझे!'

जूठाभाईके वैराग्ययुक्त व्यवहारकी छाप उन भाइयोंके ऊपर पडी, इससे वे लोग उनके पास, उनकी बात सुननेके लिए बैठे और वरयात्रामें नहीं गये।

इससे जूठाभाईने श्रीमद् सम्बन्धी गुणोंका वर्णन किया और अपने ऊपर आये हुए श्रीमद्के पत्रोंको इन भाइयोंको पढ़ाया। उन भाइयोंने वहींकी वहीं उन पत्रोंकी प्रतिलिपि कर ली।

दूसरे उपस्थित मनुष्योंको बहुत आश्चर्य होता। श्रीमद्‌जी बडे भारी विद्वान् हैं, ऐसा जूठाभाईको लगता। परन्तु उस समय जूठाभाईको आत्म-कल्याणकी भूख नहीं लगी थी, इससे उन्हें श्रीमद्‌की यथार्थ पहचान न हो सकी।

इसी अरसेमें सेठ दलपतभाई भगुभाईके बंडेमें श्रीमद्‌ने अवधानके प्रयोग करके बताये थे। यह देखकर जूठाभाई श्रीमद्‌की ओर अधिक आकर्षित हुए और श्रीमद्‌की सेवा-टहलमें वे रहने लगे। इस बीचमें धीरे धीरे जैसे जैसे परिचय बढ़ता गया वैसे वैसे श्रीमद्‌की सच्ची महत्ता उनकी समझमें आती गई और पूर्वके संस्कारोंके बलसे आगे जाने पर वे श्रीमद्‌के समागमसे सच्ची आध्यात्मिक जागृति प्राप्त कर सके।

एक समय श्रीमद्, जूठाभाईके साथ सेठ दलपतभाईके पुस्तक भंडारको देखने गये थे। इस बारेमें जूठाभाईने सेठ जेशंगभाईसे बात की थी कि श्रीमद् पुस्तकोंके पन्ने पलटते जाते और उन पुस्तकोंका रहस्य समझ जाते थे।

ववाणिया जाकर सं. १९४५में कार्तिक सुदी पूर्णिमाके आसपास श्रीमद् अहमदाबाद फिरसे आये थे। अनेक जिज्ञासु उनके साथ वार्तालाप करने आते। उस समय साध्वी श्री दिवालीबाई भी वहाँ थीं; उनके साथ जूठाभाई और उनके काका कर्मचन्द्रके समक्ष ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हुआ करते थे।

जूठाभाईके अत्यन्त परिचयमें आनेके बाद श्रीमद् जब अहमदाबाद आते तब उनके यहाँ ही उतरते थे।

सं. १९४६की आषाढ़ सुदी ९के दिन केवल तेईस वर्षकी अवस्थामें श्री जूठाभाई कालधर्मको प्राप्त हुए।

श्रीमद्ने सं. १९४६के आषाढ़ सुदी दसमके पत्रमें लिखा है:

'उपाधिके कारण लिंगदेहजन्य-ज्ञानमें यत्किंचित् फेरफार मालूम हुआ। पवित्रात्मा जूठाभाई उपर्युक्त तिथिमें दिनको स्वर्गवासी होनेका आज समाचार मिला।'

श्रीमद्ने आश्वासनके पत्रमें श्री जूठाभाईकी अन्तरंग दशाका जो वर्णन किया है, वह सभीके मनन करने योग्य है।

'इस पावन आत्माके गुणोंका हम कैसे स्मरण करें? जहाँ विस्मृतिको अवकाश ही नहीं, वहाँ स्मृति हुई, कैसे माना जाय? इसका लौकिक नाम ही देहधारी रूपसे सत्य था। यह आत्मदशारूपसे सच्चा वैराग्य था।

'जिसकी मिथ्यावासना बहुत क्षीण हो गई थी, जो वीतरागका परमरागी था, संसारसे परम जुगुप्सित था, जिसके हृदयमें सदा भक्तिकी प्रधानता थी, जिसमें सम्यक् भावसे वेदनीय कर्म वेदनेकी अदभुत समता थी, जिसके अन्तरात्मामें मोहनीय कर्मका बल बहुत कम हो गया था और जिसमें उत्तम प्रकारसे मुमुक्षुता सुशोभित हो उठी थी, ऐसे उस जूठाभाईका पवित्रात्मा आज जगतके इस भागका त्याग करके चला गया, इन सहचारियोंसे मुक्त हुआ। धर्मके पूर्णाह्लादमें आयु अचानक पूर्ण की।

'अरेरे! ऐसे धर्मात्माका इस कालमें अल्प जीवन

विवाहके निमित्तसे आये हुए इन भाइयोंको जूठाभाईके सत्समागमसे धर्मकी लगन लगी। इन भाइयोंमें भी श्रीमद्के दर्शन तथा समागम करनेकी तीव्र अभिलाषा जागृत हुई और इन लोगोंने श्रीमद्को खंभात पधारनेके लिए विनती पत्र भी लिख डाला। अम्बालालभाई आदि बादमें श्रीमद्के निकट अनुयायी बने, यह बात आगे आयेगी।

जूठाभाईका शरीर सं. १९४५–४६ इन अन्तिम दो वर्षोंमें रोगग्रस्त रहा था। उस अवसर पर श्रीमद् द्वारा जूठाभाईको लिखे गये धर्मध्यान प्रेरक अनेक पत्र उन्हें बहुत लाभ-दायक और जीवनप्रेरक सिद्ध हुए थे। परिणाममें, 'मोक्ष मार्ग दे ऐसा सम्यकत्व' उनके अन्तरात्मामें प्रकाशित हुआ था।

जूठाभाईके अवसान सम्बन्धी सं. १९४६के वैशाख सुदी तीजके रोज श्रीमद्जी लिखते हैं:

'इस उपाधिमें पड़नेके बाद यदि मेरा लिंगदेहजन्य-ज्ञानदर्शन वैसा ही रहा हो, यथार्थ ही रहा हो तो जूठाभाई आषाढ़ सुदी ९ गुरुवारकी रात्रिमें समाधिशीत (स्थित) हो इस क्षणिक जीवनका त्याग कर चले जायेंगे, ऐसा यह ज्ञान सूचित करता है।'

अवसान सम्बन्धी श्री जूठाभाईसे कहनेके लिए भाई छगनलाल बेचरदासको श्रीमद्ने प्रथमसे लिखा था। श्री जूठाभाईकी वैराग्य दशा और उदासीनता प्रगट होने पर भी उनके कुटुम्बीजन इन्हें सम्यक्ज्ञान हुआ है, यह नहीं जान सके थे।

सं. १९४६की आषाढ़ सुदी ९के दिन केवल तेईस वर्षकी अवस्थामें श्री जूठाभाई कालधर्मको प्राप्त हुए।

श्रीमद्‌ने सं. १९४६के आषाढ़ सुदी दसमके पत्रमें लिखा है:

'उपाधिके कारण लिंगदेहजन्य-ज्ञानमें यत्किंचित् फेरफार मालूम हुआ। पवित्रात्मा जूठाभाई उपर्युक्त तिथिमें दिनको स्वर्गवासी होनेका आज समाचार मिला।'

श्रीमद्‌ने आश्वासनके पत्रमें श्री जूठाभाईकी अन्तरंग दशाका जो वर्णन किया है, वह सभीके मनन करने योग्य है।

'इस पावन आत्माके गुणोंका हम कैसे स्मरण करें? जहाँ विस्मृतिको अवकाश ही नहीं, वहाँ स्मृति हुई, कैसे माना जाय? इसका लौकिक नाम ही देहधारी रूपसे सत्य था। यह आत्मदशारूपसे सच्चा वैराग्य था।

'जिसकी मिथ्यावासना बहुत क्षीण हो गई थी, जो वीतरागका परमरागी था, संसारसे परम जुगुप्सित था, जिसके हृदयमें सदा भक्तिकी प्रधानता थी, जिसमें सम्यक् भावसे वेदनीय कर्म वेदनेकी अदभुत समता थी, जिसके अन्तरात्मामें मोहनीय कर्मका बल बहुत कम हो गया था और जिसमें उत्तम प्रकारसे मुमुक्षुता सुशोभित हो उठी थी, ऐसे उस जूठाभाईका पवित्रात्मा आज जगतके इस भागका त्याग करके चला गया, इन सहचारियोंसे मुक्त हुआ। धर्मके पूर्णाह्लादमें आयु अचानक पूर्ण की।

'अरेरे! ऐसे धर्मात्माका इस कालमें अल्प जीवन

हो, यह कुछ विशेष आश्चर्यकारक नहीं है। इस कालमें ऐसे पवित्रात्माकी विशेष स्थिति कहाँसे हो? अन्य सहवासियोंका ऐसा भाग्य कहाँसे हो कि ऐसे पवित्रात्माके दर्शनका लाभ उन्हें विशेष मिले? जिसके अन्तरात्मामें मोक्षमार्गको देनेवाला सम्यकत्व प्रकाशित हुआ था ऐसे पवित्रात्मा जूठाभाईको नमस्कार हो! नमस्कार हो!'

'चि. *सत्यपरायणके स्वर्गवास—सूचक शब्द भयंकर हैं। परन्तु ऐसे रत्नोंका दीर्घ जीवन कालको नहीं पुसाता। धर्मेच्छुकका ऐसा अनन्य सहायक रहने देना मायादेवीको योग्य न लगा। कालकी प्रबल दृष्टिने इस आत्माके इस जीवनका राहस्यिक विश्राम खींच लिया। यद्यपि ज्ञान-दृष्टिसे शोकका अवकाश नहीं है, तो भी उसके उत्तम गुण वैसा करनेकी प्रेरणा करते हैं। बहुत स्मरण होता है, अधिक नहीं लिख सकता।

'यदि हो सका तो 'सत्यपरायण'के स्मरणार्थ एक शिक्षा ग्रन्थ लिखनेका विचार है। धर्ममें अनुरक्त रहो, यही पुनः पुनः अनुरोध है। यदि हम सत्यपरायणके मार्गका सेवन करेंगे तो जरूर सुखी होंगे, पार पायेंगे, ऐसा मैं मानता हूँ।'

* श्रीमद्जी जूठाभाईको अनेक बार इस नामसे बुलाया करते थे।

३

सायलावाले श्री सौभागभाई

सौराष्ट्रमें 'भगतका गाँव'के तौर पर प्रसिद्ध सायला गाँवमें श्री लल्लुभाई नामके एक नामांकित सेठ रहते थे। प्रारब्धवशात् उनकी धनसम्पत्ति चली गई इससे उन्होंने विचार किया कि, 'मारवाड़के साधु मंत्रविद्या आदिमें कुशल कहे जाते हैं। उनमेंसे किसीकी कृपासे लक्ष्मी पुनःप्राप्त हो, वैसा प्रयत्न करना।' यह विचार कर वे मारवाड़ गये और किसी प्रसिद्ध साधुके परिचयमें रहकर उन्हें प्रसन्न किया। एकान्तमें अपनी स्थिति प्रगट कर, वह किसी प्रकारसे सुधरे वैसा उपाय बतानेकी प्रार्थना की।

परन्तु उस अध्यात्मप्रेमी साधुने सेठ लल्लुभाईको खूब उपालंभ दिया और कहा, 'तुम ऐसे विचक्षण होने पर भी त्यागीके पाससे आत्माकी बातकी प्राप्तिको छोड़कर मायाकी बात करते हो, यह तुमको उचित नहीं है।'

उस साधुके अभिप्रायको समझ जानेसे लल्लुभाईने कहा, 'बापजी, मेरी भूल हुई! मेरे आत्माका कल्याण हो वैसा मुझे कुछ बताइये।'

उनके ऊपर कृपा करके उस साधुने 'बीजज्ञान' बताया और साथमें यह भी कहा कि, तुममें योग्यता नहीं है, परन्तु यदि तुम किसी योग्य पुरुषको दोगे तो उसे ज्ञान-प्राप्ति होगी।'

यह बीजज्ञान सेठने इस तरह अन्य किसी योग्य पुरुषको देनेका कहकर अपने पुत्र सौभागभाईको बताया था।

हो, यह कुछ विशेष आश्चर्यकारक नहीं है। इस कालमें ऐसे पवित्रात्माकी विशेष स्थिति कहाँसे हो? अन्य सह-वासियोंका ऐसा भाग्य कहाँसे हो कि ऐसे पवित्रात्माके दर्शनका लाभ उन्हें विशेष मिले? जिसके अन्तरात्मामें मोक्षमार्गको देनेवाला सम्यकत्व प्रकाशित हुआ था ऐसे पवित्रात्मा जूठाभाईको नमस्कार हो! नमस्कार हो!'

'चि. *सत्यपरायणके स्वर्गवास–सूचक शब्द भयंकर हैं। परन्तु ऐसे रत्नोंका दीर्घ जीवन कालको नहीं पुसाता। धर्मेच्छुकका ऐसा अनन्य सहायक रहने देना मायादेवीको योग्य न लगा। कालकी प्रबल दृष्टिने इस आत्माके इस जीवनका राहस्यिक विश्राम खींच लिया। यद्यपि ज्ञान-दृष्टिसे शोकका अवकाश नहीं है, तो भी उसके उत्तम गुण वैसा करनेकी प्रेरणा करते हैं। बहुत स्मरण होता है, अधिक नहीं लिख सकता।

'यदि हो सका तो 'सत्यपरायण'के स्मरणार्थ एक शिक्षा ग्रन्थ लिखनेका विचार है। धर्ममें अनुरक्त रहो, यही पुनः पुनः अनुरोध है। यदि हम सत्यपरायणके मार्गका सेवन करेंगे तो जरूर सुखी होंगे, पार पायेंगे, ऐसा मैं मानता हूँ।'

* श्रीमद्‌जी जूठाभाईको अनेक वार इस नामसे बुलाया करते थे।

३

सायलावाले श्री सौभागभाई

सौराष्ट्रमें 'भगतका गाँव'के तौर पर प्रसिद्ध सायला गाँवमें श्री लल्लुभाई नामके एक नामांकित सेठ रहते थे। प्रारब्धवशात् उनकी धनसम्पत्ति चली गई इससे उन्होंने विचार किया कि, 'मारवाड़के साधु मंत्रविद्या आदिमें कुशल कहे जाते हैं। उनमेंसे किसीकी कृपासे लक्ष्मी पुनःप्राप्त हो, वैसा प्रयत्न करना।' यह विचार कर वे मारवाड़ गये और किसी प्रसिद्ध साधुके परिचयमें रहकर उन्हें प्रसन्न किया। एकान्तमें अपनी स्थिति प्रगट कर, वह किसी प्रकारसे सुधरे वैसा उपाय बतानेकी प्रार्थना की।

परन्तु उस अध्यात्मप्रेमी साधुने सेठ लल्लुभाईको खूब उपालंभ दिया और कहा, 'तुम ऐसे विचक्षण होने पर भी त्यागीके पाससे आत्माकी बातकी प्राप्तिको छोड़कर मायाकी बात करते हो, यह तुमको उचित नहीं है।'

उस साधुके अभिप्रायको समझ जानेसे लल्लुभाईने कहा, 'बापजी, मेरी भूल हुई! मेरे आत्माका कल्याण हो वैसा मुझे कुछ बताइये।'

उनके ऊपर कृपा करके उस साधुने 'बीजज्ञान' बताया और साथमें यह भी कहा कि, तुममें योग्यता नहीं है, परन्तु यदि तुम किसी योग्य पुरुषको दोगे तो उसे ज्ञान-प्राप्ति होगी।'

यह बीजज्ञान सेठने इस तरह अन्य किसी योग्य पुरुषको देनेका कहकर अपने पुत्र सौभागभाईको बताया था।

एक समय किसी काम प्रसंगसे सौभागभाईका मोरबी जाना हुआ, उस समय श्रीमद् राजचन्द्र मोरबीमें थे। इससे मोरबी जाते समय सौभागभाईने अपने पिता लल्लुभाईसे कहा, 'कवि रायचन्दभाई बहुत योग्य आदमी हैं, ऐसा समस्त काठियावाड़में कहा जाता है। वे इस समय मोरबीमें हैं और मुझे मोरबी जाना है, यदि आप कहें तो मैं उन्हें 'बीजज्ञान' बताऊँ।'

लल्लुभाईने हाँ कहा, इससे वे मोरबी गये तब श्रीमद्जीसे मिलने गये।

उस समय श्रीमद् दुकान पर बैठे हुए थे। सौभागभाईके आनेसे पहले उन्होंने अपने निर्मल ज्ञानसे जान लिया कि सौभागभाई नामका कोई मनुष्य 'बीजज्ञान'की बात बतानेके लिए आ रहा है। इससे श्रीमद्ने कागजके एक छोटेसे टुकडे पर, सौभागभाई जो कहनेके लिए आ रहे थे, वह सब लिख डाला और कागजके टुकडेको गद्दी समीपके गल्लेमें रख दिया।

सौभागभाई दुकानके पास आये, इससे श्रीमद्ने इनका आदर करते हुए कहा, 'आइये सौभागभाई।'

सौभागभाईको आश्चर्य लगा कि श्रीमद् मुझे नहीं पहचानते; फिर मेरा नाम लेकर मुझे कैसे बुलाया? बादमें सौभागभाई कुछ पूछें इससे पहले श्रीमद्ने कहा: 'इस गल्लेमें एक कागजका टुकड़ा है, उसे निकालकर पढ़िये।'

सौभागभाईने गल्लेमेंसे कागजका टुकड़ा निकालकर पढ़ा तो वे आश्चर्यचकित हो गये। उनको हुआ कि,

'यह कोई अलौकिक ज्ञान पाये हुए महापुरुष हैं। मुझे इन्हें क्या बताना हो? उल्टा मुझे इनके पाससे विशेष ज्ञान प्राप्त करना रहा।' परन्तु उन्होंने श्रीमद्के ज्ञानकी विशेष कसौटी करनेके लिए पूछा, 'सायलामें हमारे घरका द्वार कौन-सी दिशामें है?'

श्रीमद्ने अन्तरंग ज्ञानसे जानकर यथार्थ उत्तर दिया, इससे सौभागभाईने सानन्दाश्चर्य होकर कहा: 'आपका ज्ञान यथार्थमें सत्य है।' बादमें उन्होंने श्रीमद्को भक्तिभावपूर्वक तीन नमस्कार किये।

उस समय श्रीमद् भी कोई अपूर्व समाधिमें लीन हो गये। इस प्रकार प्रथम समागममें उन दोनोंके बीचमें अन्तःकरणकी एकता प्रगटी थी। 'तरणा ओथे डुंगर रे, डुंगर कोई देखे नहीं।'— (तृणकी ओटमें पर्वत, पर्वतको कोई नहीं देखता।) इस पदका भावार्थ समझाकर श्रीमद्ने तृष्णाको रोकनेका उपदेश दिया था।

इस प्रथम मिलाप बाद सौभागभाई सायला आ गये। इसके बाद थोडे समयमें सेठ लल्लुभाईका स्वर्गवास हो गया, इससे कुटुम्बके निर्वाहकी चिन्ता सौभागभाईके सिर आ पडी।

उस समय श्रीमद्ने ववाणियासे '**क्षणमपि सज्जन संगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका।**' अर्थात् क्षणमात्रकी सज्जनपुरुषोंकी संगति भव(संसार)रूपी समुद्रके पार होनेमें नौका समान होती है—यह श्लोकवाला प्रथम पत्र सौभागभाई पर लिखा है। पश्चात् 'परमविवेकसम्पन्न

श्री सौभागभाई' इस प्रकारके सम्बोधनसे अत्यन्त लम्बा बोधपत्र दूसरे अठवाडियेमें लिखा है। इस प्रकार पहलेसे ही सौभागभाई पर पत्रकी परंपरा एकसी प्रारंभ हुई थी।

सौभागभाई परके श्रीमद्के पत्र निःसंकोच, विस्तारसे और विशेष संख्यामें लिखे हुए हैं। इनमें श्रीमद्ने अपनी व्यावहारिक उपाधि जता करके अनुभवमें आनेवाली अन्तरंग-दशाका सुन्दर वर्णन किया है। इसके सिवाय सौभागभाईने भी उपाधिसेदूर रहकर शास्त्रोंके वाचन–विचार सम्बन्धी तथा आत्मासम्बन्धी अनेक प्रश्न उपस्थित करके उनके समाधान, विचारका भाव दिखाया है।

कच्छके समीप अंजारमें सौभागभाईकी दुकान थी। सं. १९४६में दूसरे भाद्रपदके कृष्णपक्षमें अंजार जाते समय सौभागभाई श्रीमद्के साथ मोरबीमें चार-पाँच दिन रहे थे। अंजारसे लौटते हुए ववाणिया भी तीन दिन रहकर आश्विन वदीमें श्रीमद्को अपने साथ सायला ले गये थे। श्रीमद् वहाँ आठ दिन ठहरकर खंभात चले गये थे। सायलामें श्री डुंगरशी गोसलिया, लहराभाई आदिका श्रीमद्से प्रथम समागम हुआ था।

इस प्रकार श्रीमद् और सौभागभाईमें गाढ़ सम्बन्ध होता गया। सौभागभाई श्रीमद्से चवालीस वर्ष बडे थे। अर्थात् जब श्रीमद्की वय तेईस वर्षकी थी तब सौभागभाई सडसठ वर्षकी आयुवाले थे। सौभागभाईके परम मित्र डुंगरशीभाई गोसलिया थे। वे सौभागभाईसे भी बडे थे। डुंगरशीभाई बडे भारी बुद्धिमान और तर्कवादी थे। उन्होंने योग साध-

कर चमत्कार सिद्ध किये थे। इस कारण सरल और भोले स्वभाववाले सौभागभाईकी उनके प्रति ज्ञानी जैसी श्रद्धा हो गई थी। परन्तु श्रीमद्के साथ उनका जैसे-जैसे पत्रव्यवहार बढ़ता गया और पूज्य–बुद्धि बढ़ती गई, वैसे-वैसे इनमें यथार्थ ज्ञानका आविर्भाव होता गया, और श्रीमद्के प्रति पतिव्रता जितनी उनकी परम भक्ति होनेपर गोसलियाके प्रति जो मान्यता थी, दूर हो गई। सौभागभाई गोसलियाको भी बारम्बार कृपालुदेव श्रीमद्की शरण स्वीकार करनेके लिए कहते। उस समय डुंगरशीभाई अनेक तर्क करते, परन्तु सौभागभाई अपने ध्येयसे चलित न होते। ऐसा होने पर भी वे दोनों साथमें मिलकर ही श्रीमद्के पत्रोंके विषयमें विचार करते और तत्त्वचर्चा भी करते थे।

सं. १९४७के पर्युषण पर श्रीमद् बम्बईसे रालज आये, उस समय सौभागभाई तथा डुंगरशीभाई गोसलिया श्रीमद्के साथमें रहे थे। डुंगरशीभाई रालज पन्द्रह दिन रहकर वापस चले गये। सौभागभाई, श्रीमद् जिस समय ववाणिया गये उस समय साथमें निकलकर सायला गये।

इसी प्रकार सं. १९५१में खंभात और सं. १९५२में जिस समय श्रीमद् काविठा आये उस समय भी ये दोनों वृद्ध पुरुष साथमें ही थे।

सौभागभाईको सत्संगकी तीव्र अभिलाषा थी, उसमें आर्थिक कठिनाई बाधा डालती, उसे दूर करनेके लिए वे श्रीमद्को बारम्बार लिखा करते थे। सं. १९४९–५०में

श्रीमद्ने अनेक पत्रों द्वारा आर्थिक लाचारी नहीं करनेकी बात समझाकर उनको आत्मार्थ (आत्म-कल्याण) में दृढ़ किया था। हमें उपाधिसे छूटनेके लिए क्या करना चाहिए यों श्रीमद्जी पत्रों द्वारा पुछाते हैं, उसके जवाबमें शीघ्रतासे संसारको त्यागकर मार्गप्रभावना करनेके लिए वे श्रीमद्को बारम्बार लिखते। उसके स्पष्टीकरण-रूपमें श्रीमद्ने अपनी प्रारब्धस्थिति, मार्गप्रभावनाकी उत्कंठा और त्यागकी तत्परता दिखानेवाले पत्र लिखे हैं।

सं. १९५३के कार्तिक मासमें श्रीमद् नडियादसे ववाणिया आये। वहाँ माताजीको बुखार आता था इत्यादि कारणसे गर्मीकी ऋतुतक वहाँ ही रहे। उसी बीच सौभागभाईको भी बुखार लागू हुआ। उस विषयमें कार्तिक शुक्ल दसमके पत्रमें श्रीमद्ने इन्हें लिखा था और 'आत्मसिद्धिशास्त्र'का विशेष विचार करनेके लिए सूचित किया था।

बादमें सं. १९५३के वैशाख मासमें दस दिन सायला और दस दिन ईडर श्रीमद्ने सौभागभाईको समागमका लाभ देकर उनके आत्माको उत्कृष्ट पुरुषार्थमें प्रेरित किया था।

अन्तिम समय जब श्रीमद् सायला आये थे, उस समय उनको छोड़नेके लिए जाते हुए मार्गमें नदी आई। सूर्योदय होनेको आया था। उस समय सौभागभाईने श्रीमद्से कहा: 'उगते सूर्यकी साक्षीसे, नदीकी साक्षीसे और सत्पुरुषकी साक्षीसे इस सौभाग्यको आपके सिवाय कोई दूसरी रटन न हो।'

एक पत्रमें श्री सौभागभाई सं. १९५३ जेष्ठ शुक्ल चौदस रविवारको, श्रीमद्‌को, लिखते हैं :

'यह अन्तिम पत्र लिखकर विदित करता हूँ....अब आप इस पामर सेवकके ऊपर सब प्रकारसे कृपादृष्टि रखना....। देह और आत्मा जुदे हैं। देह जड़ है, आत्मा चैतन्यस्वरूप है। चैतन्यका वह अंश प्रत्यक्ष भिन्न समझमें नहीं आता था। परन्तु आठ दिन हुए, आपकी कृपासे अनुभवगोचर होकर स्पष्ट भिन्न दिखाई देता है। और रात दिन यह चैतन्य और यह देह भिन्न हैं ऐसा आपकी कृपादृष्टिसे स्वाभाविक हो गया है; यह आपको सहज विदित करनेके लिए लिखा है।

'बिना पढ़े, बिना शास्त्र वाँचे अल्प समयमें आपके बोधसे अर्थ आदिका बहुत खुलासा हो गया है, जो खुलासा पच्चीस वर्षमें भी नहीं हो सकता था वह थोडे समयमें आपकी कृपासे हुआ है।'

श्रीमद्‌ने अन्तमें तीन पत्र जो श्री सौभागभाई पर लिखे हैं वे पत्र समाधिमरणकी इच्छावाले प्रत्येक मुमुक्षुको विचारने योग्य हैं। ये पत्र 'श्रीमद् राजचन्द्र'में प्रकाशित हुए हैं।

श्री सौभागभाईका सं. १९५३की जेष्ठ वदी दशमको देहत्याग हुआ था। श्री सौभागभाईके विषयमें श्रीमद्‌जी लिखते हैं :

जीवको देहका सम्बन्ध इसी प्रकारसे है। फिर भी अनादिकालसे उस देहका त्याग करते हुए जीव दुःखी होता

श्रीमद्ने अनेक पत्रों द्वारा आर्थिक लाचारी नहीं करनेकी बात समझाकर उनको आत्मार्थ (आत्म-कल्याण) में दृढ़ किया था। हमें उपाधिसे छूटनेके लिए क्या करना चाहिए यों श्रीमद्जी पत्रों द्वारा पुछाते हैं, उसके जवाबमें शीघ्रतासे संसारको त्यागकर मार्गप्रभावना करनेके लिए वे श्रीमद्को बारम्बार लिखते। उसके स्पष्टीकरण-रूपमें श्रीमद्ने अपनी प्रारब्धस्थिति, मार्गप्रभावनाकी उत्कंठा और त्यागकी तत्परता दिखानेवाले पत्र लिखे हैं।

सं. १९५३के कार्तिक मासमें श्रीमद् नडियादसे ववाणिया आये। वहाँ माताजीको बुखार आता था इत्यादि कारणसे गर्मीकी ऋतुतक वहाँ ही रहे। उसी बीच सौभागभाईको भी बुखार लागू हुआ। उस विषयमें कार्तिक शुक्ल दसमके पत्रमें श्रीमद्ने इन्हें लिखा था और 'आत्मसिद्धिशास्त्र'का विशेष विचार करनेके लिए सूचित किया था।

बादमें सं. १९५३के वैशाख मासमें दस दिन सायला और दस दिन ईडर श्रीमद्ने सौभागभाईको समागमका लाभ देकर उनके आत्माको उत्कृष्ट पुरुषार्थमें प्रेरित किया था।

अन्तिम समय जब श्रीमद् सायला आये थे, उस समय उनको छोड़नेके लिए जाते हुए मार्गमें नदी आई। सूर्योदय होनेको आया था। उस समय सौभागभाईने श्रीमद्से कहा: 'उगते सूर्यकी साक्षीसे, नदीकी साक्षीसे और सत्पुरुषकी साक्षीसे इस सौभाग्यको आपके सिवाय कोई दूसरी रटन न हो।'

एक पत्रमें श्री सौभागभाई सं. १९५३ जेष्ठ शुक्ल चौदस रविवारको, श्रीमद्को, लिखते हैं:

'यह अन्तिम पत्र लिखकर विदित करता हूँ....अव आप इस पामर सेवकके ऊपर सब प्रकारसे कृपादृष्टि रखना....। देह और आत्मा जुदे हैं। देह जड़ है, आत्मा चैतन्यस्वरूप है। चैतन्यका वह अंश प्रत्यक्ष भिन्न समझमें नहीं आता था। परन्तु आठ दिन हुए, आपकी कृपासे अनुभवगोचर होकर स्पष्ट भिन्न दिखाई देता है। और रात दिन यह चैतन्य और यह देह भिन्न हैं ऐसा आपकी कृपादृष्टिसे स्वाभाविक हो गया है; यह आपको सहज विदित करनेके लिए लिखा है।

'विना पढ़े, विना शास्त्र वाँचे अल्प समयमें आपके बोधसे अर्थ आदिका बहुत खुलासा हो गया है, जो खुलासा पच्चीस वर्षमें भी नहीं हो सकता था वह थोडे समयमें आपकी कृपासे हुआ है।'

श्रीमद्ने अन्तमें तीन पत्र जो श्री सौभागभाई पर लिखे हैं वे पत्र समाधिमरणकी इच्छावाले प्रत्येक मुमुक्षुको विचारने योग्य हैं। ये पत्र 'श्रीमद् राजचन्द्र'में प्रकाशित हुए हैं।

श्री सौभागभाईका सं. १९५३की जेष्ठ वदी दशमको देहत्याग हुआ था। श्री सौभागभाईके विषयमें श्रीमद्जी लिखते हैं:

जीवको देहका सम्बन्ध इसी प्रकारसे है। फिर भी अनादिकालसे उस देहका त्याग करते हुए जीव दुःखी होता

है, और उसमें दृढ़ मोहसे एकत्वके समान प्रवृत्ति करता है। यही जन्ममरणादिरूप संसारका मुख्य बीज है। श्री सौभागभाईने वैसी देहको छोड़ते हुए महान् मुनियोंको दुर्लभ ऐसी निश्चल असंगतासे निज उपयोगमय दशामें रहकर अपूर्व हित किया है, इसमें संशय नहीं है।....

'इस क्षेत्रमें, इस कालमें श्री सौभाग जैसे विरले ही पुरुष मिलते हैं, ऐसा हमको बारम्बार मालूम होता है।....श्री सौभागकी सरलता, परमार्थ सम्बन्धी निश्चय, मुमुक्षुओंके प्रति उपकार आदि गुण बारम्बार विचारने योग्य हैं।'

श्रीमद् उस समय मुनिश्री लल्लुजी महाराजको लिखते हैं:

'हे मुनियो! तुम्हें आर्य सौभागकी अन्तरंगदशा और देहमुक्त समयकी दशाका बारम्बार विचार करना योग्य है।'

श्रीमद्को सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति थी, फिर भी मुमुक्षु जीवोंके सत्संगकी भावना विशेष रहा करती थी। धार्मिक प्रश्नोंकी चर्चामें श्री सौभागभाई यथाशक्ति सहयोग देकर श्रीमद्से बहुत अच्छा सन्तोषकारक स्पष्टीकरण कराते थे। अन्य मुमुक्षुओंकी यदि श्रीमद्से कुछ कहनेकी इच्छा हो तो वयोवृद्ध श्री सौभागभाई द्वारा विनती कराते और दयालु हृदय होनेसे वे सरल भावसे प्रत्येककी बातको उनके सामने उपस्थित करते।

श्री 'आत्मसिद्धिशास्त्र'के लिखनेकी प्रेरणा भी

श्री सौभागभाई द्वारा हुई कि, 'छ पदका पत्र' गद्यमें होनेसे कंठस्थ नहीं होता, जो उस भावार्थका पद्य हो तो सर्व मुमुक्षुओं पर महान उपकार हो।

श्रीमद् अपनी नोट बुकमें उनका उपकार प्रगट करते हुए लिखते हैं:

'हे जिन वीतराग! आपको मैं अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार करता हूँ। आपने इस पामरके ऊपर अनहद उपकार किया।

'हे कुन्दकुन्दादि आचार्यो! आपके वचन भी स्वरूपानुसन्धानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं। उसके लिए मैं आपको अतिशय भक्तिसे नमस्कार करता हूँ।

'हे श्री सौभाग! तुम्हारे सत्समागमके अनुग्रहसे आत्मदशाका स्मरण हुआ, उसके लिए तुम्हें नमस्कार हो।'

४

महात्मा गांधीजी

महात्मा गांधीजीके जीवन पर श्रीमद् राजचन्द्रका प्रवल प्रभाव पड़ा है। गांधीजी इस सम्वन्धमें लिखते हैं:

'मैंने अनेकोंके जीवनमेंसे बहुत कुछ लिया है। परन्तु सबसे अधिक यदि किसीके जीवनमेंसे मैंने ग्रहण किया हो तो वह कविश्रीके जीवनमेंसे है।'

पुनः वे अन्य स्थल पर लिखते हैं: 'मेरे ऊपर तीन पुरुषोंकी गहरी छाप पडी है—टॉल्स्टॉय, रस्किन और रायचन्दभाई। टॉल्स्टॉयकी, उनकी पुस्तक द्वारा और उनके साथके थोडेसे पत्रव्यवहारसे; रस्किनकी उनकी

एक ही पुस्तक 'अनटु धिस लास्ट' से, जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रखा है और रायचन्दभाईकी उनके साथके गाढ़ परिचयसे।'

इतना ही नहीं, परन्तु गांधीजी तो यहाँ तक कहते हैं कि: 'मेरे जीवनमें श्रीमद् राजचन्द्रकी छाप मुख्यरूपसे है। महात्मा टॉल्स्यटॉय तथा रस्किनसे भी, श्रीमद्ने मेरे जीवन पर गहरा असर किया है।'

महात्मा गांधीजीके ऐसे उद्गारोंको सुनकर श्रीमद् राजचन्द्र जैसी उच्च विभूतिके समागममें गांधीजी कैसे आये और किस प्रकार वह अधिकाधिक गाढ़ा होता गया इस विषयमें जाननेका हमलोगोंका मन सहजमें हो आता है।

ई. सं. १८९१के जुलाई मासमें गांधीजी जिस समय विलायतसे बॅरिस्टर होकर भारतमें वापस आये, उस समय बम्बईमें उनका ठहरना श्रीमद्के ककियाससुर डॉ. प्राणजीवनदास महेताके यहाँ हुआ था। श्रीमद् इन डॉ. प्राणजीवनदासभाईके बडे भाई श्री पोपटलालके जमाई लगते थे। डाक्टरने श्रीमद्के साथ गांधीजीकी जान-पहचान प्रथम बार कराई और कहा: ये 'कवि होने पर भी हमारे साथमें ही व्यापार करते हैं। ये ज्ञानी हैं, शतावधानी हैं।'

किसीने उस समय गांधीजीसे कहा कि, 'आप रायचन्दभाईको कुछ शब्द सुनायें और वे किसी भी भाषाके होंगे तो भी उसी क्रमसे रायचन्दभाई आपको कह जायेंगे।'

यह सुनकर गांधीजीको आश्चर्य हुआ। इस प्रसंगके समयकी अपनी स्थितिका खयाल देते हुए गांधीजी कहते हैं:

'मैं तो जवान, विलायतसे आया हुआ, अपने भाषा-ज्ञानका भी आडंबर और विलायतकी हवा उस समय कुछ कम नहीं थी। विलायतसे आया मानों ऊँचेसे उतरा। मैंने अपना सब ज्ञान खाली किया और भिन्न-भिन्न भाषाओंके शब्दोंको प्रथम लिख डाला। क्योंकि शब्दक्रम मुझे कहाँ याद रहनेवाला था? और फिर उन शब्दोंको बोल गया। रायचन्दभाईने उसी क्रममें धीरेसे एकके वाद एक सभी शब्द कह बताये। मैं प्रसन्न हुआ, चकित हुआ। और कविकी स्मरणशक्तिके विषयमें मेरा ऊँचा अभिप्राय बँधा। विलायतकी हवा शान्त करनेके लिए यह अनुभव उत्तम रहा।'

श्रीमद् राजचन्द्रको अंग्रेजीका ज्ञान बहुत नहीं था। उस समय उनकी उम्र पच्चीस वर्षसे अधिक नहीं होगी। उनकी और गांधीजीकी उम्रमें एक वर्ष और दस महीनेका अन्तर था। गाँधीजीका जन्म सं. १९२५के भाद्रपद वदी वारसके दिन हुआ था जब कि श्रीमद्का जन्म इनसे पहले सं. १९२४की कार्तिकी पूर्णिमाको हुआ था। इस प्रकार अपनेसे कुछ बडे और गुजराती शालामें सातवीं कक्षा तक अध्ययन करनेवाले श्रीमद्में इतनी विलक्षण स्मरणशक्ति, इतना ज्ञान और आस-पासवालोंकी ओरसे इतना सन्मान ये सब देखकर गांधीजी उन पर मुग्ध हो गये थे।

इस प्रसंगसे गांधीजीको इस बातकी प्रतीति हुई कि स्मरणशक्ति पाठशालाओंमें नहीं बिकती, ज्ञान भी पाठशालासे वाहर यदि इच्छा हो—जिज्ञासा हो तो मिले, और

आदर-सत्कार प्राप्त करनेके लिए विलायत या कहीं अन्यत्र नहीं जाना पड़ता।

परन्तु यहाँ एक बात लक्ष्यमें लेने योग्य है कि, श्रीमद् राजचन्द्रकी केवल तीव्र स्मरणशक्ति देखकर गांधीजीको उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न हुआ हो, ऐसा कुछ नहीं था। आदरभावका कारण तो दूसरा ही था। यों तो वहुतोंकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है, इस कारण उससे प्रभावित होनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। शास्त्रज्ञान भी बहुतोंको होता है। परन्तु यदि वे लोग संस्कारी न हों तो उनके पाससे फूटी बादाम भी नहीं मिलती। जहाँ संस्कार अच्छे हों वहाँ ही स्मरणशक्ति और शास्त्रज्ञानका संयोग सुशोभित होता है और जगत्को सुशोभित करता है।

गांधीजीने तो पहली मुलाकातमें ही देख लिया था कि, श्रीमद् निर्मल चरित्रशील और सच्चे ज्ञानी हैं। उनका शास्त्रज्ञान, उनका विशुद्ध चरित्र और उनकी आत्मदर्शन करनेकी तीव्र अभिलाषा देखकर ही गांधीजी उनकी ओर आकर्षित हुए थे।

गांधीजीकी श्रीमद्के साथ प्रथम पहचान हुई उस समयकी गांधीजीकी स्थितिके विषयमें भी जान लेना आवश्यक है। इस बारेमें गांधीजी स्वयं लिखते हैं:

'हम प्रथम मिले उस समय मेरी आध्यात्मिक स्थिति मात्र एक जिज्ञासुकी थी। अनेक प्रश्नोंके विषयमें शंका रहती।....उस समय धर्म, हिन्दु धर्म, गीता इत्यादिके सम्बन्धमें थोड़ा ज्ञान था। माता-पिताके पाससे सहज

जो प्राप्त हुआ था, उसकी यहाँ बात नहीं करता। मैंने अपने प्रयत्नसे धर्मके सम्बन्धमें बहुत जाना हो, ऐसा नहीं था, परन्तु मुझे धर्मके विषयमें जाननेकी उत्कंठा थी। इससे रायचन्दभाईका समागम मुझे रुचिकर हुआ और उनके वचनोंका असर मेरे ऊपर पड़ा।

'उनकी बुद्धिके लिए मुझे आदर था, उनकी प्रमाणिकताके लिए वैसा ही था। और उससे मैं जानता था कि वे मुझे इरादापूर्वक अवमार्गमें नहीं ले जायेंगे और जो अपने मनमें होगा वही कहेंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाईमें उनका आश्रय लेता था।'

ऐसी आध्यात्मिक कठिनाईका एक महत्त्वका प्रसंग, जिस समय गांधीजी दक्षिण आफ्रिकामें थे उस समय बना था। गांधीजीके कितने ही ईसाई मित्र उन्हें ईसाई होनेके लिए समझा रहे थे। उस समय गांधीजीके हृदयमें धर्म-मन्थन जागृत हुआ था। ईसाई धर्मका अवलोकन करनेसे गांधीजीको यह धर्म सम्पूर्ण अथवा सर्वोपरी न लगा। इन्होंने अपने इस विषयके विचारोंको अपने ईसाई मित्रोंके समक्ष उपस्थित किया। परन्तु वे गांधीजीके मनका समाधान हो इस प्रकार न समझा सके।

परन्तु उस समय जिस प्रकार गांधीजी ईसाई धर्मको स्वीकार नहीं कर सकते थे, उसी प्रकार हिन्दु धर्मकी संपूर्णताके विषयमें अथवा सर्वश्रेष्ठताके विषयमें भी निर्णय पर नहीं आ सकते थे। हिन्दु धर्मकी त्रुटियाँ उनकी दृष्टिके सामने दिखाई दिया करती थीं।

आदर-सत्कार प्राप्त करनेके लिए विलायत या कहीं अन्यत्र नहीं जाना पड़ता।

परन्तु यहाँ एक बात लक्ष्यमें लेने योग्य है कि, श्रीमद् राजचन्द्रकी केवल तीव्र स्मरणशक्ति देखकर गांधीजीको उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न हुआ हो, ऐसा कुछ नहीं था। आदरभावका कारण तो दूसरा ही था। यों तो बहुतोंकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है, इस कारण उससे प्रभावित होनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। शास्त्रज्ञान भी बहुतोंको होता है। परन्तु यदि वे लोग संस्कारी न हों तो उनके पाससे फूटी बादाम भी नहीं मिलती। जहाँ संस्कार अच्छे हों वहाँ ही स्मरणशक्ति और शास्त्रज्ञानका संयोग सुशोभित होता है और जगत्को सुशोभित करता है।

गांधीजीने तो पहली मुलाकातमें ही देख लिया था कि, श्रीमद् निर्मल चरित्रशील और सच्चे ज्ञानी हैं। उनका शास्त्रज्ञान, उनका विशुद्ध चरित्र और उनकी आत्मदर्शन करनेकी तीव्र अभिलाषा देखकर ही गांधीजी उनकी ओर आकर्षित हुए थे।

गांधीजीकी श्रीमद्के साथ प्रथम पहचान हुई उस समयकी गांधीजीकी स्थितिके विषयमें भी जान लेना आवश्यक है। इस बारेमें गांधीजी स्वयं लिखते हैं:

'हम प्रथम मिले उस समय मेरी आध्यात्मिक स्थिति मात्र एक जिज्ञासुकी थी। अनेक प्रश्नोंके विषयमें शंका रहती।....उस समय धर्म, हिन्दु धर्म, गीता इत्यादिके सम्बन्धमें थोड़ा ज्ञान था। माता-पिताके पाससे सहज

जो प्राप्त हुआ था, उसकी यहाँ बात नहीं करता। मैंने अपने प्रयत्नसे धर्मके सम्बन्धमें बहुत जाना हो, ऐसा नहीं था, परन्तु मुझे धर्मके विषयमें जाननेकी उत्कंठा थी। इससे रायचन्दभाईका समागम मुझे रुचिकर हुआ और उनके वचनोंका असर मेरे ऊपर पड़ा।

'उनकी बुद्धिके लिए मुझे आदर था, उनकी प्रमाणिकताके लिए वैसा ही था। और उससे मैं जानता था कि वे मुझे इरादापूर्वक अवमार्गमें नहीं ले जायेंगे और जो अपने मनमें होगा वही कहेंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाईमें उनका आश्रय लेता था।'

ऐसी आध्यात्मिक कठिनाईका एक महत्त्वका प्रसंग, जिस समय गांधीजी दक्षिण आफ्रिकामें थे उस समय बना था। गांधीजीके कितने ही ईसाई मित्र उन्हें ईसाई होनेके लिए समझा रहे थे। उस समय गांधीजीके हृदयमें धर्म-मन्थन जागृत हुआ था। ईसाई धर्मका अवलोकन करनेसे गांधीजीको यह धर्म सम्पूर्ण अथवा सर्वोपरी न लगा। इन्होंने अपने इस विषयके विचारोंको अपने ईसाई मित्रोंके समक्ष उपस्थित किया। परन्तु वे गांधीजीके मनका समाधान हो इस प्रकार न समझा सके।

परन्तु उस समय जिस प्रकार गांधीजी ईसाई धर्मको स्वीकार नहीं कर सकते थे, उसी प्रकार हिन्दु धर्मकी संपूर्णताके विषयमें अथवा सर्वश्रेष्ठताके विषयमें भी निर्णय पर नहीं आ सकते थे। हिन्दु धर्मकी त्रुटियाँ उनकी दृष्टिके सामने दिखाई दिया करती थीं।

इसके सिवाय, जिस प्रकार ईसाई मित्र उन पर अपना प्रभाव डालनेका प्रयत्न कर रहे थे, उसी प्रकार मुसलमान मित्रोंका भी प्रयत्न था कि गांधीजी इस्लामका अभ्यास करें। वे लोग उनको कभी-कभी इस धर्मकी विशेषतायें समझानेका अत्यधिक परिश्रम करते थे।

गांधीजी इन सब बातोंसे द्विधामें पड़ गये। अन्तमें उन्होंने अपनी यह कठिनाई श्रीमद्के समक्ष उपस्थित की। उन्होंने भारतके अन्य धर्मशास्त्रियोंके साथ भी पत्र-व्यवहार किया। उन लोगोंके उत्तर आये। परन्तु श्रीमद्के पत्रसे उन्हें कुछ शान्ति मिली।

श्रीमद् राजचन्द्रने गांधीजीको धैर्य रखने और हिन्दु धर्मका गहराईसे अभ्यास करनेका अनुरोध किया। फिर श्रीमद्ने कितनी ही पुस्तकें, जैसे कि 'पंचीकरण,' 'मणि रत्नमाला,' 'योगवासिष्ठ,' ग्रन्थका मुमुक्षु प्रकरण इत्यादि गांधीजीको पढ़ने-विचारनेके लिए भेजीं।

गांधीजीने इन सभी पुस्तकोंको आदरपूर्वक पढ़ा। तदुपरान्त जो कुछ समय बचता उसका उपयोग वे धार्मिक ग्रन्थोंको पढ़नेमें करने लगे। उन्होंने श्रीमद्के साथका पत्रव्यवहार जारी रखा। श्रीमद् भी उन्हें योग्य सलाह देते थे। परिणाममें गांधीजीका हिन्दु धर्मके प्रति आदरभाव बढ़ा और वे इसकी विशेषता समझने लगे।

यहाँ हमें श्रीमद् राजचन्द्रकी उदार दृष्टिका प्रेरक दर्शन होता है। यों तो श्रीमद् जैन-दर्शनके अनुयायी थे परन्तु उन्हें अन्य धर्मोंके प्रति अनादर नहीं था। श्रीमद्का जीवन-

दर्शन विशाल और उदार था। अमुक दर्शन, पन्थ या वाडेमें सत्य समाया है, ऐसा माननेके वदले सत्य आत्मानुभवमें ही है, ऐसा श्रीमद्का अभिप्राय था। साथ-साथ अन्तिम अनुभवसे सम्वन्ध रखनेवाली वातोंके विषयमें भिन्न-भिन्न दर्शन या प्रवर्तकोंके मतभेदोंका निर्णय अन्तिम अनुभव होने पर ही होता है। और वहाँ तक सभी सम्प्रदायोंके शास्त्र-ग्रन्थ उपदेश-सद्‌बोध प्राप्त करनेके लिए वांचने विचारने योग्य हैं, ऐसा वे मानते थे। इससे ही श्रीमद् राजचन्द्रने लिखा है:

'जिनागम और वेदान्तमें सिद्धान्तज्ञान परस्पर भेदवाला देखनेमें आता है, और उस भेदको देखकर, मुमुक्षु जीव अंदेशा-शंकामें पड़ता है। और वह शंका चित्तमें असमाधि उत्पन्न करती है। ऐसा प्रायः होने योग्य ही है। क्योंकि सिद्धान्तज्ञान तो जीवको किसी अत्यन्त उज्ज्वल क्षयोपशमसे और सद्‌गुरुके वचनोंकी आराधनासे उत्पन्न होता है। सिद्धान्त ज्ञानका कारण उपदेश बोध है। सद्‌गुरुसे या सत् शास्त्रसे प्रथम जीवमें इस ज्ञानकी दृढ़ता होना उचित है, कि जिस उपदेश-ज्ञानका फल वैराग्य और उपशम है। वैराग्य और उपशमका वल वढ़नेसे जीवमें सहजमें क्षयोपशमकी निर्मलता होती है और वह सहज-सहजमें सिद्धान्तज्ञान होनेमें कारण होता है। यदि जीवमें असंगदशा आये तो आत्मस्वरूपका समझना अत्यन्त सुलभ होता है।'

ऐसी व्यापक धर्मदृष्टिवाले होनेसे श्रीमद् गांधीजीकी द्विधाको वरावर समझ सके थे, और इनके धर्म संस्कारोंका

लक्ष्यकर ही श्रीमद् इन्हें योग्य मार्ग दिखाते थे। इस कारण ही गांधीजीके साथमें धर्म सम्बन्धी चर्चा करते हुए कभी भी उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि, गांधीजीको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अमुक धर्मका अवलम्बन लेना चाहिए। उन्होंने गांधीजीको अपने आचारको समझनेका, अपना अन्तरात्मा जिस प्रकार प्रेरणा करे उस प्रकारसे जीवनके विषयमें विचारनेको ही कहा था। श्रीमद् द्वारा सूचित पुस्तकें भी मुख्य रूपसे हिन्दु धर्मकी ही थीं। क्योंकि गांधीजी भी हिन्दु धर्मकी विशेषतायें समझनेका प्रयत्न करते थे। जिससे उनकी व्याकुलता दूर हो और उन्हें सत्य मार्गके दर्शन हों यह वात लक्ष्यमें रखकर ही श्रीमद्ने उन्हें सलाह देना चालू रखा था।

यदि श्रीमद्की जगह कोई दूसरा होता तो जिज्ञासुके ऐसे धर्मसंकटके समयका लाभ उठाकर उनके मन पर अपना मन्तव्य (मत) मान्यता या अपने विचारोंको बल-पूर्वक मनानेका प्रयत्न करता। परन्तु श्रीमद् व्यापक धर्म-दृष्टिवाले थे।

इस प्रकार, समय वीतने पर गांधीजीका श्रीमद्के साथका प्रत्यक्ष परिचय गाढ़ वनता गया था। गांधीजी श्रीमद्को आदर भावसे देखते थे। धीरे-धीरे श्रीमद्के प्रति इन्हें भक्तिभाव भी उत्पन्न हुआ था और इनके आध्यात्मिक तथा चरित्रशील जीवनका प्रभाव गांधीजीके चित्त पर इतना पड़ा कि, एकबार गांधीजीको भी हुआ था कि, 'मैं इनको अपना गुरु वनाऊँ।'

५

श्री अम्बालाल लालचन्द

हम आगे देख चुके हैं कि श्री जूठाभाईने खंभातके श्री अंम्बालालभाई आदिको श्रीमद्‌की बात की थी और उनके पत्र बताये थे। इससे अम्बालालभाई आदिको श्रीमद्के दर्शन करके प्रत्यक्ष समागम करनेकी तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। श्री जूठाभाईने उन्हें सलाह दी कि प्रथम श्रीमद्‌की आज्ञा प्राप्तकर वादमें मिलनेके लिए जानेका विचार करना।

खंभात आकर अम्वालालभाई आदिने श्रीमद्‌को बम्बई पत्र लिखकर मिलनेके लिए आज्ञा माँगी। पाँचछ: पत्रोंके बाद श्रीमद्‌ने आनेकी स्वीकृति दी! तब त्रिभोवन-भाईके साथ अम्बालालभाई बम्बई गये और श्रीमद्‌से मिले।

इसके बाद अम्बालालभाईकी विनतीसे श्रीमद् सं. १९४६के आश्विन मासमें खंभात आये। श्री लालचन्दभाई श्रीमद्‌को स्थानकवासी उपाश्रयमें ले गये। मुनि श्री लल्लुजी महाराज आदि मुनियोंको भी श्रीमद्का यहाँ प्रथम परिचय हुआ था।

अम्बालालभाई श्रीमद्‌से दो वर्ष छोटे थे। वे पूर्वके संस्कारी, उत्तम क्षयोपशमवाले, सेवाभावी और एकनिष्ठ भक्तिभाववाले थे।

सं. १९४६के समागम वाद उनका जीवन श्रीमद्‌मय वन गया था। श्रीमद्के साथ उनका पत्र-व्यवहार निरन्तर चालू रहा था। श्रीमद्के उपदेश अनुसार उन्होंने अपना समय विताकर जीवनको श्रेयमार्गमें झुकाया था। प्रत्येक

वात वे श्रीमद्से पूछते और जैसी आज्ञा मिलती वैसा करते थे। इस प्रकार थोडे ही समयमें अम्बालालभाई श्रीमद्के एक अन्तेवासी समान वन गये थे।

श्रीमद् जिस समय चरोतरमें आते उस समय वे इनके साथ रहकर सभी व्यवस्था करते थे। श्रीमद्के साथ जो अन्य मुमुक्षु आते उनकी भी अम्वालालभाई तन-मन और धनसे निष्ठापूर्वक सेवा करते थे।

श्रीमद् जो उपदेश करते उसे अम्बालालभाई आठवें दिन भी अक्षरश: लिख सकते थे ऐसी उनकी धारणा-शक्तिकी प्रशंसा श्रीमद्जी स्वयं करते थे। सं. १९५२में काविठा, रालज, वडवा, खंभात, आणन्द, नडियाद आदि स्थानोंमें हुआ श्रीमद्का वोध, जो 'उपदेश छाया'के नामसे 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित हुआ है, वह अम्वालालभाईका ही लिखा है, और जो श्रीमद्की दृष्टिमें भी आ चुका है।

जिस समय नडियादमें श्रीमद्की स्थिति थी उस समय एक दिन शामको श्रीमद्ने आत्मसिद्धि लिखना प्रारम्भ किया। अविराम रूपसे १४२ दोहे डेढ़ घण्टेमें लिख डाले। उस समय अम्बालालभाई पासमें लालटेन लेकर खडे रहे थे। श्रीमद्ने इसकी चार प्रतिलिपि करनेको और योग्य जीवोंको भेजनेके लिए अम्वालालभाईसे कहा।

तथा श्रीमद्के पत्र जहाँ-जहाँ थे वहाँसे मंगाकर उनकी प्रतिलिपि करनेका काम भी श्रीमद्की आज्ञासे अम्वालाल-भाईने शुरू किया था। उनकी प्रतिलिपि तैयार करके रखते और जिस मुमुक्षुको भेजनेके लिए श्रीमद् लिखते उसे वे

भेजते थे।

श्रीमद्के अनेक पत्रोंमेंसे अध्यात्म-लेखोंके विषयकी एक पुस्तक अम्बालालभाईने तैयार की थी, जिसमें श्रीमद्ने स्वयं देखकर उचित फेरफार कर दिये थे।

इसके सिवाय संस्कृत, मागधी, हिंदी, गुजरातीकी आवश्यक पुस्तकोंकी प्रतिलिपि करनेके लिए श्रीमद् अम्बालाल-भाईको भेजते और अम्बालालभाई उन पुस्तकोंकी प्रतिलिपि करके योग्य मुमुक्षुओंको आज्ञानुसार पढ़नेके लिए भेजते।

अम्बालालभाई प्रतिदिन सामायिक लेकर बैठते और लेखन-कार्य एकचित्तसे करते। साथ-साथ संस्कृत तथा कर्मग्रन्थ इत्यादि शास्त्रोंका अभ्यास भी वे करते जाते थे। संक्षेपमें कहें तो, अम्बालालभाई खूब ही कार्यदक्ष, आज्ञांकित और आत्मार्थी थे।

सं. १९५७के माह-फाल्गुनमें अम्बालालभाई* अपने छोटेभाई नगीनदास मगनलालके साथ वढ़वाण श्रीमद्की सेवामें एक मास रहे थे। श्रीमद्ने उनको घर जानेकी आज्ञा की उसे मान्यकर वे खंभात आये।

श्रीमद्के देहोत्सर्गके बाद अम्बालालभाईने 'वचनामृत' प्रकाशित करनेमें श्रीमद्के छोटे भाई श्री मनसुखभाईकी सहायता की थी।

* अम्बालालके पिताका नाम मगनलाल था। परन्तु उनके मातामह लालचन्दके कोई पुत्र नहीं था, इससे लालचन्दने अम्बालाल-भाईको दत्तक लिया था। इस कारण वे अम्बालाल लालचन्दके नामसे पहचाने जाते थे।

श्रीमद्के अवसानके बाद मुनिश्री लल्लुजी तथा अम्बालालभाई अन्योन्य सलाह लेकर चलते थे। सं. १९५८में अम्बालालभाई श्री लल्लुजी मुनिका समागम करनेके लिए दक्षिण हिंदमें करमाला गये थे।

अन्तमें प्लेग लागू पड़नेसे अम्बालालभाई समाधि सहित सं. १९६३की चैत्र वदी बारसको खंभातमें मात्र सैंतीस वर्षकी आयुमें स्वर्गवासी हुए।

६

मुनिश्री लल्लुजी महाराज—लघुराज स्वामी

श्रीमद्को मन, वचन, काया अर्पणकर उनकी आज्ञामें तन्मयतापूर्वक समस्त जीवन व्यतीत कर मोक्षमार्गका सफलतासे यदि उद्योत किया हो तो वे मुनिश्री लल्लुजी (श्री लघुराज स्वामी) ही थे।

श्री लल्लुजीका जन्म भाल प्रदेशके वटामण गाँवमें सं. १९१०के आश्विन वदी एकमके दिन प्रतिष्ठित वेलाणी भावसार कुटुम्बमें हुआ था। पिताका नाम कृष्णदास और माताका नाम कसलाबा था। जन्मसे पहले ही पिताका अवसान हुआ था, तथा चार माताओंके बीचमें एक ही पुत्र होनेसे अत्यन्त लाड़से वे पले थे।

थोड़ा पढ़कर उन्होंने स्कूल छोड़ दिया था। युवावस्थामें उन्होंने दो बार शादी की थी, परन्तु एक भी पुत्र नहीं हुआ! वहाँ तो अचानक उन्हें पांडु रोग हुआ। अनेक उपचार किये, परन्तु वह नहीं मिटा, और धर्मके संस्कार जगे, उससे संकल्प किया कि यदि रोग मिट जायगा तो

दीक्षा धारण करूँगा।

रोग दूर हुआ और वे दीक्षा लेनेके लिए तत्पर हुए। परन्तु उनकी माताने पुत्र जन्मके बाद दीक्षा लेनेकी आज्ञा देनेको कहा। इसके बाद पुत्रका जन्म हुआ और वह एक महीनेका हुआ तब देवकरणजी नामके अपने भतीजेके साथ सं. १९४०में खंभात स्थलमें श्री हरखचन्दजी मुनिके हाथसे दीक्षा ली।

दीक्षा लेनेके पश्चात् वे शास्त्रोंका पठन-पाठन करने लगे तथा उन्होंने एकान्तर उपवास आदिका उग्र पुरुषार्थ प्रारम्भ किया। श्री लल्लुजी विवेकी और विनयशील होनेसे गुरु तथा अन्य सभी साधुओंको मान्य हुए। परन्तु उन्होंने जो आत्माकी शान्तिकी प्राप्तिकी इच्छा की थी, वह उन्हें न मिली तथा शास्त्रोंको वांचते हुए कितनी ही शंकायें उठतीं, उनका भी समाधान नहीं होता था। इस प्रकार पाँच वर्ष व्यतीत हो गये।

हम आगे देख चुके हैं कि श्री जूठाभाईके साथ अम्बालाल आदि भाइयोंका परिचय हुआ था और उनके पाससे उन्होंने श्रीमद्के पत्रोंकी प्रतिलिपि कर ली थी।

ये भाई स्थानकवासी सम्प्रदायके थे, इससे वे प्रतिदिन उपाश्रय जाते और किसी एकान्त जगहमें बैठकर श्रीमद्के पत्रोंको वांचते-विचारते थे। परन्तु वे लोग वहाँ होनेवाले व्याख्यानमें नहीं जाते थे।

एक दिन अम्बालाल आदि भाई श्रीमद्के पत्रोंको पढ़ रहे थे, उस समय खंभात संघके मुख्य आचार्य

श्री हरखचन्दजी महाराज उपाश्रयके मेडेपर व्याख्यानमें 'भगवती सूत्र' बाँच रहे थे, और नीचे श्री लल्लुजी महाराज एक शास्त्राभ्यासी पाटीदार भाई दामोदरभाईके साथ ऊपर पढ़े गये 'भगवती सूत्र'के पृष्ठ बांचते थे। उसमें एक ऐसी बात आई कि 'भवस्थिति पके तब मोक्ष होता है।' इस परसे श्री लल्लुजी महाराजको आशंका हुई कि 'यदि ऐसा ही है तो फिर मोक्षके लिए प्रयत्न करनेकी क्या आवश्यक्ता है?' उन्हें इस आशंकाका कुछ सन्तोष-कारक खुलासा न मिला। इस सम्बन्धमें उस भाईके साथ विचार कर रहे थे। इतनेमें उनकी दृष्टि एक ओर बैठकर बातें करनेवाले अम्बालाल आदिकी ओर गई। इससे उन्होंने धर्मस्नेहपूर्वक उपालंभ देते हुए कहा—'वहाँ बैठकर क्या करते हो? व्याख्यानमें ऊपर क्यों नहीं जाते? ऊपर जाओ अथवा यहाँ आकर बैठो।'

यह सुनकर वे सभी श्री लल्लुजी महाराजके समीप जाकर बैठे। और 'भवस्थिति'वाला प्रश्न चल रहा था, उसका यथार्थ स्पष्टीकरण न हुआ, इससे अम्बालालभाईने श्री लल्लुजी महाराजसे श्रीमद्की बात की कि 'वे सकल आगमोंके ज्ञाता हैं, उत्तम पुरुष हैं और यहाँ खंभातमें पधारनेवाले हैं।'

श्री लल्लुजी महाराजने जिज्ञासापूर्वक पूछा—हमारा उस पुरुषसे मिलाप कराओगे? अम्बालालने 'हाँ' कहा।

श्रीमद् राजचन्द्र सं. १९४६में खंभात पधारे। उनका निवास अम्बालालभाईके यहाँ था। वे उन्हें उपाश्रयमें ले

गये। वहाँ श्रीमद्के श्री हरखचन्दजी मुनिके साथ प्रश्नोत्तर हुए और सभीको उनके खुलासेसे शान्ति हुई तथा सभी श्रीमद्की कुशाग्र विशाल प्रज्ञाकी प्रशंसा करने लगे।

श्री लल्लुजीने श्री हरखचन्दजी महाराजसे पूछा—'मैं इनसे कुछ अवधारूँ?'

श्री हरखचन्दजी महाराजकी आज्ञा मिली, इससे श्री लल्लुजीने श्रीमद्से ऊपर पधारनेकी विनती की। श्री लल्लुजीने ऊपर जाकर श्रीमद्को उत्तम पुरुष जानकर नमस्कार किया। श्री लल्लुजी श्रीमद्से चौदह वर्ष बडे थे और उस समय श्रीमद्की उम्र बाईस वर्षकी ही थी।

इस प्रकार, श्रीमद्से चौदह वर्ष बडे, धनाढ्य कुटुम्बके एकलौते पुत्र होने पर भी सर्वस्वका त्याग कर, अन्य तीन पहचानवाले कुटुम्बियोंके साथ दीक्षित, उस समय खंभातके संघमें केवल चार ही साधु रहे थे उसकी दुगुनी संख्या करनेवाले और विनयादि गुणोंसे आचार्यको प्रसन्न कर सर्व साधुओंमें पाँच छ वर्षमें प्रधानपद प्राप्त करनेवाले, तथा उनकी दीक्षा लेनेके बाद उस संघमें चौदह साधु हो जानेसे वे उत्तम चरणवाले माने जानेवाले मंगलकारी तथा भद्रिक ये मुख्य साधु श्री लल्लुजी, केवल बाईस वर्षकी अवस्था-वाले, युवावस्थामें प्रवेश करनेवाले गृहस्थको नमस्कार करें यह कुछ ऐसा-वैसा सामान्य प्रसंग नहीं ही माना जाता।

श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे पूछा: 'तुम्हारी क्या इच्छा है?'

श्री लल्लुजीने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा: 'समकित (आत्माकी पहचान) और ब्रह्मचर्यके दृढ़त्वकी

श्री हरखचन्दजी महाराज उपाश्रयके मेडेपर व्याख्यानमें 'भगवती सूत्र' बाँच रहे थे, और नीचे श्री लल्लुजी महाराज एक शास्त्राभ्यासी पाटीदार भाई दामोदरभाईके साथ ऊपर पढ़े गये 'भगवती सूत्र'के पृष्ठ बांचते थे। उसमें एक ऐसी बात आई कि 'भवस्थिति पके तब मोक्ष होता है।' इस परसे श्री लल्लुजी महाराजको आशंका हुई कि 'यदि ऐसा ही है तो फिर मोक्षके लिए प्रयत्न करनेकी क्या आवश्यक्ता है?' उन्हें इस आशंकाका कुछ सन्तोष-कारक खुलासा न मिला। इस सम्बन्धमें उस भाईके साथ विचार कर रहे थे। इतनेमें उनकी दृष्टि एक ओर बैठकर बातें करनेवाले अम्बालाल आदिकी ओर गई। इससे उन्होंने धर्मस्नेहपूर्वक उपालंभ देते हुए कहा — 'वहाँ बैठकर क्या करते हो? व्याख्यानमें ऊपर क्यों नहीं जाते? ऊपर जाओ अथवा यहाँ आकर वैठो।'

यह सुनकर वे सभी श्री लल्लुजी महाराजके समीप जाकर बैठे। और 'भवस्थिति'वाला प्रश्न चल रहा था, उसका यथार्थ स्पष्टीकरण न हुआ, इससे अम्बालालभाईने श्री लल्लुजी महाराजसे श्रीमद्की बात की कि 'वे सकल आगमोंके ज्ञाता हैं, उत्तम पुरुष हैं और यहाँ खंभातमें पधारनेवाले हैं।'

श्री लल्लुजी महाराजने जिज्ञासापूर्वक पूछा — हमारा उस पुरुषसे मिलाप कराओगे? अम्बालालने 'हाँ' कहा।

श्रीमद् राजचन्द्र सं. १९४६में खंभात पधारे। उनका निवास अम्बालालभाईके यहाँ था। वे उन्हें उपाश्रयमें ले

गये। वहाँ श्रीमद्के श्री हरखचन्दजी मुनिके साथ प्रश्नोत्तर हुए और सभीको उनके खुलासेसे शान्ति हुई तथा सभी श्रीमद्की कुशाग्र विशाल प्रज्ञाकी प्रशंसा करने लगे।

श्री लल्लुजीने श्री हरखचन्दजी महाराजसे पूछा—'मैं इनसे कुछ अवधारूँ?'

श्री हरखचन्दजी महाराजकी आज्ञा मिली, इससे श्री लल्लुजीने श्रीमद्से ऊपर पधारनेकी विनती की। श्री लल्लुजीने ऊपर जाकर श्रीमद्को उत्तम पुरुष जानकर नमस्कार किया। श्री लल्लुजी श्रीमद्से चौदह वर्ष वडे थे और उस समय श्रीमद्की उम्र बाईस वर्षकी ही थी।

इस प्रकार, श्रीमद्से चौदह वर्ष वडे, धनाढ्य कुटुम्बके एकलौते पुत्र होने पर भी सर्वस्वका त्याग कर, अन्य तीन पहचानवाले कुटुम्बियोंके साथ दीक्षित, उस समय खंभातके संघमें केवल चार ही साधु रहे थे उसकी दुगुनी संख्या करनेवाले और विनयादि गुणोंसे आचार्यको प्रसन्न कर सर्व साधुओंमें पाँच छ वर्षमें प्रधानपद प्राप्त करनेवाले, तथा उनकी दीक्षा लेनेके वाद उस संघमें चौदह साधु हो जानेसे वे उत्तम चरणवाले माने जानेवाले मंगलकारी तथा भद्रिक ये मुख्य साधु श्री लल्लुजी, केवल वाईस वर्षकी अवस्था-वाले, युवावस्थामें प्रवेश करनेवाले गृहस्थको नमस्कार करें यह कुछ ऐसा-वैसा सामान्य प्रसंग नहीं ही माना जाता।

श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे पूछा: 'तुम्हारी क्या इच्छा है?'

श्री लल्लुजीने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा: 'समकित (आत्माकी पहचान) और ब्रह्मचर्यके दृढ़त्वकी

मेरी माँग है।'

श्रीमद् थोडी देर मौन रहे और फिर कहा: 'ठीक है।' यों कहकर उन्होंने श्री लल्लुजीके दाहिने पैरका अंगूठा खींचकर परीक्षा की, और उठकर वे नीचे गये।

घर जाते समय श्रीमद्ने अम्बालालसे कहा: 'यह पुरुष संस्कारी है। इन रेखाओंवाला पुरुष संसारमें उत्तम पदको पाता है, धर्ममें आत्मज्ञानी मुनि होता है।'

दूसरे दिन तो श्री लल्लुजी स्वयं ही अम्बालालभाईके घर श्रीमद्के समागमके लिए आये। वहाँ एकान्तमें श्रीमद्ने उनसे पूछा—'तुम हमारा क्यों आदर-सत्कार करते हो?'

श्री लल्लुजीने नम्रतासे कहा—'आपको देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष-प्रेम आता है। मानो आप हमारे पूर्वके पिता हों इतना प्रेम-भाव आता है। किसी प्रकारका भय नहीं रहता। आपको देखकर कोई अलौकिक निर्भयता आत्मामें आती है।'

श्रीमद् खंभातमें सात दिन रहे। वहाँ तक रोज श्री लल्लुजी उनके समागमके लिए मुकाम पर जाते थे।

इसके बाद श्री लल्लुजी प्रसंगानुसार श्रीमद्का समागम करते रहे। श्री लल्लुजीके शिष्य श्री देवकरणजी भी इनके साथ श्रीमद्का समागम करने लगे। वे भी श्रीमद्के प्रति आकर्षित होते रहे।

श्रीमद् अपनी व्यापारिक प्रवृत्तिमेंसे बीच-बीचमें निवृत्ति लेकर थोडे समय एकान्तमें रहनेके लिए बम्बई छोड़कर

भिन्न-भिन्न स्थलोंमें जाते। उस समय श्री लल्लुजी, श्री देवकरणजी आदि साधु उस अरसेमें उन-उन स्थलों पर उपस्थित रहते अथवा आकर उनका समागम करते, इस बातको हम गत प्रकरणमें देख चुके हैं।

अन्तिम दिनोंमें श्रीमद् कुछ समय अहमदाबाद रहे थे, उस समय उन्होंने श्री लल्लुजीको बुलाकर, अत्यन्त उपदेश देकर कहा कि, 'हममें और वीतरागमें भेद न मानना। तुम किसीके पास मत जाना, अन्य लोग तुम्हारे पास आयेंगे। दुःषमकाल है, इस लिए जड़भरत जैसे होकर विचरना। ऋद्धि-सिद्धि प्रगटेंगी उनकी अवहेलना करना। इस कालके जीव पक्व आरियाके समान हैं, कड़ाई (सख्ती) नहीं सहन कर सकेंगे, इस कारण लघुता धारणकर यदि कल्याणमूर्ति बनोगे तो तुमसे अनेक जीवोंका कल्याण होगा।' श्रीमद्‌ने दूसरे मुमुक्षुओंसे भी मुनिश्री लल्लुजीके दो-दो मास समागम करनेका अनुरोध किया था।

श्रीमद्‌के देहोत्सर्गका समाचार श्री लल्लुजीको दूसरे दिन सवेरे जब काविठामें मिला उस समय पंचमी और छठ्ठका उपवास करके गाँवके बाहर खेतमें कायोत्सर्गमें रहे थे।

इसके वाद दक्षिणमें करमाला, उत्तरमें वडाली और चरोतरमें चातुर्मास रहकर आस-पासके गाँवोंमें विहार करके विचरते थे।

अन्तमें जूनागढ़ और बगसरा रहकर सं. १९७४में नार गाँवमें चौमासा किया। सं. १९७५की कार्तिक पूर्णिमाको

मेरी माँग है।'

श्रीमद् थोडी देर मौन रहे और फिर कहा: 'ठीक है।' यों कहकर उन्होंने श्री लल्लुजीके दाहिने पैरका अंगूठा खींचकर परीक्षा की, और उठकर वे नीचे गये।

घर जाते समय श्रीमद्ने अम्बालालसे कहा: 'यह पुरुष संस्कारी है। इन रेखाओंवाला पुरुष संसारमें उत्तम पदको पाता है, धर्ममें आत्मज्ञानी मुनि होता है।'

दूसरे दिन तो श्री लल्लुजी स्वयं ही अम्बालालभाईके घर श्रीमद्के समागमके लिए आये। वहाँ एकान्तमें श्रीमद्ने उनसे पूछा—'तुम हमारा क्यों आदर-सत्कार करते हो?'

श्री लल्लुजीने नम्रतासे कहा—'आपको देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष-प्रेम आता है। मानो आप हमारे पूर्वके पिता हों इतना प्रेम-भाव आता है। किसी प्रकारका भय नहीं रहता। आपको देखकर कोई अलौकिक निर्भयता आत्मामें आती है।'

श्रीमद् खंभातमें सात दिन रहे। वहाँ तक रोज श्री लल्लुजी उनके समागमके लिए मुकाम पर जाते थे।

इसके बाद श्री लल्लुजी प्रसंगानुसार श्रीमद्का समागम करते रहे। श्री लल्लुजीके शिष्य श्री देवकरणजी भी इनके साथ श्रीमद्का समागम करने लगे। वे भी श्रीमद्के प्रति आकर्षित होते रहे।

श्रीमद् अपनी व्यापारिक प्रवृत्तिमेंसे बीच-बीचमें निवृत्ति लेकर थोडे समय एकान्तमें रहनेके लिए बम्बई छोड़कर

भिन्न-भिन्न स्थलोंमें जाते। उस समय श्री लल्लुजी, श्री देवकरणजी आदि साधु उस अरसेमें उन-उन स्थलों पर उपस्थित रहते अथवा आकर उनका समागम करते, इस बातको हम गत प्रकरणमें देख चुके हैं।

अन्तिम दिनोंमें श्रीमद् कुछ समय अहमदावाद रहे थे, उस समय उन्होंने श्री लल्लुजीको बुलाकर, अत्यन्त उपदेश देकर कहा कि, 'हममें और वीतरागमें भेद न मानना। तुम किसीके पास मत जाना, अन्य लोग तुम्हारे पास आयेंगे। दु:षमकाल है, इस लिए जड़भरत जैसे होकर विचरना। ऋद्धि-सिद्धि प्रगटेंगी उनकी अवहेलना करना। इस कालके जीव पक्व आरियाके समान हैं, कड़ाई (सख्ती) नहीं सहन कर सकेंगे, इस कारण लघुता धारणकर यदि कल्याणमूर्ति बनोगे तो तुमसे अनेक जीवोंका कल्याण होगा।' श्रीमद्ने दूसरे मुमुक्षुओंसे भी मुनिश्री लल्लुजीके दो-दो मास समागम करनेका अनुरोध किया था।

श्रीमद्के देहोत्सर्गका समाचार श्री लल्लुजीको दूसरे दिन सवेरे जब काविठामें मिला उस समय पंचमी और छठ्का उपवास करके गाँवके बाहर खेतमें कायोत्सर्गमें रहे थे।

इसके बाद दक्षिणमें करमाला, उत्तरमें वडाली और चरोतरमें चातुर्मास रहकर आस-पासके गाँवोंमें विहार करके विचरते थे।

अन्तमें जूनागढ़ और बगसरा रहकर सं. १९७४में नार गाँवमें चौमासा किया। सं. १९७५की कार्तिक पूर्णिमाको

वे सन्देसर पधारे। इन दो वर्षोंमें जहाँ-जहाँ श्री लल्लुजी स्थिरता करते वहाँ दूर-दूरसे मुमुक्षु उनका समागम करनेके लिए एकत्रित होते। उनके समागमका निरन्तर लाभ मिला करे इसके लिए अगास स्टेशनके समीप एक आश्रमकी स्थापना की गई।

सं. १९८०में श्री लल्लुजी — लघुराज स्वामी श्री सम्मेद शिखरकी यात्रासे आकर पूनामें चातुर्मास करनेके लिए पधारे थे वहाँ बहुतसे मुमुक्षु आये थे। उस समय उन्होंने सबको कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रकी मान्यता पर लाकर सच्चा मार्ग बताया था। तत्पश्चात् दक्षिणकी तीर्थयात्रा करके दो महीने पेथापुर रहकर चैत्र मासमें अगास आश्रममें पधारे थे। इसके बादके ग्यारह चौमासे अगास आश्रममें ही किये थे।

अन्तमें सं. १९९२में वैशाख सुदी अष्टमीकी रातको अगास आश्रममें लघुराज स्वामीने समाधि सहित देह-त्याग किया।

* * *

यहाँ हम श्रीमद्के पुनीत समागममें आनेवाले थोडेसे मनुष्योंके विषयमें ही देख चुके हैं। इसके ऊपरसे, श्रीमद्के प्रेरक समागमसे, सद्गुरुकी प्राप्तिसे मनुष्यके जीवनमें कैसा आमूलाग्र परिवर्तन होता है उसके जीवनको कैसा सत्य मार्ग मिलता है इसका विचार आ सकता है। श्रीमद्के

परिचयमें आनेवाले मनुष्य यथार्थमें भाग्यशाली हैं। कृपालु-देवने इन मनुष्योंके जीवनमें कैसा महत्त्वका भाग लिया है, इस सम्बन्धके संस्मरणोंको पढ़नेसे एक ही स्वर मनमें गूंज उठता है :

'अहो! अहो! श्रीसद्‌गुरु, करुणासिन्धु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार,'

(आत्मसिद्धिशास्त्र, १२४)

१३

श्रीमद्के प्रेरक प्रसंग

महापुरुषोंका जीवन अमृतके स्रोत समान होता है। संसारके दुःखतापसे तप्त हुए जीव इस झरनेमेंसे सुधापान कर अपनी तृषा शान्त करते हैं और शान्तिका अनुभव करते हैं। अर्थात् आस-पाससे मुमुक्षु, मोक्षार्थी, श्रेयार्थी मनुष्य महापुरुषकी, सन्त महात्माओंकी शरण खोजते हैं, और अपने दुविधावाले प्रश्नोंका निराकरण प्राप्त करते हैं।

महावीर स्वामी, भगवान वुद्ध, ईशु ख्रिस्त, महंमद पैगम्बर साहबसे लेकर श्री रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गाँधीजी तकके एक-एक पैगम्बर, सन्त, औलिया आदि महापुरुषोंके जीवनमें ऐसे कितने ही प्रसंग देखनेको मिलते हैं, जिनका वाचन, मनन, चिन्तन और अवगाहन हमलोगोंको प्रेरणारूप होता है।

श्रीमद् राजचन्द्रजीके जीवनमेंसे भी ऐसे कितने ही प्रसंग जीवनके प्रेरक और मार्गदर्शक हों ऐसे हैं। यहाँ हम ऐसे थोडे प्रेरक प्रसंगों पर दृष्टिपात करें। ये प्रेरक प्रसंग वोधकथायें Parables जैसे सचोट असरकारक हैं।

१

एक बार श्रीमद् सुरत पधारे थे। वहाँ श्री देवकरणजी आदि मुनि उनके समागममें आये थे। देवकरणजीने श्रीमद्से प्रश्न पूछा—

'श्री लल्लुजी महाराज, मुझसे, जब मैं व्याख्यान देकर आता हूँ, तब 'अभिमान किया' कहते हैं, ध्यान करता हूँ उसे तरंगरूप कहते हैं; तो क्या वीतराग प्रभु श्री लल्लुजी महाराजका किया हुआ स्वीकारेंगे और मेरा नहीं, ऐसे पक्षपाती होंगे?'

श्रीमद्ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया:

'स्वच्छन्दतासे जो-जो किया जाता है वह सब कुछ अभिमान ही है, असत्साधन है; और सद्गुरुकी आज्ञासे जो किया जाता है वह कल्याणकारी धर्मरूप सत्साधन है।'

२

श्रीमद् खंभातमें प्रथम बार सात दिन रहे थे। उस समय श्री लल्लुजी महाराज प्रतिदिन श्रीमद्के समागमके लिए उनके निवासस्थान पर जाते थे।

एक दिन श्री लल्लुजी महाराजने कहा:

'मैं ब्रह्मचर्य पालनके लिए पाँच बरससे एकान्तर उपवास करता हूँ और ध्यान आदि करता हूँ, फिर भी मानसिक पालन बराबर नहीं हो पाता!'

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा:

'लोकदृष्टिसे (ये सब) नहीं करना। लोकको दिखानेके लिए तपश्चर्या नहीं करना। स्वादका त्याग हो

तथा पेट कुछ खाली रहे इस प्रकारसे आहार लेना। यदि स्वादिष्ट आहार हो तो वह दूसरेको दे देना।'

३

श्री लल्लुजी महाराजने एक बार श्रीमद्से कहा:

'मैं जो-जो देखता हूँ, वह भ्रम है, असत्य है—इस प्रकारका अभ्यास करता हूँ।'

श्रीमद् बोले—

'आत्मा है, ऐसा देखा करो।'

४

एक बार श्रीमद् काविठा गाँवमें निवृत्तिके लिए रहे थे, उस समय मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्से पूछा:

'मन स्थिर नहीं रहता, तो उसका क्या उपाय?'

श्रीमद् बोले:

'एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देना। कोई अच्छी पुस्तक, जिससे वैराग्यादिकी वृद्धि हो, पढ़ना–विचारना। ये कुछ न हो तो फिर माला जपना। परन्तु यदि मनको बेकाम रखोगे तो वह क्षण भरमें सत्यानाश कर देगा। इसलिए उसे सद्विचाररूप खुराक देना।

'जैसे ढोरको कुछ न कुछ खानेको चाहिए ही—खलीकी टोकरी सामने रखी हो तो वह खाता रहे—वैसी ही मनकी स्थिति है। अन्य विकल्पोंको रोकना हो तो उसे सद्-विचाररूप खुराक देना।

'मन कहे उससे उलटा चलना, उसके वश होकर खिच नहीं जाना।'

५

श्रीमद् वसो गाँवमें निवृत्तिके लिए कुछ दिन रहे थे, उस समय वसोसे एक मील दूर गोचर भूमिमें श्री लल्लुजी आदि मुनियोंके साथ थोड़ा समय व्यतीत कर उन्हें सद्-बोध देते थे।

एक दिन गोचरमें श्री लल्लुजीके साथ चलते-चलते श्रीमद् बोले :

'धर्म अचिन्त्य चिन्तामणि स्वरूप है।'

श्री लल्लुजीने पूछा :

'अचिन्त्य चिन्तामणिका क्या अर्थ?'

श्रीमद्ने कहा :

'चिन्तामणि रत्न चिन्तवन करनेसे फल देता है, उसमें चिन्तवन जितना परिश्रम है, परन्तु धर्म 'अचिन्त्य' अर्थात् उसमें चिन्तवन जितना भी श्रम नहीं है ऐसा अचिन्त्य फल देता है।'

६

एक दिन श्रीमद्ने मुनिश्री चतुरलालसे पूछा :

'जबसे तुमने संयम किया तबसे आजतक क्या किया?'

श्री चतुरलालजीने कहा :

'सवेरे चायका पात्र भर लाता हूँ, उसे पीता हूँ, इसके बाद नास माँग लाता हूँ और सूँघता हूँ। तत्पश्चात् आहारके समय आहार-पानी माँग लाता हूँ और आहार करके सो जाता हूँ। शामको प्रतिक्रमण करके आरामसे निद्रा लेता हूँ।'

तथा पेट कुछ खाली रहे इस प्रकारसे आहार लेना। यदि स्वादिष्ट आहार हो तो वह दूसरेको दे देना।'

३

श्री लल्लुजी महाराजने एक बार श्रीमद्से कहा:

'मैं जो-जो देखता हूँ, वह भ्रम है, असत्य है—इस प्रकारका अभ्यास करता हूँ।'

श्रीमद् बोले—

'आत्मा है, ऐसा देखा करो।'

४

एक बार श्रीमद् काविठा गाँवमें निवृत्तिके लिए रहे थे, उस समय मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्से पूछा:

'मन स्थिर नहीं रहता, तो उसका क्या उपाय?'

श्रीमद् बोले:

'एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देना। कोई अच्छी पुस्तक, जिससे वैराग्यादिकी वृद्धि हो, पढ़ना–विचारना। ये कुछ न हो तो फिर माला जपना। परन्तु यदि मनको बेकाम रखोगे तो वह क्षण भरमें सत्यानाश कर देगा। इसलिए उसे सद्विचाररूप खुराक देना।

'जैसे ढोरको कुछ न कुछ खानेको चाहिए ही—खलीकी टोकरी सामने रखी हो तो वह खाता रहे—वैसी ही मनकी स्थिति है। अन्य विकल्पोंको रोकना हो तो उसे सद्-विचाररूप खुराक देना।

'मन कहे उससे उलटा चलना, उसके वश होकर खिच नहीं जाना।'

५

श्रीमद् वसो गाँवमें निवृत्तिके लिए कुछ दिन रहे थे, उस समय वसोसे एक मील दूर गोचर भूमिमें श्री लल्लुजी आदि मुनियोंके साथ थोड़ा समय व्यतीत कर उन्हें सद्-बोध देते थे।

एक दिन गोचरमें श्री लल्लुजीके साथ चलते-चलते श्रीमद् बोले :

'धर्म अचिन्त्य चिन्तामणि स्वरूप है।'

श्री लल्लुजीने पूछा :

'अचिन्त्य चिन्तामणिका क्या अर्थ ?'

श्रीमद्‌ने कहा :

'चिन्तामणि रत्न चिन्तवन करनेसे फल देता है, उसमें चिन्तवन जितना परिश्रम है, परन्तु धर्म 'अचिन्त्य' अर्थात् उसमें चिन्तवन जितना भी श्रम नहीं है ऐसा अचिन्त्य फल देता है।'

६

एक दिन श्रीमद्‌ने मुनिश्री चतुरलालसे पूछा :

'जबसे तुमने संयम किया तबसे आजतक क्या किया ?'

श्री चतुरलालजीने कहा :

'सवेरे चायका पात्र भर लाता हूँ, उसे पीता हूँ, इसके बाद नास माँग लाता हूँ और सूँघता हूँ। तत्पश्चात् आहारके समय आहार-पानी माँग लाता हूँ और आहार करके सो जाता हूँ। शामको प्रतिक्रमण करके आरामसे निद्रा लेता हूँ।'

श्रीमद्ने विनोदमें कहा :

'चाय और नास माँग लाना तथा आहार-पानी करके सो जाना क्या इसका नाम दर्शन, ज्ञान और चारित्र?'

पश्चात् योग्य उपदेश देकर श्रीमद्ने श्री लल्लुजी महाराजको अनुरोध करते हुए कहा :

'दूसरे साधुओंका प्रमाद छुड़ाकर, पढ़ने तथा बाँचनेमें, स्वाध्याय, ध्यान आदि करनेमें काल व्यतीत कराना और तुम लोगोंको दिनमें एक बार आहार करना चाहिए, चाय और नास बिना कारणके हमेशा नहीं लाना। तुम संस्कृतका अभ्यास करना।'

इससे मुनि मोहनलालजीने कहा :

'महाराजश्री तथा श्री देवकरणजीकी अवस्था हो गई है और पढ़नेका योग भी कहाँसे बने?'

श्रीमद् बोले :

'योग बन आनेसे अभ्यास करना और वह हो सकता है। क्योंकि विक्टोरिया रानीकी वृद्धावस्था है फिर भी वह अन्य देशोंकी भाषाका अभ्यास करती है।'

७

एक समय गाँधीजी इंग्लैंडके मुख्य मंत्रीकी पत्नी मिसिस ग्लॅडस्टनकी उसके पतिप्रेमकी स्तुति श्रीमद्के सन्मुख करने लगे। गाँधीजीने कहीं पढ़ा था, प्रतिनिधियोंकी सभामें भी मिसिस ग्लॅडस्टन अपने पतिको चाय बनाकर पिलाती थीं। इस वस्तुका पालन यह नियमबद्ध दम्पतीके जीवनका एक नियम बन गया था।

श्रीमद्‌ यह सुनकर बोले :

'इसमें तुमको क्या महत्त्व दिखाई देता है? इसमें मिसिस ग्लॅडस्टनका पत्नीभाव या उनका सेवाभाव? यदि वह बाई ग्लॅडस्टनकी बहिन होती तो? अथवा उसकी स्वामीभक्त नौकरानी होती और उतने ही प्रेमसे चाय पिलाती तो? ऐसी बहनों और ऐसी नौकरानियोंके दृष्टान्त क्या हमको आज नहीं मिलेंगे? और नारीजातिके बदले ऐसा प्रेम नरजातिमें देखते तो तुमको सानंदाश्चर्य न होता? मैं जो कहता हूँ उसे सोचना।'

इस प्रसंगके विषयमें गाँधीजी लिखते हैं :

'रायचन्दभाई स्वयं विवाहित थे। उस समय तो मुझे उनका वचन कठोर लगा ऐसा स्मरण है, परन्तु उस वचनने मुझे लोहचुम्बकके समान पकड़ लिया। पुरुष-नौकरकी ऐसी स्वामिभक्तिकी कीमत पत्नीकी स्वामिभक्तिसे हजारगुना विशेष है, पति-पत्नीके बीचमें ऐक्य हो — अर्थात् उन दोनोंमें प्रेम हो, इसमें आश्चर्य नहीं है। नौकर और सेठके बीचमें वैसा प्रेम सीखना पड़ता है। प्रतिदिन कविके वचनका बल मुझमें बढ़ता दिखाई दिया।'

८

बम्बईमें एक बार श्रीमद्‌ राजचन्द्र और गाँधीजी दया-धर्मकी बातें कर रहे थे। चमडेका उपयोग करना चाहिए या नहीं, इसका विचार चल रहा था। अन्तमें दोनों इस मत पर आये कि चमडे विना तो नहीं चल सकता। खेती जैसे उद्योग तो चलने ही चाहिए। परन्तु और नहीं तो

चमड़ा सिर पर तो नहीं पहनें।

गाँधीजीने जरा छान-बीन करते हुए श्रीमद्से कहा:

'तुम्हारे सिरकी टोपीमें क्या है?'

श्रीमद् स्वयं तो आत्मचिन्तनमें लीन रहनेवाले थे। स्वयं क्या पहिनते हैं, क्या ओढ़ते हैं, इसका विचार करने वे नहीं बैठते थे। सिरकी टोपीमें चमड़ा है, यह उन्होंने नहीं जाना था। गांधीजीने कहा और उन्होंने तुरन्त टोपीमेंसे चमड़ा निकालकर फेंक दिया।

इस प्रसंगके विषयमें गांधीजी लिखते हैं:

'मुझे कुछ ऐसा नहीं लगता कि मेरा तर्क इतना प्रबल था कि उन्हें इतना असर करे। उन्होंने तो कोई दलील ही नहीं की। उन्होंने विचारा होगा कि इनका हेतु उत्तम है, मुझ पर पूज्यभाव रखते हैं, इनके साथ चर्चा क्या करूँ? उन्होंने तो शीघ्र ही चमड़ा निकाल डाला।

'इसमें ही महापुरुषोंका महत्त्व है। उनमें मिथ्याभिमान नहीं होता, यों यह प्रसंग सिद्ध करता है। वालकसे भी वे सीख लेनेको तैयार रहते हैं। वड़े मनुष्य छोटी वावतोंमें मतभेद नहीं रखते।'

९

बम्बईमें श्रीमद्के एक व्यापारी पडोसीने श्रीमद्के अतिशय और स्वाध्यायका रंग देखकर एक वार पूछा:

'तुम सारे दिन धर्मकी धुनमें रहते हो, तो वाजारमें सभी चीजोंका क्या भाव होगा यह पहलेसे जान सकते होंगे?'

श्रीमद्ने कहा :

'क्या हमारे दिन रूठे हैं जो भाव जाननेके लिए स्वाध्याय करें!'

१०

पदमशीभाई नामके एक कच्छीभाईने बम्बईमें श्रीमद्से पूछा :

'साहब, मुझमें भयसंज्ञा विशेष रहती है, उसका क्या उपाय?'

श्रीमद्ने सामने प्रश्न पूछा :

'मुख्य भय किस बातका रहता है?'

पदमशीभाईने कहा—

'मरणका।'

इससे श्रीमद् राजचन्द्र बोले :

'वह तो आयुके बन्ध अनुसार होता है। आयुकी सम्पूर्णता तक तो मरण नहीं है, तब अनेक प्रकारका भय करनेसे क्या होने वाला है? ऐसा दृढ़ मन रखना।'

११

एक जिज्ञासुने श्रीमद्से प्रश्न किया :

'शास्त्रमें पृथ्वीको सपाट कहा है और आजकल अन्वेषक गोल कहते हैं, इसमें कौन-सी बात सत्य है?'

श्रीमद्ने उससे प्रश्न किया :

'यदि पृथ्वी सपाट हो तो तुमको लाभ या गोल हो तो तुमको लाभ?'

जिज्ञासुने कहा : 'मैं यही जानना चाहता हूँ।'

श्रीमद्‌ने फिर पूछा :

'तुम भगवान् तीर्थंकरमें अधिक शक्ति मानते हो या आजकलके शोधकोंमें ?'

जिज्ञासुने प्रगट किया — 'श्री तीर्थंकर भगवानमें।'

श्रीमद् बोले :

'तो तीर्थंकर भगवानके वचनोंमें श्रद्धा रखो और अपनी शंका निकाल डालो। यदि आत्माका कल्याण करोगे तो, तुमको पृथ्वी सपाट या गोल जैसी भी होगी, वह कुछ नुकसान नहीं करेगी।'

१२

प्रो. रवजीभाई देवराजजीने श्रीमद्‌से प्रश्न किया :

'स्वर्ग-नरकका प्रमाण क्या ?'

श्रीमद् बोले —

'नरक हो और तुम न मानो, तो जिन कामोंसे मनुष्य नरकमें जाता है, वैसे काम यदि करो तो यह कितना दुःसाहस है?'

१३

खंभातवाले श्री त्रिभोवनदासभाई बम्बई जाते तब श्रीमद्‌का समागम करने उनके घर पर जाते थे।

एक समय श्रीमद्‌ने अपनी पुत्री काशीबहिन, जो तीन वर्षकी थी, उसे खिलाते हुए पूछा : 'तू कौन है?'

काशीबहिनने कहा — 'मैं काशी हूँ।'

श्रीमद्‌ने कहा — 'नहीं, तू तो आत्मा है।'

काशीबहिन बोल उठी — 'नहीं, मैं तो काशी हूँ।'

इतनेमें श्री त्रिभोवनदासभाई वहाँ आ पहुँचे। श्रीमद्ने उनसे कहा :

'इसे अभी तीन वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। मेरा नाम काशी है, इस समझके संस्कार तो थोडे समयके हैं, फिर भी इसे हम कहते हैं कि तू आत्मा है, तो यह कहती है कि नहीं, मैं तो काशी हूँ। ऐसी बाल-दशा है।'

१४

दिगम्बर पण्डित श्री गोपालदासजी बरैयाने एक समय श्रीमद् दिगम्बर मन्दिरमें स्वाध्याय कर रहे थे उस समय कहा :

'"गोमट्टसार"के अनुवादमें जो त्रुटियाँ मालूम देती हैं, उन्हें आप पूर्ण कर देंगे?'

श्रीमद् बोले :

'हम तो शास्त्र मात्र आत्माके लिए बांचते हैं।'

१५

एक समय मुनीश्री लल्लुजीने बातचीतमें श्रीमद्से कहा :

'मैंने साधनसम्पन्न कुटुम्ब, वैभव, वृद्ध माता, दो स्त्रियाँ, एक पुत्र आदिका त्याग कर दीक्षा ली है।'

उनके त्यागके गर्वको दूर करनेके लिए श्रीमद् गरजकर बोल उठे :

'क्या छोड़ा है? एक घर छोड़कर कितने घर (श्रावकोंके) गले डाले हैं? इन दो स्त्रियोंका त्याग कर कितनी स्त्रियोंके प्रति दृष्टि घूमती है? एक पुत्र छोड़कर

कितने लड़कोंके प्रति प्रीति होती है?'

यह सुनकर श्री लल्लुजीको अपने दोष प्रगट दिखाई देनेसे इतनी अधिक शर्म आई कि यदि पृथ्वी अवकाश दे तो उसमें समा जाये। ऐसी नम्रता प्रगट करते हुए मुनिश्रीने श्रीमद्से कहा:

'मैं त्यागी नहीं हूँ!'

वहाँ तो श्रीमद् राजचन्द्र बोले:

'मुनि, अब तुम त्यागी हो।'

१६

मुनिश्री देवकरणजी श्रीमद्से जब प्रथम बार मिले उस समय उन्होंने श्रीमद्को 'सूयडाँग सूत्र'के वीर्याध्ययनकी बाईस-तेईसवीं गाथा बताकर कहा—'जहाँ गाथामें "सफल" है यदि वहाँ "अफल" हो, और जहाँ "अफल" है वहाँ "सफल" हो तो गाथाका अर्थ बराबर बैठता है। तो क्या इन गाथाओंमें लेखदोष है या वे बराबर हैं?'

जे अबुद्धा महाभागा वीरा असंमत्तदंसिणो।
असुद्धं तेसिं परक्कंतं सफलं होई सव्वसो॥
जे य बुद्धा महाभागा वीरा संमत्तदंसिणो
सुद्धं तेसिं परक्कंतं अफलं होई सव्वसो

इन गाथाओंको देखकर श्रीमद् बोले:

'लेखदोष नहीं है, बराबर है। उसका भाव

नहीं लगता अर्थात् निर्जरा होती है। एक (मिथ्यादृष्टि)की क्रिया संसारहेतुक फलवाली है और दूसरे (सम्यग्दृष्टि)की क्रिया संसारहेतुक फलवाली नहीं है। इस प्रकार परमार्थ समझना योग्य है।'

सभीको वह अर्थ रुचिकर हुआ। बहुत समयसे संशय रहा करता था, उसका समाधान हुआ। श्री देवकरणजीको लगा कि श्रीमद् महाबुद्धिशाली हैं और जैसा श्री लल्लुजी कहते थे वह सत्य है।

१७

एक समय श्रीमद् ईडर पहाडके ऊपरकी एक विशाल शिला पर बैठकर श्री लल्लुजी आदि सात मुनियोंके साथ ज्ञानवार्ता कर रहे थे। उस समय श्रीमद्ने उनके सामने एक प्रश्न उपस्थित किया 'हमलोग इतने ऊँचे पर बैठे हैं, तो क्या नीचेका कोई आदमी हमको देख सकता है?'

श्री लल्लुजी महाराजने कहा: 'ना, नहीं देख सकता।'

इससे श्रीमद्ने कहा:

'उसी प्रकार नीचेकी दशावाला जीव ऊँची दशावाले ज्ञानीका स्वरूप यथार्थ नहीं जान सकता। परन्तु यदि योग्यता आये तथा उच्च दशाको प्राप्त हो तो जान सकता है।'

१८

एक वार मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्से पूछा:

'यदि कोई हमसे पूछे कि कौनसी प्रतिक्रमण करते हो, तो उस समय हमें क्या कहना चाहिए?'

कितने लड़कोंके प्रति प्रीति होती है?'

यह सुनकर श्री लल्लुजीको अपने दोष प्रगट दिखाई देनेसे इतनी अधिक शर्म आई कि यदि पृथ्वी अवकाश दे तो उसमें समा जाये। ऐसी नम्रता प्रगट करते हुए मुनिश्रीने श्रीमद्से कहा:

'मैं त्यागी नहीं हूँ!'

वहाँ तो श्रीमद् राजचन्द्र बोले:

'मुनि, अब तुम त्यागी हो।'

१६

मुनिश्री देवकरणजी श्रीमद्से जब प्रथम बार मिले उस समय उन्होंने श्रीमद्को 'सूयडाँग सूत्र'के वीर्याध्ययनकी बाईस-तेईसवीं गाथा बताकर कहा—'जहाँ गाथामें "सफल" है यदि वहाँ "अफल" हो, और जहाँ "अफल" है वहाँ "सफल" हो तो गाथाका अर्थ बराबर बैठता है। तो क्या इन गाथाओंमें लेखदोष है या वे बराबर हैं?'

जे अबुद्धा महाभागा वीरा असंमत्तदंसिणो।
असुद्धं तेसिं परक्कंतं सफलं होई सव्वसो॥
जे य बुद्धा महाभागा वीरा संमत्तदंसिणो।
सुद्धं तेसिं परक्कंतं अफलं होई सव्वसो॥

इन गाथाओंको देखकर श्रीमद् बोले:

'लेखदोष नहीं है, बराबर है। उसका भावार्थ ऐसा है कि, मिथ्यादृष्टिकी क्रिया "सफल" है—फल सहित है, अर्थात् उसमें पुण्य-पाप (रूपी) फल लगता है। सम्यग्-दृष्टिकी क्रिया "अफल" है—फल रहित है, उसमें फल

नहीं लगता अर्थात् निर्जरा होती है। एक (मिथ्यादृष्टि)की क्रिया संसारहेतुक फलवाली है और दूसरे (सम्यग्दृष्टि)की क्रिया संसारहेतुक फलवाली नहीं है। इस प्रकार परमार्थ समझना योग्य है।'

सभीको वह अर्थ रुचिकर हुआ। बहुत समयसे संशय रहा करता था, उसका समाधान हुआ। श्री देवकरणजीको लगा कि श्रीमद् महाबुद्धिशाली हैं और जैसा श्री लल्लुजी कहते थे वह सत्य है।

१७

एक समय श्रीमद् ईडर पहाडके ऊपरकी एक विशाल शिला पर बैठकर श्री लल्लुजी आदि सात मुनियोंके साथ ज्ञानवार्ता कर रहे थे। उस समय श्रीमद्ने उनके सामने एक प्रश्न उपस्थित किया 'हमलोग इतने ऊँचे पर बैठे हैं, तो क्या नीचेका कोई आदमी हमको देख सकता है?'

श्री लल्लुजी महाराजने कहा: 'ना, नहीं देख सकता।'

इससे श्रीमद्ने कहा:

'उसी प्रकार नीचेकी दशावाला जीव ऊँची दशावाले ज्ञानीका स्वरूप यथार्थ नहीं जान सकता। परन्तु यदि योग्यता आये तथा उच्च दशाको प्राप्त हो तो जान सकता है।'

१८

एक वार मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्से पूछा:

'यदि कोई हमसे पूछे कि कौनसी प्रतिक्रमण करते हो, तो उस समय हमें क्या कहना चाहिए?'

श्रीमद्ने कहा:

'तुमको कहना चाहिए कि पापसे निवृत्त होना हमारा प्रतिक्रमण है।'

१९

मोरवीका रहनेवाला लल्लु नामका एक नौकर वहुत वर्षोंसे श्रीमद्के यहाँ काम करनेके लिए रहा था।

बम्वईमें उसे गाँठ निकली। उस समय श्रीमद् स्वयं उसकी सार-संभाल रखते थे। अपनी गोदमें उसका सिर रखकर अन्त समय (मरण) तक उसकी उन्होंने सेवा-टहल की थी।

एक समय श्रीमद्ने वार्तालाप करते हुए कहा था:

'जव सेठ किसीको वेतन देकर नौकरके रूपमें रखता है, तव उससे वह सेठ नौकरके वेतनसे अधिक काम लेनेकी वुद्धि करता है। नौकरी करनेवाला मनुष्य गरीव स्थितिका होनेसे वह बेचारा व्यापारादि नहीं कर सकता। यद्यपि वह व्यापारादि कर सकता है, परन्तु धनके अभावमें नौकरी करता है।

'यदि सेठ नौकरके पाससे वेतनकी अपेक्षा विशेष लाभ प्राप्त करनेकी बुद्धि रखता है तो वह सेठ उस नौकरसे भी भीख माँगनेवाले जैसा पामर माना जाता है। सेठ यदि नौकरके प्रति ऐसी भावना रखे कि यह भी मेरे समान हो, सेठ उसे योग्य सहायता देता रहे, यदि उस पर कामका भार विशेष हो तो उस समय काममें सहायक बने इत्यादि दयाके भाव हों तो वह सेठ उत्तम माना जाता है।'

२०

एक दिन शामको भोजन करके श्रीमद् राजचन्द्र सेठ त्रिभुवनदास भाणजीके साथ बम्बईके चर्चगेट विस्तारमें आये हुए बैन्ड-स्टेन्डकी ओर घूमने गये थे।

वहाँ कितनी ही धर्मचर्चा करनेके बाद त्रिभुवनदास-भाईने प्रश्न किया:

'एक जैनकी प्रामाणिकता कैसी होनी चाहिए?' उसके उत्तरमें श्रीमद्ने समीप आये हुए बम्बईके हाईकोर्टका बुर्ज बताते हुए कहा:

'सामने दूर जो हाईकोर्ट दिखाई दे रहा है, उसमें बैठनेवाले न्यायाधीशकी जैसी प्रामाणिकता होती है उससे एक जैनकी प्रामाणिकता कम तो नहीं होनी चाहिए। मतलब कि इसकी प्रामाणिकता इतनी अधिक विशाल होनी चाहिए कि उसके विषयमें किसीको किसी प्रकारकी शंका न हो। इतना ही नहीं, परन्तु यदि उसे कोई अप्रामाणिक कहे तो सुननेवाला भी उस बातको सत्य न माने, ऐसी उसकी प्रामाणिकता सर्वत्र प्रसिद्ध होनी चाहिए।'

२१

एक समय सेठ त्रिभुवनभाई, श्री माणिकलाल आदि भोजन करनेके लिए बैठे थे। श्रीमद् भी उन लोगोंके साथ भोजनमें थे।

पहले भिन्न-भिन्न प्रकारके शाक परसनेमें आये। एक गृहस्थने तिथिका कारण बताकर शाक नहीं लिया। रायता भी द्विदलका कारण बताकर नहीं लिया। बादमें अन्य

कितने ही खाद्य पदार्थ परसे गये। उनमेंसे उन्होंने कुछ लिए और कुछ नहीं लिए।

अन्तमें दूधपाक परसनेमें आया। उस गृहस्थकी थालीमें वह परसा जा रहा था, वहाँ तो उसे रोककर श्रीमद् बोले:

'इन्हें दूधपाक मत परसो। इन्हें छोटी-छोटी वस्तुओंका त्याग कर अपनी महत्ता बढ़ानी है, परन्तु यथार्थमें रस-पोषक वस्तुका त्याग नहीं करना है!'

२२

एक दिन कितने ही भाई श्रीमद्के साथ नीचे गद्दी पर बैठकर धर्मचर्चा कर रहे थे। उस समय दामनगरके एक वणिक सेठ आरामकुर्सीमें पडेपडे बीडी पी रहे थे। उन्होंने वहाँ बैठेबैठे कुछ चुटकुला सूझनेसे श्रीमद्से पूछा:

'रायचन्दभाई— मोक्ष कैसे प्राप्त हो?'

श्रीमद्ने कहा:

'तुम इस समय जिस स्थितिमें बैठे हो उसी स्थितिमें हाथ या पैर कुछ भी हिलाये-डुलाये बिना स्थिर हो जाओ, तो तुम्हारा यहींसे सीधा मोक्ष हो जायगा।'

यह सुनकर सेठ साहब घबराकर खडे हो गये और बीडी बाहर फेंककर, श्रीमद्के पास आकर धर्मवार्ता सुनने बैठ गये।

२३

एक बार काविठावाले शाह झवेरभाई भगवानभाईने श्रीमद्से पूछा:

'*समकिती की पहचान कैसे हो?'

श्रीमद्ने कहा:

'पहचानके लिए ज्ञानकी बहुत आवश्यकता है और चित्तकी निर्मलता चाहिए।'

२४

एक बार श्री व्रजभाई गंगादास पटेल काविठासे उत्तरसंडा श्रीमद्का उपदेश सुनने और उनके दर्शन करने आये थे। उपदेश सुननेके लिए आये हुए गाँवके पाटीदारोंने अपनी बराबरमें बैठे हुए व्रजभाईसे पूछा: 'ये कौन हैं?'

व्रजभाईने कहा: 'ववाणियाके सेठ हैं।'

इस बातकी कौन जाने श्रीमद्को कैसे खबर पड़ गई। श्रीमद्ने व्रजभाईको पास बुलाकर पूछा:

'तुमने क्या कहा?'

व्रजभाईको तत्काल अपनी भूलका भान आया। श्रीमद् जैसे आध्यात्मिक पुरुषकी इस प्रकारसे पहचान नहीं कराई जाती यह बात उनके ध्यानमें आई। क्षमायाचना करते हुए वे बोले, 'मैं भूल गया!'

२५

एक बार श्रीमद्ने व्रजभाईसे पूछा:

'तुम्हें कौन-सा शाक अधिक अच्छा लगता है?'

व्रजभाईने कहा:

'सेमकी फली।'

* जिसे समकित–सम्यग्दर्शन–आत्मज्ञान हुआ है ऐसा व्यक्ति।

श्रीमद् बोले:

'सेमकी फली जीवनभर मत खाना।'

२६

श्रीमद् सं. १९५२में पेटलादसे काविठा पधारे थे।

एक दिन झवेरभाईके छज्जे पर श्री प्रागजीभाई नामके एक भाईने श्रीमद्का उपदेश सुनकर उनसे कहा:

'भक्तिकी तो बहुत इच्छा है, परन्तु भगवानने पेट दिया है, उसे खानेको चाहिए इस लिए क्या करें, लाचार हैं।'

श्रीमद्ने पूछा:

'तुम्हारे पेटको हम उत्तर दें तो?'

यों कहकर श्रीमद्ने झवेरभाई सेठसे अनुरोध करते हुए कहा:

'तुम जो भोजन करते हो, वह इन्हें दोनों समय देना और पानीकी मटकी दे देना। और ये इस उपाश्रयके मेडे पर बैठेबैठे भक्ति करते रहें, परन्तु शर्त इतनी कि नीचे किसीकी वरयात्रा निकलती हो अथवा स्त्रियाँ गीत गाती हुई जाती हों तो भी बाहर न देखें। संसार सम्बन्धी बातें न करें। कोई भक्ति करने आये तो भले आये, परन्तु और किसी प्रकारकी बातचीत न करें तथा न सुनें।'

यह सुनकर प्रागजीभाई बोल उठे:

'इस प्रकार तो हम नहीं रह सकते।'

इससे श्रीमद् बोले:

'इस जीवको भक्ति नहीं करना है, इससे पेटको सामने धरता है। भक्ति करनेसे कौन भूखों मरा है? जीव

इस प्रकार ठगा जाता है।'

२७

ईडरके पहाड़ पर श्रीमद् सात मुनियोंसे ज्ञानवार्ता करते थे, उस समय एक दिन श्रीमद्का अद्भुत वैराग्यप्रेरक उपदेश सुनकर आत्मोल्लासमें आकर श्री देवकरणजी महाराज बोल उठे: 'अव हमें गाँवमें जानेकी क्या आवश्यकता है?'

श्रीमद्ने कहा: 'तुमसे कौन कहता है कि गाँवमें जाओ?'

श्री देवकरणजीने कहा: 'क्या करें? पेट लगा है।'

यह सुनकर श्रीमद्ने कहा:

'मुनियोंका पेट जगतके कल्याणार्थ है। यदि मुनियोंके पेट न होता तो वे गाँवमें न जाकर पहाडोंकी गुफामें रह-कर केवल वीतरागभावपूर्वक जंगलमें विचरते। इस प्रकार वे जगतको कल्याणरूप नहीं होते। इस लिए मुनिका पेट जगतके हितके लिए है।'

२८

एक समय काविठाके विद्यार्थी जंगलमें उपदेश सुननेके लिए आये थे।

श्रीमद्ने उनसे पूछा: 'वालको, मैं एक प्रश्न पूछता हूँ, तुम लोग उसका उत्तर दोगे?'

विद्यार्थियोंने कहा: 'हाँ, जी।'

श्रीमद्ने कहा: 'तुम्हारे एक हाथमें (छाश) मठ्ठेका भरा हुआ लोटा हो और दूसरे हाथमें घीका भरा लोटा हो और तुम्हें मार्गमें जाते हुए किसीका धक्का लगे तो उस समय तुम किस हाथके लोटेको संभालोगे?'

गिरधर नामके लड़केने कहा: 'घीका लोटा संभालेंगे।'

श्रीमद्ने पूछा: 'क्यों, घी और मट्ठा तो एक ही में से उत्पन्न होते हैं न?'

विद्यार्थीने कहा: 'यदि मट्ठा गिर जाय तो कोई भी अनेक वार भर देगा, परन्तु घीका लोटा कोई नहीं भरेगा।'

इस परसे श्रीमद् सार समझाते हुए बोले:

'मट्ठे जैसा ही यह देह है, इसे यह जीव संभालता है और घीकी तरह यह आत्मा है, उसकी यह चिन्ता नहीं करता, ऐसी उल्टी बुद्धिवाला यह जीव है। परन्तु यदि आत्माको घीके समान मूल्यवान मानें तो आत्माको भी संभाले और आपत्ति आये तब मट्ठेके समान देहकी चिन्ता न करे। कारण, देह तो स्वयमेव मिलेगी। कर्म–उपार्जन किये, इस लिए उन्हें भोगनेके लिए देह तो मुफ्तमें ही मिलनेवाली है।'

२९

एक समय श्रीमद् सायलासे सिकरम (एक प्रकारकी सवारी) में बैठकर निकले। साथमें श्री सौभागभाईके भानजे ठाकरशीभाई और श्री डुंगरशीभाई गोसलिया भी थे।

श्रीमद्ने डुंगरशीभाईसे कहा: 'क्यों डुंगरभाई, तुमने सौभागभाईसे जो कहा था वह वे हमें कहते थे कि "जिसके पास ज्ञान होता है उसके धन नहीं होता," इसका क्या अर्थ?'

डुंगरशीभाईने उत्तर दिया: 'आजकल ऐसा तो कुछ दिखाई नहीं देता। आपके पास ज्ञान है और धन भी है।'

फिर जवाहरोंकी पेटीमेंसे श्रीमद्, डुंगरशीभाईको जवाहर दिखाने लगे।

मार्गकी ऊँची नीची जमीनमें सिकरम डाँवाडोल होता था, इस लिए श्री डुंगरशीभाईने कीमती हीरे, मोती या बारीक नग गिर जायेंगे तो हाथ नहीं आयेंगे ऐसा भय प्रदर्शित करके, श्रीमद्‌से जवाहरोंको न निकालनेकी प्रार्थना की।

इससे श्रीमद् बोले: 'हमारा कुछ नहीं जानेवाला है, तुम चिन्ता न करो।' यों कहकर सभी जवाहर दिखाये और बोले:

'जिसे आत्मज्ञान है उसे जवाहरकी परीक्षा होना सुगम है।'

३०

श्रीमद् सं. १९५४में खेडा पधारे थे। रावबहादुर नरसीरामके बंगलेमें वे ठहरे थे।

वहाँ एक दिवस पण्डित पूजाभाई सोमेश्वर भट्ट श्रीमद्‌के पास आये। उस समय श्रीमद् एक पुस्तक पढ़ रहे थे। उस पुस्तकमेंसे एक श्लोक उन्होंने बारम्बार पढ़कर सुनाया। उस श्लोकका भावार्थ ऐसा था:

'मेरा चित्त शान्त हो जाय, मेरे चित्तकी वृत्तियाँ यहाँ तक शान्त हो जायें कि कोई मृग भी मुझसे अपने सींग घिसे, मुझे देखकर भाग न जाय।'

इस प्रसंगको श्रीमद् आनंदपूर्वक समझा रहे थे, इतनेमें रावबहादुर नरसीरामभाई वहाँ आ पहुँचे।

नरसीरामभाई वेदान्ती थे। श्रीमद् भी वेदान्तको मानते होंगे ऐसा मानकर उन्होंने आत्माके अभेदकी चर्चा छेडी, और अभेदता पर विवेचन करने लगे।

श्रीमद्‌ने न तो रावबहादुरके कथनका अनुमोदन किया और न कुछ विरोध ही व्यक्त किया, वे केवल चुपचाप ही रहे।

श्री पूजाभाई श्रीमद्‌का आशय समझ गये कि, जिस वृद्ध वकीलके बंगलेमें स्वयं उतरे हैं, उसे बुरा लगे ऐसा कुछ नहीं कहना चाहिए यह श्रीमद्‌का भाव था।

३१*

गुजरातके एक अग्रगण्य समाजसुधारक श्री महीपतराम रूपराम यह मानते थे कि जैन धर्मसे भारतवर्षकी अधोगति हुई है। एक बार श्रीमद्‌के साथ उनका मिलाप हुआ।

श्रीमद्‌ने पूछा: 'भाई, जैन धर्म अहिंसा, सत्य, ऐक्य, दया, सत्त्वानुकम्पा, सर्वप्राणिहित, परमार्थ, परोपकार, न्याय, नीति, आरोग्यप्रद आहार-पान, निर्व्यसन, उद्यम आदिका उपदेश करता है क्या?'

महीपतराम: 'हाँ।'

श्रीमद्: 'भाई, जैनधर्म हिंसा, असत्य, चोरी, वैर, क्रूरता, स्वार्थपरायणता, अनीति, अन्याय, छल-कपट, विरुद्ध आहार-विहार, भोग-विलास, विषयलालसा, आलस और प्रमादादिका निषेध करता है क्या?'

* यह प्रसंग श्री मनसुखभाई कीरतचन्दकी डायरीमेंसे लिया गया है।

महीपतरामने कहा: 'हाँ।'

श्रीमद् बोले: 'तब कहिये, देशकी अधोगति किससे होती है? अहिंसा, सत्य, ऐक्य, दया, परोपकार, परमार्थ, सत्त्वानुकम्पा, सर्वप्राणिहित, न्याय, नीति, आरोग्यप्रद और रक्षक शुद्ध आहारपान, निर्व्यसन और उद्यम आदिसे या इससे विपरीत हिंसा, असत्य, बैर, क्रूरता, स्वार्थपटुता, छल-कपट, अनीति, आरोग्यको बिगाडनेवाला तथा शरीर मनको अशक्त करनेवाला विरुद्ध आहारविहार, व्यसन, भोग-विलास, आलस प्रमाद आदिसे?'

महीपतराम: 'दूसरेसे अर्थात् अहिंसा, सत्य आदिसे विपरीत हिंसा, असत्य आदिसे।'

श्रीमद्: 'तव तो देशकी उन्नति दूसरेसे विपरीत अहिंसा, सत्य, निर्व्यसन, उद्यम, ऐक्य आदिसे हो न?'

महीपतराम: 'हाँ।'

श्रीमद्: तब जैनधर्म देशकी अधोगति हो ऐसा उपदेश करता है या उन्नति हो ऐसा?'

महीपतराम: 'भाई, मैं स्वीकार करता हूँ कि जैनधर्म, जिससे देशकी उन्नति हो ऐसे उपायोंका उपदेश करता है। इतनी सूक्ष्मतासे विवेकपूर्वक मैंने कभी विचार नहीं किया था। हमें तो बचपनमें पादरीकी पाठशालामें पढ़ते हुए ये संस्कार पडे, इस लिए विना विचार किये हमने कह दिया, लिख डाला।'

३२

एक दिन श्री ठाकरशीभाई लहेरचन्द शाहने कहीं पर श्रीमद्‌की निंदा होती सुनी। इससे शामको घूमने जाते समय मार्गमें उन्होंने श्रीमद्‌से इस विषयमें कहा।

यह सुनकर श्रीमद् बोले:

'दुनिया तो सदासे ऐसी ही है। ज्ञानीको उसके जीवनकालमें कोई नहीं पहचानता, यहाँ तक कि ज्ञानीके सिर पर लाठीमार पडे तो भी थोडी। और ज्ञानीके मरणके बाद उसके नामसे पत्थरको भी पूजते हैं।'

ॐ

१४

श्रीमद्की अमृत प्रसादी

श्रीमद् राजचन्द्रका समग्र जीवन हमें प्रेरणादायक ही है। परन्तु उनकी आत्मिक आभ्यन्तर अवस्थाका निचोड तो उनके प्रेरक लेखोंमें ही मूर्त स्वरूप पाता है। यही कृपालुदेवकी अमृत प्रसादी समान है। इनका जीवन-संदेश जीवनमें उतारनेके लिए इनके विपुल लेखोंका निष्ठापूर्वक नित्य मनन और अनुशीलन करना चाहिए।

श्रीमद्के लेख 'श्रीमद् राजचन्द्र' नामके विशाल ग्रन्थमें एकत्रित किये गये हैं। उसमें वयके अनुक्रमपूर्वक श्रीमद्का समस्त आभ्यन्तर जीवन हमारे सन्मुख तादृश खड़ा होता है। अपनी भाषामें, किसी साधकके आभ्यन्तर जीवनकी लेखवाली पुस्तकें बहुत कम हैं। इस दृष्टिसे 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थ अपने (गुजराती) साहित्यमें महत्त्वका अनोखा स्थान रखता है।

श्रीमद्की स्वतंत्र रचनायें, अनुदित रचनायें, जिज्ञासुओंको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमें अथवा अन्य किसी प्रसंग पर लिखे गये लेख या पत्र तथा स्वयमेव चिन्तवन करते हुए नोंध-

रूपसे लिखे गये या उनके उपदेशमेंसे उत्पन्न हुए सभी लेखोंका इस ग्रन्थमें संग्रह किया है। इन सभी लेखोंका सत्य परिचय प्राप्त करनेके लिए इस बृहद् ग्रन्थका अनुशीलन करना आवश्यक है। यहाँ तो हम मात्र इन सब लेखोंका संक्षिप्त परिचय ही देनेका प्रयत्न करेंगे।

श्रीमद्की सभी लिखाईका नीचे अनुसार विभाग किया जा सकता है :

१ मुमुक्षुओं पर लिखे गये पत्र।
२ स्वतंत्र काव्य।
३ मोक्षमाला, भावनाबोध, आत्मसिद्धिशास्त्र ये तीन स्वतंत्र ग्रन्थ।
४ मुनिसमागम, प्रतिमासिद्धि आदि स्वतंत्र लेख।
५ स्त्रीनीतिबोध विभाग–१, पुष्पमाला, बोधवचन, वचनामृत, महानीति आदि स्वतंत्र बोधवचनमाला।
६ पंचास्तिकाय ग्रन्थका गुजराती भाषान्तर।
७ श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारमेंसे तीन भावनाओंका अनुवाद, स्वरोदयज्ञान, द्रव्यसंग्रह, दशवैकालिक आदि ग्रन्थोंमेंसे कुछ गाथाओंका भाषान्तर, और आनन्दघन चौबीसीमेंसे कुछ स्तवनोंका अर्थ।
८ वेदान्त और जैन दर्शन सम्बन्धी नोंध।
९ उपदेश नोंध, उपदेश छाया, व्याख्यानसार १–२ (मुमुक्षुओं द्वारा ली गई नोंध)।
१० तीन हाथ नोंध—आभ्यन्तर परिणाम अवलोकन इत्यादि।

इस विविध सामग्रीमेंसे प्रारंभमें हम श्रीमद्की रची हुई स्वतंत्र पुस्तकोंका परिचय वयके क्रमसे देंगे।

'स्त्रीनीतिबोध विभाग-१': श्रीमद् द्वारा सोलह वर्षकी वयसे पहले लिखे गये लेखोंकी यह प्रथम पुस्तक है। उसकी प्रस्तावनामें श्रीमद्ने, स्त्रीशिक्षा बढ़ती जाय इसके साथ बांचनेकी रुचिकी वृद्धि हो इसके लिए, स्त्रियोंके योग्य अच्छी पुस्तकें लिखनेकी विद्वानोंसे विनती की है। पुराने विचारके लोगोंके स्त्रीशिक्षा पर किये आक्षेपोंका निराकरण किया है, उस समयमें प्रकाशित हुई स्त्रियोंके पढ़ने योग्य पाँचसात पुस्तकोंके नाम दिये हैं तथा स्त्रियोंके न सुधरनेका कारण बाल-विवाह, बेमेल विवाह, भ्रम और अज्ञान है ऐसा बताकर बाल-विवाहकी हानि विचारनेकी विनती की है।

स्त्रियोंमें गाये जानेवाले रागमें, गीत, धोल और गरवाकी पद्धतिके अनुसार चार विभाग कर उस पुस्तककी योजना की है। श्रीमद्ने 'स्त्रीनीतिबोध'के तीन विभाग लिखनेका विचार किया था। परन्तु दूसरे दो विभाग लिखे हुए मालूम नहीं देते। 'स्त्रीनीतिबोध' विभाग-१के अन्तमें श्रीमद्ने जाहिर खबरमें लिखा है कि—'काव्यमाला' नामकी एक सुनीतिबोधक पुस्तक रचकर मैंने तैयार की है। वह प्रकाशित हुई या नहीं, इसकी कोई जानकारी नहीं मिली। लिखी हुई प्रति भी उपलब्ध नहीं है।

नीति सम्बन्धी श्रीमद्के विचार बहुत ही गहरे थे, और उन्हें श्रीमद् समस्त आध्यात्मिकताका मूल मानते थे। इस

पुस्तकमें अनीति दूर हो और नीति-सदाचारके प्रति प्रेम हो उस प्रकारसे सत्य, शील, उद्यम, शिक्षण आदि विपयोंका, दो-तीन दर्जो तक पढ़कर उठ जानेवाली बडी आयुकी बहिनोंका भी पढ़नेमें मन लगे ऐसी सरल भापामें निरूपण किया है।

'पुष्पमाला': यह भी श्रीमद्की सोलह वर्पकी आयु पहलेका लेख माना जाता है। उसमें सूत्रात्मक वाक्योंकी शैलीसे, तथा मालाके समान नित्य आवर्तन किये जा सकें इस हेतुसे १०८ वाक्य लिखे हैं।

इस युगके नवीन युवकोंकी शिक्षामें सत्य शिक्षाकी जो त्रुटि है उसे दूर कर, उन्हें अयोग्य वांचनमेंसे बचाकर सन्मार्गमें प्रयाण करानेका इसका प्रयोजन है। यह कृति किसी विशिष्ट सम्प्रदायको अनुलक्ष करके नहीं, परन्तु सर्व-साधारण नीतिधर्म और कर्तव्यकी दृष्टिसे लिखी गई है। जिस प्रकार मालामें १०८ गुरिया होते हैं उसी प्रकार यह कृति १०८ नैतिक पुष्पोंसे गूंथी हुई और किसी भी धर्म, पन्थ या जातिके स्त्री अथवा पुरुषके गलेमें नित्य पहरने योग्य अर्थात् पढ़ने योग्य, चिन्तवन करने योग्य है।

'पुष्पमाला'के प्रारम्भमें, 'रात पूरी हुई, नया दिन आया, गत दिवस पर दृष्टि डाल जाओ, औ[illegible] [illegible]ल गये

बादमें राजा, श्रीमन्त, व्यापारी, बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री, कृपण, भाग्यशाली, धर्माचार्य, अनुचर, दुराचारी और दुःखी आदियोंको उनका कर्तव्य और मर्यादा बताकर, अपने-अपने कार्योंको करनेकी सूचना दी है।

इसके बाद, खान-पानमें मिताहारी होनेकी तथा काम-भोगोंमें संयमी होनेकी सूचना कर, जीवनमें अन्तिम लक्ष्यके प्रति भी दुर्लक्ष न करनेकी ओर ध्यान दिलाया है। धर्मका मूल सत्पुरुषोंका व्यवहार है, भिन्न-भिन्न धर्मोंमें मात्र दृष्टि-भेद है, तात्त्विक भेद नहीं है। धार्मिक जीवनके लिए अमुक मत या अमुक सम्प्रदायमें रहना आवश्यक नहीं है, परन्तु जिससे संसारमलका नाश हो उस प्रकारकी नीति, भक्ति और सदाचारकी जो क्रियायें हैं, उनके लिए कमसे कम आधा प्रहर भी समय अवश्य निकालना चाहिए ऐसा सूचित किया है। और जो वास्तविक आत्मचिन्तवन हुआ है उतना ही आजका दिन सफल हुआ है ऐसा कहकर, सोनेके समय फिर अपने कार्योंके हिसाब करनेकी सूचना करके माला—पुष्पमालाको पूरा किया है।

इस मालाके सूत्रात्मक वाक्य, पढ़नेवालेकी बाह्य वृत्तिको रोककर अपनेको आज या इसके बाद क्या करना है इस प्रकारके विचारोंमें प्रेरित करते हैं। पढ़नेवालेकी विचार-शक्तिको विकसितकर, शब्दसमूहके पीछे रहे हुए अर्थ और परमार्थके प्रदेशमें प्रवेश करनेकी प्रेरणा करते हैं। उनकी पुष्पमालाके वाक्य छोटे परन्तु तीक्ष्ण बाणकी तरह हृदयकी गहराईमें उतर जायें ऐसे हैं।

अन्तके १०८वें गुरियामें श्रीमद्जी लिखते हैं:

'लम्बी छोटी या क्रम अनुक्रम किसी भी प्रकारसे, यह मेरी कही हुई, पवित्रताके पुष्पोंसे भरी हुई माला प्रभातके समयमें, सायंकाल और अन्य अनुकूल निवृत्तिमें विचारनेसे मंगलदायक होगी। विशेष क्या कहूँ?'

'मोक्षमाला' श्रीमद्ने सोलह वर्ष पाँच मासकी वयमें तीन दिनमें रची थी।

मनुष्य अन्तर्मुख या बहिर्मुख चाहे जैसा हो, उसे व्यक्तिगत जीवन और सामुदायिक जीवनके लिए सामान्य नीतिकी आवश्यकता तो होती ही है। ऐसे व्यावहारिक नीतिके शिक्षणके लिए 'पुष्पमाला' रचनाके बाद श्रीमद्को अन्तर्मुख अधिकारियोंके लिए कुछ विशिष्ट लिखनेकी प्रेरणा हुई हो ऐसा मालूम देता है। इसमेंसे इन्होंने आध्यात्मिक जिज्ञासाको सन्तुष्ट करने तथा पुष्ट करनेके लिए इस कृतिको रचा और इसका नाम इसके उद्देश्य तथा विषयके अनुरूप 'मोक्षमाला' रखा। यह 'मोक्षमाला' बालावबोधके नामसे पहचानी जाती है। इसका दूसरा भाग 'प्रज्ञावबोध मोक्षमाला'को लिखनेका विचार श्रीमद्ने किया और उसमें लिखनेके लिए निश्चित किये हुए विषयोंकी सूची भी इन्होंने तैयार की थी।* परन्तु वे इस भागको नहीं लिख सके थे। 'मोक्षमाला'में चर्चित धर्मके विषय मुख्यतासे जैनधर्मको ही लक्ष्यमें रखकर लिए गये हैं। श्रीमद् स्वयं ही सं. १९५५में लिखते हैं:

* अिसके लिअे 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थ पत्रांक ९४६ सं. २००७वाली आवृत्तिमें देखिये।

'इसमें जैनमार्गको यथार्थ समझानेका प्रयास किया है। जिनोक्त मार्गसे इसमें कुछ भी न्यूनाधिक नहीं कहा है। वीतराग मार्ग पर आबालवृद्धकी रुचि हो, उसका स्वरूप समझमें आये, उसका बीज हृदयमें बोया जाय इस कारणसे उसकी बालावबोध रूपसे योजना की है।'

पुनः सं. १९५६में 'मोक्षमाला'की दूसरी आवृत्तिके समय प्रकाशकको दी हुई सूचनामें श्रीमद् द्वारा वताई गई एक दो बातें ध्यानमें लेने योग्य हैं।

'हमने "मोक्षमाला"के पाठ सोच-समझकर लिखे हैं। बने वहाँ तक श्रोताओं और पाठकोंको हमारे अभिप्रायमें लानेका लक्ष्य न रखना, उनके दिलमें अपना अभिप्राय उत्पन्न होने देना, अच्छे-बुरेकी तुलना श्रोताओं और पाठकों पर ही छोड़ देना। हमें उनको अपने अभिप्रायके अनुसार चलाकर, उनमें जो अभिप्राय स्वयं उग सके उसे रोक देना नहीं।'

ऐसी जीवनप्रेरक पुस्तकका अध्ययन किस प्रकार करना इस विषयमें श्रीमद्ने इस पुस्तकके प्रारंभमें जो लिखा है वह यथार्थमें उत्तम शिक्षारूप है।

'इसमें मध्यस्थतासे तत्त्वज्ञान और शीलके बोधका उद्देश है।....इस पुस्तकको प्रकाशित करनेका मुख्य हेतु आजकलके छोटे छोटे युवक अविवेकी विद्या प्राप्त कर आत्मसिद्धिसे भ्रष्ट होते हैं, उस भ्रष्टताको रोकनेका भी है।....वहुत गहराईसे विचारने पर यह 'मोक्षमाला' मोक्षका कारणरूप हो जायगी।

पाठक और वाचक वर्गसे यह मुख्य अनुरोध है कि शिक्षापाठको पढ़ जानेकी अपेक्षा जैसे बने वैसे मनन करना, उनके तात्पर्यका अनुभव करना, जिसकी समझमें न आते हों, उसे उन पाठोंको पाँचसात बार पढ़ जाना चाहिए। एक पाठको पढ़नेके बाद आधी घडी उस पर विचार करके अन्तःकरणसे पूछना कि क्या तात्पर्य हाथ आया? उस तात्पर्यमेंसे * हेय, ज्ञेय और उपादेय क्या है? ऐसा करनेसे समस्त ग्रन्थ समझमें आ सकेगा; हृदय कोमल होगा, विचारशक्ति विकसित होगी और जैन तत्त्व पर उत्तम श्रद्धा होगी।

'यह ग्रन्थ केवल पठन करने रूप नहीं, परन्तु मनन करने रूप है। अर्थरूप विद्याकी इसमें योजना की है। वह योजना "बालावबोध" रूप है, "विवेचन" और "प्रज्ञावबोध" भाग भिन्न है।'

'मोक्षमाला'का प्रथम पाठ भी 'वाचकसे अनुरोध' है। उसमें श्रीमद् सूचित करते हैं:

'बहुतसे अज्ञानी मनुष्य, नहीं पढ़ने योग्य पुस्तकोंको पढ़ कर अपने समयको व्यर्थ गुमा देते हैं, और कुमार्गमें लग जाते हैं। इस लोकमें वे अपकीर्ति पाते हैं तथा परलोकमें नीच गतिमें जाते हैं।

'तुमको एक यह भी सलाह है कि, जिनको पढ़ना नहीं आता हो, और यदि उसकी इच्छा हो तो उसको यह पुस्तक अनुक्रमसे पढ़कर सुनाना।

* छोड़ने योग्य, जानने योग्य और ग्रहण करने योग्य।

'इससे तुम्हारे आत्माका कल्याण हो, तुमको ज्ञान, शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति हो; तुम परोपकारी, दयालु, क्षमावान, विवेकी और बुद्धिशाली बनो, यह शुभ याचना अरहन्त भगवानसे करके यह पाठ पूर्ण करता हूँ।'

इस प्रकार श्रीमद्‌ने स्वयं ही विशदतासे इस पुस्तकका महत्त्व दिखाया है। और श्रीमद्‌ने एक बार बातचीत करते हुए कहा था कि:

'"मोक्षमाला" रचते समय हमारा वैराग्य "योग-वासिष्ठ"के वैराग्य प्रकरणमें जैसा श्री रामचन्द्रजीके वैराग्यका वर्णन है, उसी प्रकारका था। और सभी जैनागमोंका सवा वर्षके अन्दर अवलोकन कर लिया था। उस समय अद्‌भुत वैराग्य प्रवर्तमान था, और वह यहाँ तक कि हमने खाया है या नहीं, उसकी स्मृति भी हमें नहीं रहती थी।'

इस परसे भी विद्वान् पाठकोंको इस पुस्तककी अमूल्यताका विचार आ सकता है। कथा और उदाहरणोंसे रुचिकर बनाये गये १०८ शिक्षापाठोंका भावपूर्वक मनन-चिन्तवन अपने जीवनको मोक्षाभिलाषी बनानेमें सहायरूप हो सकता है।

'भावनाबोध' पुस्तक सं. १९४२में श्रीमद्‌ने बनाई थी 'मोक्षमाला' सं. १९४०में लिखी थी और सं. १९४४में छपकर प्रकाशित हुई। चार वर्षके विलम्बको देखकर श्रीमद्‌ने पहलेसे बने ग्राहकोंको 'भावनाबोध' पुस्तक, प्रकाशित करके उस समय भेंटमें दी थी।

'भावनाबोध' ग्रन्थ छोटा है तो भी वैराग्यसे भरपूर

है। अध्यात्मजीवन व्यतीत करनेकी इच्छावालेको जिन बारह भावनाओंको जीवनमें दृढ़ करनी हैं, वे भावनायें रोचक दृष्टान्तोंसे समझाई हैं। कथाओं द्वारा भावनाओंका वर्णन किया है इस लिये चित्ताकर्षक और गहरी असर करे ऐसा आन्नददायक यह छोटा ग्रन्थ है। सुपात्रता प्राप्त करनेका और क्रोध, लोभ, मोहादि विकारोंको दूर करनेका यह ग्रन्थ अत्युत्तम साधन है।

श्रीमद्‌ने इस ग्रन्थके संक्षिप्त उपोद्‌घातमें यथार्थ सुख, महात्माओंका ज्ञान और मुख्यतासे भगवान् महावीरका मानने योग्य उपदेश, इन सबका उपदेश एक मोक्षके लिए है ऐसा बताकर मोक्षमालामें 'बारह भावना'वाला लिखा हुआ पाठ रखा है। बादमें दोनों ग्रन्थोंका प्रयोजन संक्षेपमें बहुत अच्छी तरहसे प्रदर्शित किया है।

उत्तम तत्त्वज्ञान और परम (सु)शीलका उपदेश करने-वाले पुरुष कुछ कम नहीं हुए हैं, तथा यह ग्रन्थ उससे उत्तम या समानरूप भी नहीं है, परन्तु विनयरूपसे उन उपदेशकोंके धुरन्धर प्रवचनोंके सामने कनिष्ठ है। यह भी प्रमाणभूत है कि प्रधान पुरुषके समीप अनुचरकी आवश्यकता है उसी प्रकार धुरन्धर ग्रन्थोंका उपदेश—बीज रोपनेके लिए, अन्त:करणको कोमल करनेके लिए ऐसे ग्रन्थोंका प्रयोजन है।

तत्त्वज्ञान तथा सुशीलकी प्राप्तिके लिए और फलमें अनन्त सुखतरंग प्राप्त करनेके लिए जो-जो साध्य-साधन श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्रने प्रकाशित किये हैं, उनका स्वल्पतासे लेशमात्र तत्त्व संचय करके, उसमें महापुरुषोंके छोटे-छोटे

चरित्र एकत्रित करके इस 'भावनाबोध' तथा 'मोक्षमाला'को विभूषित किया है, वह 'विदग्ध मुखमंडनं भवतु।' अर्थात् विद्वानोंके मुखको सुशोभित करे।

ये बारह भावनायें नीचे अनुसार हैं:

१ अनित्यभावना: शरीर, वैभव, लक्ष्मी, कुटुम्ब परिवार आदि सभी विनाशी हैं। जीवका मूल धर्म अविनाशी है, इस प्रकार चिन्तवन करना पहली अनित्य-भावना है।

२ अशरणभावना: संसारमें मरणके समय जीवको शरण देनेवाला कोई नहीं है। मात्र एक शुभ धर्मकी ही शरण सत्य है। इस प्रकारका चिन्तवन दूसरी अशरणभावना है।

३ संसारभावना: इस आत्माने संसार-समुद्रमें पर्यटन करते हुए सभी भवोंको धारण किया है। इस संसारकी जंजीरसे मैं कब छूटूँगा? यह संसार मेरा नहीं है, मैं तो मोक्षमय हूँ। ऐसा चिन्तवन करना तीसरी संसारभावना है।

४ एकत्वभावना: यह मेरा आत्मा अकेला है, वह अकेला आया है और अकेला जायगा तथा अपने किये हुए कर्मोंका फल भी अकेले ही भोगेगा। अन्तःकरणसे ऐसा चिन्तवन करना चौथी एकत्वभावना है।

५ अन्यत्वभावना: इस संसारमें कोई किसीका नहीं है, ऐसा चिन्तवन करना पाँचवीं अन्यत्वभावना है।

६ अशुचिभावना: यह शरीर अपवित्र है, मलमूत्रकी

खान है, रोग और जराके रहनेका धाम है। मैं इस शरीरसे न्यारा हूँ, ऐसा चिन्तवन करना छठी अशुचिभावना है।

७ आस्रवभावना: राग, द्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व इत्यादि सभी आस्रव हैं, ऐसा चिन्तवन करना सातवीं आस्रवभावना है।

८ संवरभावना: ज्ञान, ध्यानमें प्रवृत्ति करके जीव नये कर्म न बांधे, यह आठवीं संवरभावना है।

९ निर्जराभावना: ज्ञान सहित क्रिया करना निर्जराका कारण है। इस प्रकार चिन्तवन करना नववीं निर्जराभावना है।

१० लोकस्वरूपभावना: चौदहराज लोकके स्वरूपका विचार करना दसवीं लोकस्वरूपभावना है।

११ बोधिदुर्लभभावना: संसारमें परिभ्रमण करते हुए आत्माको सम्यग्ज्ञानकी प्रसादीकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। यदि सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ तो चारित्र–सर्वविरति परिणामरूप धर्मका पाना कठिन है, ऐसा चिन्तवन करना ग्यारहवीं बोधिदुर्लभभावना है।

१२ धर्मदुर्लभभावना: धर्मके उपदेशक तथा शुद्धशास्त्रके बोधक गुरु और उनके उपदेशका श्रवण प्राप्त होना दुर्लभ है, ऐसा विचार करना बारहवीं धर्मदुर्लभ-भावना है।

श्रीमद् केवल गद्यके ही लेखक नहीं हैं, उन्होंने कवितायें भी बनाई हैं। उस समय उन्हें बहुतसे जैन 'कवि'के

नामसे ही पहचानते थे। और कितने ही लोग आज भी उनके अनुगामी वर्गको कविसम्प्रदायवाला कहते हैं।

श्रीमद्की कविताओंके देखनेसे ऐसा लगता है कि, कवित्वका बीज—वस्तुस्पर्श, प्रतिभा तथा अभिव्यक्ति सामर्थ्य उनमें था। उनकी कविता उनके अन्य गद्य लेखोंके समान आध्यात्मिक विषयको स्पर्श करनेवाली है। उनकी कविताकी भाषा प्रवाहबद्ध है। सहजभावसे सरलतापूर्वक प्रतिपाद्य विषयको अपनाकर, यह प्रवाह कहीं जोशबन्द तो कहीं चिन्तन-सुलभ गंभीर गतिसे बहता जाता है। इनकी प्रायः सभी कवितायें जैन सम्प्रदायकी भावनाओंके तात्त्विक मूलको स्पर्श करके रची गई हैं। जिस प्रकार आन्नदघन, देवचन्द्र और यशोविजयके कुछ पद्य भावकी सूक्ष्मता और कल्पनाकी उच्चगामिताके कारण तत्कालीन गुजराती साहित्यमें सुशोभित हैं फिर भी वे सभी पद्य जैन सम्प्रदायकी ही वस्तुका स्पर्श करते हैं वैसा ही श्रीमद्के पद्योंके सम्बन्धमें कहा जा सकता है।

जिस समय श्रीमद्ने 'मोक्षमाला' 'पुष्पमाला' आदि ग्रन्थ वनाये उसी मौके पर उन्होंने संस्कृत महाकाव्योंके नियमानुसार 'नमिराज' नामका एक काव्यग्रन्थ लिखा है। उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंका उपदेश कर अन्तमें मोक्षमार्गका वर्णन किया है। यह पाँच हजार श्लोकवाला ग्रन्थ उन्होंने छ दिनमें तैयार किया था। परन्तु इस समय यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। और वह छपा

था या नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता।*

सत्रह या अठारह वर्षकी वयमें श्रीमद् द्वारा लिखे गये दृष्टान्तिक दोहे लगभग अस्सी जितनी संख्यामें प्राप्त हुए हैं जो 'श्रीमद् राजचन्द्र' बृहद् ग्रन्थकी पाँचवीं आवृत्तिमें प्रकाशित हैं। इन दोहोंमें नीतिव्यवहारकी शिक्षा मुख्य है। प्रायः प्रत्येक दोहेमें प्रथम सिद्धान्त बताकर बादमें उसे पुष्ट करनेवाला दृष्टान्त दिया है। जैसे कि:

'फरी फरी मळवो नथी, आ उत्तम अवतार;
काळी चौदश ने रवि, आवे कोईक वार।'
'वचने वल्लभता वधे, वचने वाधे वेर;
जळथी जीवे जगत आ, कदी करे पण केर।'
'होय सरस पण चीज ते, योग्य स्थळे वपराय;
केम कटारी कनकनी, पेट विषे घोंचाय?'

अर्थात् यह उत्तम (मनुष्य) अवतार बारम्बार नहीं मिलता। जैसे कि काली (कृष्ण) चौदस और रविवार कभी कभार ही आते हैं।

वचनसे प्रियता बढ़ती है, वचनसे बैर बढ़ता है। जैसे कि जलसे समस्त जगत जीवित है और कभी वही जल हाहाकार करा देता है।

उत्तम वस्तु भी योग्य स्थानमें ही काममें लानी चाहिए। जैसे कि सोनेकी कटारी पेटमें नहीं भोंकी जाती।

* इस ग्रंथका मात्र उल्लेख सं. १९४३में प्रकाशित पुस्तिका 'साक्षात् सरस्वती'में मिलता है।

'वुद्धिप्रकाश' नामकी पत्रिकामें ई. स. १८८५में 'शूरवीर-स्मरण' नामके श्रीमद् द्वारा लिखे गये चौवीस सवैये प्रकाशित हुए हैं। उस परसे उनकी छटादार भाषा, जोशीली शैली और कवित्वका ख्याल आता है। उदाहरणके तौर पर:

'ढाल ढलकती, झबक झबकती, लई चलकती कर करवाल,
खरेखरा खूंदे रणमां त्यां, मूछ मलकती झगतुं भाल;
वेरीने घेरी लेता झट, भरतभूमिना जय भडवीर,
अरे, अरेरे, आज गया क्यां, रढियाला एवा रणधीर?'

भावार्थ: जिनकी पीठ पर ढाल लटकती थी, जो हाथमें एकदम झिलमिलाती चमकती तलवार धारण करते थे; जो रणमें शत्रुओंको बराबर रौंद डालते थे, जिनकी मूंछें मुसकराती थीं, मस्तक देदीप्यमान था; जो वैरियोंको शीघ्र ही घेर लेते थे, भारतभूमिके वे योद्धा जय प्राप्त करते थे। परन्तु अरेरे! आज ऐसे रणधीर कहाँ चले गये!

तीस वर्षकी आयुमें लिखा गया 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?' इस ध्रुवपदवाले श्रीमद्‌के प्रसिद्ध काव्यका हम यहाँ उल्लेख करते हैं। यह काव्य 'आश्रम भजनावली'में स्थान-प्राप्त होनेसे, केवल जैन या गुजराती जनतामें ही नहीं, परन्तु गुजरातीको थोडे या अधिक अंशमें समझनेवाले वर्गमें भी प्रसिद्ध हुआ है और होता जा रहा है। यह काव्य ऐसे आत्मिक उल्लासमें लिखा गया है कि वह पढ़नेवालेको भी शान्ति प्रदान करता है।

'श्री आत्मसिद्धिशास्त्र' यह अध्यात्म विषयक पद्यग्रन्थ

श्रीमद्ने उन्तीस वर्षकी वयमें एक ही आसनसे १४२ दोहोंमें रचा था।

'श्री आत्मसिद्धिशास्त्र'की जिस समय श्रीमद्ने रचना की उस समय उन्होंने सिर्फ चार जीवोंको अधिकारी जानकर उसकी हस्तलिखित नकलें उनके ही उपयोगके लिए भेजी थीं क्योंकि उपशम और वैराग्यके द्वारा उनकी बुद्धिकी विपर्यासिता दूर हो चुकी थी। आत्माकी पहचानके लिए सत्यासत्यका मात्र शास्त्र-ज्ञान काममें नहीं आता। 'समाधि-शतक'में कहा है कि:

'शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद् भिन्नं यावत् तावन्न मोक्षभाक्।'

आत्मा देहसे भिन्न है, इस विषयमें सद्गुरुसे अच्छी तरहसे सुना हो, दूसरोंको सुनाता भी हो फिर भी जहाँ तक देहसे आत्मा भिन्न है ऐसी भावना नहीं करता वहाँ तक शुद्ध आत्माका अनुभव (मोक्ष) नहीं होता तथा मोक्षके योग्य भी नहीं होता।

जीव ऐसे सद्-असद्का विवेक कर सके तथा आत्माकी पहचान करनेके लिए उस ओर झुक सके और उसकी अनुभूति साक्षात् कर सके इस बातको लक्ष्यमें रखकर श्रीमद्ने अति सरलतासे सूत्रात्मक शैलीमें १४२ दोहोंमें जो सद्बोध दिया है, वह यथार्थमें चिरकाल मनन करने योग्य है।

मुक्तिमार्गके प्रवासी श्रीमद्को जिस आत्मस्वरूपका निरन्तर प्रगटरूपसे, वेदन था, उसे आबालवृद्ध सभी

समझ सकें ऐसी सरल प्रवाही भाषामें 'श्री आत्मसिद्धि-शास्त्र' द्वारा पद्यरूपमें प्रगट किया है।

ऐसे गूढ तत्त्वको सुन्दर पद्योंमें शब्दारूढ़ करके, सामान्य श्रेणीके मुमुक्षु जीव भी यथाशक्ति समझकर, अपनी आत्मोन्नति कर सकें ऐसी सरल परन्तु गंभीर प्रौढ भाषा द्वारा, आधुनिक युगमें किस प्रकारके शास्त्र बनाना चाहिए उसका यथार्थ आदर्श इस शास्त्रको रचकर श्रीमद्ने उपस्थित किया है।

तत्त्वज्ञानके महान प्रश्नोंको इतनी सरल भाषामें व्यक्त करना, सचमुचमें महाप्रज्ञाशालीका कार्य है। श्रीमद्के दूसरे सभी लेखोंसे 'आत्मसिद्धिशास्त्र'की रचना भिन्न ही मालूम पड़ती है। छोटे सरल शब्द-युक्त, नय या प्रमाणके अटपटे अनुमान अथवा खंडन-मंडनकी क्लिष्टतारहित, समस्त मुमुक्षुओंके योग्य, श्रेयस्कर सामग्रीसे समृद्ध यह ग्रन्थ श्रीमद्की आत्मोन्नतिकर साधनाका परिपाक समान है।

प्रथम चवालीस दोहोंमें प्रास्ताविक विवेचन है। उसमें आत्मज्ञानके सिवाय जन्ममरणके दुःख दूर नहीं होते यों कहकर, वर्तमानकालमें मोक्षमार्गको रोकनेवाले क्रियाजडत्व और शुष्कज्ञान इन दो दोषोंको दिखाकर उन दोषोंके लक्षणोंका कथन किया है। तत्पश्चात् उन दोनों दोषोंको दूर करनेका उपाय 'सद्गुरुचरणकी उपासना' बताकर, सद्गुरुके लक्षण और माहात्म्यका संक्षेपमें वर्णनकर, सद्गुरु या उनके समागमके अभावमें आत्माका निरूपण करनेवाले उत्तम शास्त्रोंके मध्यस्थ बुद्धिपूर्वक अभ्यास करनेकी सलाह दी है। इसके वाद आत्मज्ञानकी अभिलाषावालेको स्वच्छन्द

और मतार्थीपन दूर करना चाहिए, मोक्षमार्गमें स्वच्छन्द महान विघ्नरूप है तथा मतार्थीपन उसका ही एक रूप है यों प्रगट कर, सच्चे आत्मार्थीके लक्षणोंका वर्णन किया है।

तत्पश्चात् एक दोहेमें छ पदोंका नामनिर्देश आता है। और प्रत्येक पदमें शिष्यकी शंकाओंका सद्गुरु समाधान करते हैं। जैसे कि—'आत्मा है' इस पदके विषयमें शिष्य शंका करते हुए कहता है कि, 'जीव दिखाई नहीं देता, इस लिए वह नहीं है। अथवा देह ही आत्मा है।' इसके बाद सद्गुरु अनेक सरल युक्तियोंसे उस नास्तिकवादका खंडन करते हैं। उसी प्रकार आत्माके नित्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, मोक्ष है और मोक्षका उपाय है इन पदों पर भी शिष्य शंकायें करता है और गुरु उनका समाधान करते हैं।

उपसंहारमें, इन छ पदोंका विचार करनेसे तथा उनमें निःशंक होनेसे समकित प्राप्त होगा, ऐसा कहकर, मिथ्यात्व-रूपी महान रोगको दूर करनेके लिए सद्गुरुरूपी महावैद्यको खोजकर, उसकी आज्ञारूपी पथ्यका पालन कर, उनके बोधका विचार और ध्यानरूप औषधकी सलाह दी है। तथा 'यह काल विषम होनेसे मोक्ष प्राप्त न होगा' इत्यादि विचारोंका त्याग कर, सत्पुरुषार्थ करके परमार्थ साधनेकी प्रेरणा की है। अन्तमें, आत्माका पारमार्थिक स्वरूप विचारते हुए भी सद्-व्यवहाररूपी मोक्षके साधनोंके प्रति उपेक्षित न होनेकी चेतावनी दी है और विदित किया है कि जबतक वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक पारमार्थिक स्थितिकी बातें

करनेमें तथ्य नहीं है। इस लिए दया, शान्ति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्यादि गुणोंका सेवन करते-करते जागृत रहना ही योग्य है।

ऐसे गम्भीर विषयको श्रीमद्‌ने बहुत ही सरलतासे निरूपण किया है। परन्तु यह विषय दार्शनिक, तर्कप्रधान और जैन सम्प्रदायसिद्ध होनेसे, उसका रसास्वाद करनेके लिए जैन परिभाषा और जैन तत्त्वज्ञानके स्पष्ट संस्कार प्राप्त करना आवश्यक है। तो भी 'आत्मसिद्धिशास्त्र'के अनुशीलनके लिए सुगमता यह है कि श्री अम्बालालभाईने प्रत्येक पद्यका अर्थ गद्यमें दिया है, जो श्रीमद्‌की दृष्टि नीचे आ चुका है। तथा श्रीमद्‌ने स्वयं इस ग्रन्थके कुछ दोहोंके ऊपर विवेचन भिन्न-भिन्न समयमें मुमुक्षुओं पर लिखे गये पत्रोंमें भेजा था। इस सभी अमूल्य सामग्रीके कारण 'आत्मसिद्धिशास्त्र'के अध्ययन करनेमें सरलता हो जाती है।

प्रज्ञाचक्षु विद्वत्वर्य पंडित सुखलालजीने यथार्थ ही कहा है:

'जिस आयुमें और जितने अल्प समयमें श्रीमद्‌ने 'आत्म-सिद्धि'में स्वयं पचाये हुए ज्ञानको गूंथा है, जब मैं उसका विचार करता हूँ उस समय मेरा मस्तक भक्तिभावसे नम जाता है। इतना ही नहीं, परन्तु मुझे लगता है कि उनकी मुमुक्षुओंको दी हुई यह आध्यात्मिक भेंट तो सैकडों विद्वानों द्वारा दी गई साहित्यिक ग्रन्थराशिकी भेंटकी अपेक्षा विशेष कीमती है।'

इसी प्रकार श्रीमद् द्वारा लिखे गये अनेक पत्र, उनकी

लिखी हुई हाथ-नोंध आदिका अभ्यास करें तो श्रीमद्की विपुल अमृत प्रसादीका सहजमें ख्याल आ सकता है।

श्रीमद्के लेखोंकी एक असाधारणता यह है कि जिसका उन्होंने स्वयं अनुभव किया, वही लिखा है। इनके लेख अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर जीवनकी उत्कट अनुभूतियोंका निचोड़। उसमें कहीं भी कृत्रिमता देखनेको नहीं मिलती। दूसरों पर प्रभाव डालनेके लिए इन्होंने एक लकीर भी लिखी हो ऐसा जरा भी संभव कहीं नहीं दिखाई देता। आत्मनिमज्जन कर हृदयके गहरे सागरमेंसे वे सत्रूपी रत्नोंको बीनकर लानेवाले मरजीवाके समान थे। इससे ही उनके लेखोंमें सत्-अमृतत्व टपक रहा है, ऐसी प्रतीति पाठकको होती है। उनके लिखनेका कारण पाठकोंको अपने आत्मानन्दमें हिस्सेदार बनानेका था।

जिसे आत्मक्लेश दूर करना है, जो अपने कर्तव्यको जाननेके लिए उत्सुक है, जो श्रेयार्थी — मोक्षार्थी है, उसको श्रीमद् राजचन्द्रके अमृत प्रसादीरूप लेख अत्यन्त उपयोगी हो सकें, ऐसा अवश्य है।

अन्तमें, श्रीमद्के लेखोंकी महत्ता प्रदर्शित करनेवाला पंडितवर्य सुखलालजीका अभिप्राय* देना योग्य होगा।

'बंगाली, मराठी, हिन्दी और गुजराती आदि प्रान्तीय भाषामें, जिसमें गृहस्थ या त्यागी जैन विद्वान और विचारक वर्गकी लेखनप्रवृत्ति होती है और विशेष संभव है, उसमेंसे

* सं १९९२में श्रीमद् राजचन्द्र जयन्तीके समय अहमदावादमें पढ़नेके लिये तैयार किये गये पण्डितजीके निवन्धमेंसे।

प्रसिद्ध जैनाचार्य आत्मारामजीकी हिन्दी कृतियोंको कम करनेसे किसी भी भाषामें बीसवीं शताब्दीमें लिखी गई एक भी पुस्तक मैंने ऐसी नहीं देखी है कि जिसकी 'श्रीमद् राजचन्द्र'के लेखोंके साथ गम्भीरता, मध्यस्थता और मौलिकताकी दृष्टिसे अंश मात्र भी समानता की जा सके।

'इससे आधुनिक समस्त जैन साहित्यकी दृष्टिसे, अधिकतर जैन तत्त्वज्ञान और चारित्रविषयक गुजराती साहित्यकी दृष्टिसे श्रीमद्‌के लेखोंका अत्यन्त मूल्य है।

'अन्तिम तीन चार दशकोंसे जैन समाजमें नवीन प्रजाको नवीन शिक्षाके साथ धार्मिक और तत्त्वज्ञान सम्बन्धी जैन-शिक्षण दे सकें ऐसी पुस्तकोंकी चारों ओरसे निरन्तर माँग देखनेमें आई है। अनेक संस्थाओंने अपनी-अपनी शक्यता अनुसार ऐसी माँगकी पूर्तिके लिए कुछ न कुछ प्रयत्न किये हैं, तथा छोटी-बडी पुस्तकें प्रकाशित की हैं; परन्तु जिस समय निष्पक्षभावसे इन सबके विषयमें विचार करता हूँ, उस समय मुझे स्पष्ट लगता है कि ये सब प्रयत्न और लगभग यह सब साहित्य श्रीमद्‌के लेखोंके सामने नादान और कृत्रिम जैसे हैं।

'इनके लेखोंमेंसे ही अक्षर-अक्षर अमुक भाग चुनकर अधिकारीकी योग्यता और वयके अनुसार पाठ्यक्रम बना लिया जाये, कि जिसमें किसी भी प्रकारका खर्च, परिश्रम आदिका भार नहीं है, तो धार्मिक साहित्य विषयकी जैन समाजकी माँगको आज भी इनके लेखोंसे, अन्य पुस्तकोंकी अपेक्षा अच्छी तरह सन्तुष्ट कर सकते हैं। इसमें कुमारसे

लेकर प्रौढ़ उम्र तकके और प्राथमिक अभ्यासीसे लेकर महान चिन्तक तकके जिज्ञासुओंके लिए सामग्री विद्यमान है। अलबत्ता इस सामग्रीका सदुपयोग करनेके लिए असंकुचित और गुणग्राहक हृदय चाहिए।'

और साथ ही साथ गुजराती साहित्यके एक अग्रगण्य विचारक आचार्य श्री आनन्दशंकरभाई ध्रुव 'श्रीमद् राजचन्द्र'के सम्बन्धमें क्या कह गये हैं,* यह भी ध्यानमें लेने योग्य है:

'आजकल पढ़े-लिखोंमें ऐसी सनक सवार हुई है कि प्रत्येक महान लेखकके ग्रन्थोंको हमें बांच लेना चाहिए। खूब बांचना, खूब लिखना और खूब छपाना ऐसा रोग आजकल फट निकला है। परन्तु मैं उसे योग्य नहीं मानता।

'प्राचीन कालमें मात्र एक-दो ग्रन्थोंके वाचन और मननसे जो फल मिलता था वह आज सैकडों और हजारों ग्रन्थोंके वाचनसे नहीं मिलता। विविध महात्माओंके ग्रन्थोंमें विविध आदर्शोंको हम प्रत्यक्ष करते हैं और इन आदर्शोंका प्रभाव हमारे अन्त:करणके ऊपर स्थायीरूपसे नहीं रह सकता। प्रत्येक ग्रन्थकी अमुक एक दिशा होती है। ऐसी अनेक दिशाओंका प्रतिविम्ब हम अपने जीवनमें प्रतिबिम्बित कर सकें, यह असंभवित है।

* सं. १९७३की कार्तिकी पूर्णिमाके दिन वढ़वाण (सुरेन्द्रनगर) केम्पमें आचार्यश्री आनन्दशंकर ध्रुव द्वारा सभापतिके पदसे दिये हुअे व्याख्यानमेंसे।

'अंग्रेज विद्वानोंमें अनेकोंका एक निश्चित ग्रन्थकार या महात्माके प्रति असाधारण हृदयभाव होता है। वे अपने समस्त जीवनमें इस एक ही आदर्शको व्यवस्थितरूपसे विकसित करनेका प्रयत्न करते हैं। इससे उनको बहुत लाभ होता है। हम लोगोंको इस विषयका अनुकरण करना चाहिए, और हो सके तो एक ही महापुरुषके ग्रन्थको दृष्टिके सन्मुख रखकर उसका मनन और निदिध्यासन करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

'यद्यपि मैं किसी खास प्रकारका मताग्रहवाला नहीं हूँ, तो भी मधुकरभावसे जो कुछ ग्रहण करनेमें आये उसे मैं योग्य नहीं मानता।

'गुजरातके सार्वजनिक जीवनमें मेरा जो अल्पस्थान है उसे लक्ष्यमें लेकर और मेरे सिर जो जवाबदारी रही हुई है उसका विचार कर मुझे कहना चाहिए कि "श्रीमद् राजचन्द्र" ग्रन्थको आदर्शरूपमें रखनेमें आये तो उससे उनके उपासकोंको अत्यन्त लाभ हुए बिना नहीं रहेगा अर्थात् अवश्य लाभ होगा। इस ग्रन्थमें तत्त्वज्ञानके झरने बहते रहते हैं। यह ग्रन्थ किसी धर्मका विरोधी नहीं है, क्योंकि उसकी शैली बहुत ही गम्भीर प्रकारकी है। मैं इस ग्रन्थके वांचने और विचारनेकी सबसे विनती कर अपना बोलना—व्याख्यान समाप्त करता हूँ।'

१५

श्रीमद्की अन्तिम चर्या

'पंच विषयमां रागद्वेषविरहितता,
पंच प्रमादे न मळे मननो क्षोभ जो;
द्रव्य क्षेत्र ने काळ भाव प्रतिबन्ध वण,
विचरवुं उदयाधीन पण वीतलोभ जो.'*

अर्थ: पंच विषयोंमें राग-द्वेषका अभाव हो, और पंच प्रमाद और उनके कारण मनक्षोभ न हो। तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके प्रतिबन्ध बिना ही लोभ रहित होकर उदयके आधीन विहार करूँ।

भगवानने 'उत्तराध्ययन सूत्र'में गौतमसे कहा है कि, 'हे गौतम! मनुष्यकी आयु दर्भकी नोक पर पडे हुए

* पंच विषय = पाँच इन्द्रियोंके विषय
पंच प्रमाद = धर्मकी अनादरता, उन्माद, आलस, कषाय ये सभी प्रमादके लक्षण हैं (देखिये, मोक्षमाला पाठ-५०)
उदयाधीन = प्रारब्धकर्मके आधीन

जलके बिन्दुके समान है। जैसे उस बिन्दुको गिरते देर नहीं लगती, वैसे ही इस मनुष्यायुको जाते देर नहीं लगती।' इस लिए हे गौतम, 'समयं गोयम मा पमाए'—समय—अवसर पाकर प्रमाद न कर, मेषानुमेषमें जानेवाले कालके असंख्यातवें भागके समयके लिए भी प्रमाद न कर।

इस बोधको केन्द्रमें स्थापित कर श्रीमद् 'मोक्षमाला'में कहते हैं:

'अत्यन्त विचक्षण पुरुष संसारकी सर्व उपाधिका त्याग करके दिन-रात धर्ममें सावधान रहते हैं। एक पलका भी प्रमाद नहीं करते। विचक्षण पुरुष दिन-रातके थोडे भागको भी निरन्तर धर्मकर्तव्यमें व्यतीत करते हैं, और अवसर-अवसर पर धर्मकर्तव्य करते रहते हैं। परन्तु मूढ़ मनुष्य निद्रा, आहार, भोग-विलास और विकथा तथा रंग-रागमें आयु व्यतीत कर डालते हैं। इसके परिणाममें वे अधोगति प्राप्त करते हैं।

'जैसे बनें वैसे यत्ना और उपयोगसे धर्मको सिद्ध करना चाहिए। साठ घडीके अहोरात्रमें बीस घडी तो हम निद्रामें बिताते हैं। बाकीकी चालीस घडी उपाधि, गप-शप और इधर-उधर घूमनेमें बिताते हैं। इसकी अपेक्षा इस साठ घडीके समयमेंसे दो-चार घडी विशुद्ध धर्मकर्तव्य करनेके लिए यदि उपयोगमें लें, तो बन सके वैसा है। इसका परिणाम भी कितना सुन्दर आये?

'पल अमूल्य वस्तु है। चक्रवर्ती भी एक पल–प्राप्तिके लिए अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि यदि प्रदान करे तो भी वह

उसे नहीं प्राप्त कर सकता। एक पल व्यर्थ गुमानेसे एक भव खोने जैसा है। ऐसा तत्त्वदृष्टिसे सिद्ध है।'

मानो इस बोधको ही आत्मसात् करके श्रीमद् 'परम-पदप्राप्ति'के लिए प्रमादरहित होकर अहोरात्र झूझे थे। और अपने प्रसिद्ध पद्यमें इन्होंने जो गाया है, वही इनके जीवनमें मूर्तिमान देखनेको मिलता है:

'एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसन ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो.
घोर तपश्चर्यामां पण मनने ताप नहि,
सरस अन्ने नहि मनने प्रसन्नभाव जो;
रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो.'

अर्थात् मैं स्मशानमें अकेला विचरता होउँ, उस समय पर्वतादिकोंमें वाघ सिंहादि भयंकर पशु मिलें, उनके मिलने पर भी आसन भयसे कम्पित न हो, परन्तु अडोल रहे और मनमें भी किसी प्रकारका क्षोभ न हो अर्थात् भाग जानेकी वृत्ति न हो, तथा ऐसा मानूँ कि मुझे किसी परम इष्ट मित्रका संयोग हुआ है।

घोर तपश्चर्या करनेमें मनमें किसी प्रकारका उत्ताप न हो, स्वादिष्ट भोजनके मिलनेसे मनको प्रसन्नता न हो, तथा रज-कणसे लेकर वैमानिक देवोंकी ऋद्धि पर्यन्त सभीको एक पुद्गलरूप मानूँ।

इस प्रकार चारित्रमोहको जीतकर श्रीमद् सुदृढ़ निश्चय करते हैं:

'अन्त समय त्यां पूर्णस्वरूप वीतराग थई,
प्रगटावुं निज केवलज्ञाननिधान जो.'

अन्तमुहूर्तमें पूर्णरूपसे वीतराग स्वरूप होकर अपने केवल ज्ञानरूपी भंडारको प्रगट करूँ।

इसके लिए श्रीमद् सर्वसंगपरित्याग कर अप्रतिबद्ध-रूपसे विचरनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु अभी व्यावहारिक उपाधि कम नहीं हुई है, इससे जैसी चाहिए वैसी सुलभता नहीं दिखाई देती। इस विषयमें सं. १९४७के माह सुदीके पत्रमें श्रीमद् दिखते हैं:

'किसी भी विकट मार्गसे यदि परमात्मामें परम स्नेह होता हो तो भी उसे करना ही योग्य है। सरल मार्ग मिलने पर भी उपाधिके कारणसे तन्मय भक्ति नहीं रहती, और एक सरीखा स्नेह नहीं उभरता। इस कारण खेद रहता है। और बारम्बार वनवासकी इच्छा हुआ करती है। यद्यपि वैराग्य तो ऐसा रहा करता है कि घर और वनमें प्राय: करके आत्माको कोई भेद नहीं रहता, परन्तु उपाधिके प्रसंगके कारण उसमें उपयोग रखनेकी बारम्बार आवश्यकता रहा करती है, जिससे कि उस समय परम स्नेह पर आवरण लाना पड़ता है, और ऐसे परम स्नेह और अनन्य प्रेमभक्तिके आये विना देहत्याग करनेकी इच्छा नहीं होती।

'श्रीमद् भागवत्में गोपाँगनाकी जैसी प्रेमभक्तिका वर्णन किया है, ऐसी प्रेमभक्ति इस कलिकालमें प्राप्त होना कठिन

है। यद्यपि यह सामान्य लक्ष्य है, फिर भी कलिकालमें निश्चय मतिसे यही लगन लगे तो परमात्मा अनुग्रह करके शीघ्र यह भक्ति प्रदान करता है।

'श्रीमद् भागवत्में जड़भरतजीकी सुन्दर आख्यायिका दी है। यह दशा बारम्बार याद आती है और ऐसा उन्मत्तपना परमात्माको पानेका परम द्वार है। यह दशा विदेही थी। भरतजीको हरिणके संगसे जन्मकी वृद्धि हुई थी और उससे जड़भरतके भवमें वे असंग रहे थे। ऐसे ही कारणोंसे मुझे भी असंगताका बहुत ही स्मरण होता है और किसी समय तो ऐसा हो जाता है कि असंगताके बिना परम दुःख होता है। अन्त कालमें प्राणीको यम जितना दुःखदायक नहीं लगता हो, परन्तु हमें संग दुःख-दायक लगता है....

'"सत्-सत्" इसकी रटन है....अधिक क्या कहें? ईश्वरकी इच्छा ऐसी है और उसे प्रसन्न रखे बिना छुटकारा नहीं; नहीं तो ऐसी उपाधियुक्त दशामें न रहें और मनमाना करें; परम पीयूष और प्रेमभक्तिमय ही रहें। परन्तु प्रारब्धकर्म बलवान है।'

इस तरह श्रीमद्का चित्त असंगताकी ओर झुकता जाता है। फिर भी संप्राप्त व्यवहारोंको वे निष्कामभावसे अदा करनेकी शुभ निष्ठाको भी संभालते जाते हैं। स्वयं किस लक्ष्य पर पहुँचना है इसकी जागृति भी उनमें उतनी ही दृढ़तापूर्वक देखनेको मिलती है। उनका निश्चयबल भी इतना ही दृढ़ रहता है। फाल्गुन सुदी दसमको सं. १९४८के

पत्रमें श्रीमद् लिखते हैं:

'अनेकानेक ज्ञानीपुरुष हो गये हैं, उनमें हमारे जैसे उपाधिप्रसंग और उदासीन, अति उदासीन* चित्त–स्थितिवाले प्रायःप्रमाणमें बहुत कम हुए हैं। उपाधिप्रसंगके कारणसे आत्मा सम्बन्धी विचार अखंडरूपसे नहीं रह सकता, अथवा गौण रूपसे रहा करता है। वैसा होनेसे बहुत समय तक प्रपंचमें रहना पड़ता है। और उसमें तो अत्यन्त उदास–परिणाम हो जानेके कारण क्षणभर भी चित्त नहीं टिक सकता; इस कारण ज्ञानी सर्वसंगका परित्याग करके अप्रतिबद्धरूपसे विचरते हैं। 'सर्वसंग' शब्दका लक्ष्यार्थ यह है कि अखंडरूपसे आत्मध्यान या बोधको मुख्यतासे न रखने दे ऐसा संग। यह हमने संक्षेपमें लिखा है, और उस सर्वसंगपरित्यागको बाह्य–अभ्यन्तररूपसे भजा करते हैं।

'देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण वीतराग हो सकता है ऐसा हमारा निश्चल अनुभव है। क्यों कि हम भी निश्चयसे उसी स्थितिको पानेवाले हैं, ऐसा हमारा आत्मा अखंडरूपसे कहता है; और ऐसा ही है, जरूर ऐसा ही है। सम्पूर्ण वीतरागकी चरण-रज मस्तक पर हो, ऐसा रहा करता है। अत्यन्त कठिन ऐसी वीतरागता अत्यन्त आश्चर्यकारक है; फिर

* उदासीनताका अर्थ समझने योग्य है। उदासीनता अर्थात् समभाव, वैराग्य, शान्तता तथा मध्यस्थता।

श्रीमद्‌ने सं १९४५में लिखा है:

"सुखकी सहेली है अकेली उदासीनता;"

अध्यात्मनी जननी ते उदासीनता.

भी वह स्थिति प्राप्त होती है, सदेह प्राप्त होती है यह निश्चय है; प्राप्त करनेके लिए वही पूर्ण योग्य है, ऐसा निश्चय है। इस देहमें ऐसा हुए बिना हमारी उदासीनता मिटे ऐसा नहीं मालूम देता और वैसा होना संभवित है, अवश्य ऐसा ही है।'

इस स्थितिमें भी उपाधिका योग विशेष था। श्रीमद् चैत्र सुदी ६को सं. १९४९के पत्रमें विदित करते हैं:

'उपाधिका योग विशेष रहता है। जैसे-जैसे निवृत्तिके योगकी विशेष इच्छा हो आती है, वैसे-वैसे उपाधिकी प्राप्तिका योग विशेष दिखाई देता है। चारों ओरसे उपाधिका संकट है। कोई ऐसी बाजू इस समय मालूम नहीं पड़ती कि इसी समय ही इसमेंसे छूट कर चले जाना हो तो किसीके अपराधी न माने जायें। छूटनेका प्रयत्न करते हुए किसीके मुख्य अपराधमें आ जानेका स्पष्ट संभव दिखाई देता है। और यह वर्तमान अवस्था उपाधि रहित भावके लिए अत्यन्त योग्य है। प्रारब्धने इस व्यवस्थाका प्रबन्ध किया होगा।'

इस प्रकारसे चारों तरफ उपाधिकी ज्वाला जलती हो उस प्रसंगमें समाधि — आत्मस्थितिको सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इसका उपाय भी श्रीमद्को ज्ञात था। 'जैसे बने वैसे प्रभुभक्तिमें तत्पर रहना, मुझे मोक्षका यह धुरन्धर मार्ग लगा है। चाहे तो मनसे भी स्थिर होकर बैठ कर प्रभुभक्ति अवश्य करना योग्य है। इस समय तो मनकी स्थिरताका मुख्य उपाय प्रभुभक्तिको समझो।'

'जिसके द्वारा वैराग्यकी वृद्धि हो वह वाचन विशेषतासे रखना; मतमतान्तरका त्याग करना;....असत्संगादिमें उत्पन्न होती हुई रुचिको दूर करनेका बारम्बार विचार करना योग्य है।' (ज्येष्ठ, सं १९४८). और

किं बहुणा इह जह जह, रागदोषा लहुं विलिज्जंति।
तह तह पयट्ठिअव्वं, एसा आणा जिणिंदाणम्॥
(उपदेश रहस्य–यशोविजयजी)

'हम कितना कहें? जैसे-जैसे इस राग-द्वेषका विशेषतासे नाश हो उस-उस प्रकारसे आचरण करना चाहिए। भगवान् जिनेश्वर देवकी यही आज्ञा है।' (१९४८).

इस प्रकार धीरे-धीरे श्रीमद् सर्वसंगपरित्यागकी ओर प्रयाण करने लगे और वे आत्मविश्वासपूर्वक कहते हैं:

'दृढ़ विश्वाससे मानना कि यदि इसको व्यवहारका बन्धन उदयकालमें न होता तो अन्य कितने ही मनुष्योंको अपूर्व हितका देनेवाला होता। प्रवृत्ति है तो उसके लिए कुछ असमता नहीं है, परन्तु निवृत्ति होती तो अन्य जीवोंको मार्ग मिलनेका कारण होता। (१९४७)'.

पुनः श्रीमद्‌की एकान्तचर्याके * समयमें तथा श्रीमद्‌के समागममें आनेके लिए तत्पर होते हुए भक्तजन और मुमुक्षु-जनोंका प्रवाह देखकर श्रीमद्‌को लगता है कि लोग श्रेयार्थी मार्गमें गमन करनेके लिए उत्सुक हैं। श्रीमद् इस विषयमें

* देखिये प्रकरण–१२, १३.

लिखते हैं:

'छोटी उम्रमें मार्गका उद्धार करनेके सम्बन्धमें अभिलाषा रहती थी। उसके बाद ज्ञानदशा आने पर क्रमसे वह उपशम जैसी हो गई। परन्तु कोई कोई लोग परिचयमें आये उन्हें कुछ कुछ विशेषता भासनेसे कुछ मूल मार्ग पर लक्ष्य आया, और इस तरफ तो सैंकडो और हजारों मनुष्य समागममें आये। जिनमेंसे कुछ समझदार तथा उपदेशकके प्रति आस्थावाले ऐसे सौ-एक मनुष्य निकलेंगे। इस परसे ऐसा देखनेमें आया कि लोग पार होनेकी इच्छा-वाले अधिक हैं, परन्तु उन्हें वैसा संयोग नहीं मिलता।

'यदि सच्चे उपदेशक पुरुषका योग मिले तो बहुतसे जीव मूल–मार्ग प्राप्त कर सकते हैं, और दया आदिका विशेष प्रकाश हो सकता है। ऐसा मालूम होनेसे कुछ चित्तमें आता है कि यह कार्य कोई करे तो अच्छा। परन्तु दृष्टि फेरनेसे वैसा पुरुष ध्यानमें नहीं आता, इससे कुछ लिखनेवालेके प्रति ही दृष्टि आती है। परन्तु लिखनेवालेका जन्मसे ऐसा लक्ष्य है कि इस पदके समान एक भी जोखम-भरा पद नहीं है, और जहाँ तक उस कार्यकी अपनी यथायोग्यता न हो वहाँ तक उसकी इच्छा मात्र भी न करना और प्रायः अभी तक वैसा ही आचरण करनेमें आया है। मार्गका यत्किंचित् स्वरूप कइयोंको समझाया है, तो भी किसीको एक भी व्रत पच्चखाण तक नहीं दिया है। अथवा तुम मेरे शिष्य हो और हम तुम्हारे गुरु हैं, ऐसा भी क्रम प्रायः करके प्रदर्शित नहीं हुआ है।

श्रीमद् राजचन्द्र

वर्ष ३३ वाँ

वि. सं. १९५६

कहनेका हेतु यह है कि सर्वसंगपरित्याग होने पर उस कार्यकी प्रवृत्ति सहज स्वभावसे उदयमें आये तो करना योग्य है, ऐसी मात्र कल्पना है।

'हमें वास्तवमें उसका आग्रह नहीं है। मात्र अनुकम्पादि तथा ज्ञानप्रभाव रहता है, इससे कभी-कभी वह वृत्ति (भाव) उठती है, अथवा अल्पांशसे अंगमें वह वृत्ति है, फिर भी वह स्वाधीन है। हम विचारते हैं, यदि वैसा सर्वसंगपरित्यागादि हो तो हजारों मनुष्य मूल मार्गको प्राप्त करें और हजारों मनुष्य उस सन्मार्गकी आराधना करके सद्‌गतिको प्राप्त हों, ऐसा हमसे होना संभव है। हमारे संगमें त्याग करनेकी अनेक जीवोंकी वृत्ति हो ऐसा अंगमें त्याग है।

'धर्म स्थापित करनेका मान बड़ा है। उसकी स्पृहासे भी कभी ऐसी वृत्ति रहती होगी। परन्तु आत्माको अनेक वार कसकर देखने पर उसका होना आगेकी दशामें कम ही दिखाई देता है और यदि कुछ सत्तागत रहा होगा तो वह क्षीण होगा ऐसा अवश्य लगता है।

'तो भी मार्गका उपदेश न करना ऐसा आत्मनिश्चय रहता है। एक इसी बलवान कारणसे परिग्रहादिके त्याग करनेका विचार रहा करता है। मेरे मनमें यह रहता है कि यदि वेदोक्त धर्मका प्रकाश करना हो अथवा स्थापन करना हो तो मेरी दशा यथायोग्य है। परन्तु जिनोक्त धर्मका स्थापन करना हो तो अभी मेरी उतनी योग्यता नहीं है, तो भी विशेष योग्यता है, ऐसा लगता है।'

उस कारणसे जहाँ तक लोगोंमें बुद्धिभेद उत्पन्न हो, ऐसी बाह्य उपाधि स्वयंको है, वहाँ तक लोगोंमें धर्मोपदेशकके रूपमें बाहर न आना ऐसे निर्णय पर श्रीमद् आते हैं, क्योंकि उन्हें ऐसी प्रतीति हुई है कि, 'लोगोंको शंका पडे इस प्रकारके बाह्य-व्यवहारका उदय है। उस व्यवहारके साथ बलवान निर्ग्रन्थ पुरुष जैसा उपदेश करना वह मार्गका विरोध करने समान है।'

परन्तु भीतर भीतरमें श्रीमद्में निश्चल श्रद्धा तो स्थापित ही है कि:

'यथा हेतु जे चित्तनो, सत्य धर्मनो उद्धार रे;
थशे अवश्य आ देहथी, एम थयो निर्धार रे.
धन्य रे दिवस आ अहो!'

भावार्थ: कारणपूर्वक मनमें सत्य धर्मके उद्धार करनेका जो भाव है, वह इस देहसे अवश्य होगा—ऐसा निश्चय हो गया है। अहा! उस दिनको धन्य है।

परन्तु यह कार्य कितना कठिन है, इसका भी विचार श्रीमद्को सम्पूर्णतः है। इससे वे प्रार्थना भावसे लिखते है:

'हे नाथ! या तो धर्मोन्नति करने रूप इच्छाका सहज भावसे समाधान हो, ऐसा हो, अथवा तो वह इच्छा अवश्य कार्यरूप परिणत हो जाय।

'अवश्य कार्यरूप होना अत्यन्त कठिन दिखाई देता है। क्योंकि छोटी-छोटी बातोंमें बहुतसे मतभेद हैं और उनकी जडें बहुत गहरी गई हुई हैं। लोग मूलमार्गसे लाखों योजन दूर हैं, इतना ही नहीं परन्तु मूलमार्गकी उन्हें जिज्ञासा

उत्पन्न करानी हो तो भी बहुत कालका परिचय होने पर भी, उसका होना कठिन है; ऐसी उनकी दुराग्रह आदिसे जड़प्रधान दशा हो रही है।

अन्तमें धीरे-धीरे बाह्य व्यवहार और उपाधियोंकी पकड़ सहजरूपसे कम होने लगी। व्यापार करनेके दस वर्ष पूरे हुए थे। उनको लगा कि अब व्यापारका हेतु पूर्ण हुआ है। इस लिए अब संसारका त्याग कर समस्त समय आत्मोन्नति करनेवाले साधनोंमें व्यतीत करना। इसके लिए श्रीमद् तैयारी भी करने लगे।

उस समय उनके आसपास विशाल कुटुम्ब-परिवार फैला हुआ था। उनके माता-पिता विद्यमान थे; एक भाई और चार बहनें थीं, धर्मपत्नी थी, दो पुत्र और दो कन्यायें थीं। कुटुम्ब धन-वैभवसे सुखी था। सर्वत्र श्रीमद्‌की कीर्ति भी खूब फैल गई थी। ऐसी सुखमय स्थिति थी, फिर भी श्रीमद् विरक्त अवस्थाकी ओर ही प्रयाण कर रहे थे।

सं. १९५६में श्रीमद् स्त्री-पुत्रादि और लक्ष्मीका त्याग कर वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करते हैं। इस वर्ष वे दरमियान सम्पूर्ण संन्यास लेनेके लिए सर्व प्रकारकी बाह्य तथा अन्तरंग तैयारी भी करने लगे थे। परन्तु अचानक उनका शरीर इस अर्सेमें ही बिगड़ने लगा है। फिर भी श्रीमद् सर्वसंगपरित्याग करनेके अपने निर्णयमें उतने ही निश्चल रहते हैं।

इसी वर्षमें अहमदाबाद समीपके नरोडा गाँवमें, जहाँ मुनि थे वहाँ श्रीमद् पधारे थे। उस समय श्रीमद्‌ने श्री देवकरणजीसे कहा: 'अब हम बिलकुल असंग होना

चाहते हैं। किसीके परिचयमें आना अच्छा नहीं लगता। ऐसी संयम श्रेणीमें रहनेकी आत्माकी इच्छा है।'

श्री देवकरणजीने पूछा: 'ज्ञानी पुरुषकी (में) अनन्त दया है वह कहाँ जायगी?'

श्रीमद्ने कहा: 'अन्तमें यह भी छूट जाती है।'

उसके बाद श्रीमद् सं. १९५७में पुनः अहमदाबाद पधारे थे। वे आगाखानके बंगलेमें अपनी माता तथा धर्मपत्नी सहित रहे थे। उस समय मुनिजन भी चौमासा पूर्णकर अहमदाबाद आये थे।

श्रीमद्के पास हस्त-लिखित 'ज्ञानार्णव' और 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' नामके दिगम्बर जैन सम्प्रदायके दो विशाल ग्रन्थ थे। ये ग्रन्थ श्री लल्लुजी महाराज और श्री देव-करणजीको माता देवमाता और श्री झबकबाईके हाथसे दिलवाये थे।

उस समय साथके अन्य मुनियोंने विहारमें ग्रन्थोंके उठानेमें प्रमादवृत्ति ग्रहण की और वृत्ति संकुचित की, इन सब दोषोंको वे स्वयं जानकर, उनको दूर करें इस उद्देशसे श्रीमद्ने कहा:

'हे मुनियो, इस जीवने स्त्रीपुत्रादिका भार उठाया है। परन्तु सत्पुरुषकी या धर्मात्माओंकी प्रमाद छोड़कर सेवा-भक्ति नहीं की है।'

तत्पश्चात् श्रीमद्ने मुनिश्री लक्ष्मीचंदजीसे कहा: 'श्री देवकरणजीके पासका 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ वे जहाँ तक पढ़ें वहाँ तक विहारमें तुम वहन करना और 'श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा'

श्री लल्लुजी पढ़ें वहाँ तक विहारमें श्रीमोहनलालजी उठायें।'

बातचीत करते हुए बीचमें श्री देवकरणजीने पूछा: 'यह शरीर एकदम इतना कृश कैसे हो गया है?'

श्रीमद्ने कहा: 'हम शरीरके विरुद्धमें हैं। धरमपुरमें रहकर अपथ्याहार करनेसे ऐसा दिखाई देता है।'

श्रीमद्ने माता देवमाताको बारह व्रत संक्षेपमें लिख दिये और व्रत लेनेके लिए मुनियोंके पास अम्बालालभाईके साथ भेजा था। साथमें श्री झबकबाई भी थीं।

'श्री ज्ञानार्णव'मेंसे ब्रह्मचर्यका अधिकार सुनानेकी भी श्रीमद्ने सूचना की थी तदनुसार श्री देवकरणजीने माता तथा झबकबाईको वह अधिकार बांचकर सुनाया। इसके बाद श्री देवकरणजीने माता देवमातासे कहा:

'माताजी, अब आप आज्ञा दें, जिससे कृपालुदेव (श्रीमद्) सर्व विरति—महाव्रत धारण करें और अनेक जीवोंका उद्धार करें।'

माता श्री देवमाता बोलीं:

'मुझे बहुत मोह है, मेरा उनके ऊपरका मोह नहीं छूटता। उनका शरीर अच्छा होने पर मैं सर्व विरति ग्रहण करनेकी उन्हें आज्ञा दूँगी।'

उसी दिन श्रीमद् मुनियोंके समीप भावसारकी वाडीमें गये थे। वहाँ श्री मोहनलालजीने प्रश्न किया:

'मरणके समय आत्मप्रदेश किस अंगमेंसे निकलते होंगे?'

श्रीमद्ने दृष्टान्त देते हुए उत्तर दिया:

'नालीमें पानी बहता हो और नाली जहाँसे टूट जाती

है वहींसे पानी चला जाता है। हमने मरणके स्वरूपको बराबर समझ लिया है कि, इस प्रकारकी स्थितिको जगतके जीव मरण कहते हैं।'

मुनि भावसारकी वाडीसे विहार कर सरसपुरके उपाश्रयमें गये थे। रातमें बारह बजनेके बाद अम्बालालभाईको मुनियोंके पास जानेकी आज्ञा होनेसे वहाँ वे अकेले गये और मुनियोंसे बोले: 'आज मुझ पर परम गुरुने अपूर्व कृपा की है। मेरा जो प्रमाद था उसे आज नष्ट कर दिया है, जागृत किया है। मूलमार्ग कैसा होना चाहिए उस सम्बन्धमें व्यवहार और परमार्थका पोषण हो उस प्रकारके सद्व्यवहारका स्वरूप भी समझाया है।' इस तरह प्रभात तक बातें करके अम्बालालभाई वापिस श्रीमदके पास गये थे।

यहाँ पर एक प्रसंगका स्मरण करना आवश्यक है। ईडरके समागममें एक समय आम्रवृक्षके नीचे श्रीमद्ने मुनियोंसे कहा था:

'हे मुनियो, जीवकी वृत्ति तीव्रतामेंसे भी शिथिल हो जाती है। अम्बालालकी वृत्ति और दशा, प्रथम भक्ति और वैराग्यादिके कारणसे लब्धि प्रगट हो, वैसी थी, वह ऐसी कि तीन-चार घण्टे उपदेश किया हो, उस उपदेशको दूसरे या तीसरे दिन उसे यदि हम कहें तो वह सब हमारे शब्दोंमें ही लिख लाता। हालमें प्रमाद और लोभादि कारणसे वृत्ति शिथिल हो गई है, और वह दोष उसमें प्रगट होगा ऐसा हम बारह मास पहलेसे जानते थे।'

यह सुनकर श्री लल्लुजीके मनमें खेद उत्पन्न हुआ। उन्होंने श्रीमद्‌से पूछा: 'क्या यह दोष ज्योंका त्यों ही रहेगा?'

तब श्रीमद्‌ने कहा:

'मुनि, खेद मत करो। जिस प्रकार नदीके प्रवाहमें वहता हुआ पत्ता किसी जालेमें जाकर रुक जाता है, परन्तु पुनः तीव्र प्रवाहके वेगसे जालेसे अलग होकर महासमुद्रमें जा मिलता है उसी प्रकार उसका प्रमाद हमारे उपदेशसे दूर होगा और परमपदको पायेगा।'

अहमदाबादमें एक दिन श्रीमद्‌ने श्री देवकरणजीसे कहा:

'हमने स्त्री और लक्ष्मी दोनोंका त्याग किया है और सर्वसंगपरित्याग करनेकी माता आज्ञा देंगी, ऐसा लगता है।'

यह सुनकर श्री देवकरणजी आनन्दमें आकर बोल उठे: 'हमारे पूर्व पुण्यका उदय हुआ कि हमको निरन्तर आपकी सेवा, समागमका योग रहेगा।'

दूसरे दिन वढवाण जानेसे पहले आगाखानके बंगले पर श्री लल्लुजी और श्री देवकरणजीको बुलवाकर श्रीमद्‌ने अन्तिम सूचना देते हुए कहा:

'हममें और वीतरागमें भेद न मानना।'

अहमदाबादसे श्रीमद् वढ़वाण गये। वहाँ खंभातके भाई लल्लुभाई और नगीनभाई श्रीमद्‌के दर्शन करने आये। वहाँसे वापिस खंभात जाते समय श्रीमद्‌ने उनसे कहा था:

'फिर मिलें या न मिलें, समागम हो या न हो, परन्तु हमारे प्रति अखंड विश्वास रखना। हममें और श्री महावीर देवमें कुछ भी अन्तर नहीं है, केवल इस

कुर्तेका फेर है।'

वढवाण श्रीमद् रहे उस समय 'परमश्रुत प्रभावक मंडल'की योजना श्रीमद्ने प्रारम्भ की थी। सं. १९५६के भाद्रपद मासके एक पत्रमें इसका उल्लेख करते हुए श्रीमद् विदित करते हैं:

'परम सत् श्रुतके प्रचाररूप एक योजनाका विचार किया है। उसका प्रचार होकर परमार्थ मार्ग प्रकाशित होगा। "प्रज्ञावबोध" भाग "मोक्षमाला"के १०८ गुरिया यहाँ लिखाऊँगा।'

एक अच्छी रकमका चन्दा करके उसमेंसे महान आचार्योंके अप्रसिद्ध ग्रन्थोंको प्रकाशित कराकर तत्त्वविचारणाके लिए जनसमूहको अनुकूलता मिले, उस प्रकारके हेतुसे उस संस्थाकी स्थापना हुई थी।

लक्ष्मीका त्याग किये वाद श्रीमद् अत्यन्त सूक्ष्मतासे व्रत पालते थे। रेलगाडीका टिकट भी वे अपने पास नहीं रखते थे। 'परमश्रुत प्रभावक मंडल'के कारणसे धनादिकी बातमें कुछ करना पडे तो उसे वे अतिचार मानते थे।

परन्तु इसी अरसामें श्रीमद्की तबियत धीरे धीरे अधिकाधिक बिगडती ही गई। वायु परिवर्तनके लिए उन्हें समुद्र किनारे बम्बई, माटुंगा, शिव और वलसाड समीपके तीथल इत्यादि स्थानोंमें ले जाया गया था। वहाँसे बादमें वढ़वाण केंपमें लीमडीके निवासमें थोडे समय रहे थे।

यहाँ वढ़वाणमें श्रीमद्‌ने पद्मासन और कायोत्सर्ग मुद्राकी दो तसवीरें भाई सुखलालके कहनेसे खिचवायी थीं।

इसके बाद उन्हें राजकोट ले गये। यहाँ बहुतसे मुमुक्षु आते, परन्तु शरीर अत्यन्त अशक्त हो जानेके कारण डाक्टरोंने, श्रीमद्‌से कोई विशेष बात-चीत न करें इसकी खास निगरानी रखी थी।

यदि पत्र लिखाने पड़ते तो वे एक-दो लाइनका ही लिखाते थे। राजकोटमें लिखे गये आखिरी पत्र यहाँ दिये हैं:

१

सं. १९५७, फाल्गुन वदी १३, सोमवार

ॐ शरीरके सम्बन्धमें दूसरी बार आज अप्राकृत क्रम शुरू हुआ।

ज्ञानियोंका सनातन सन्मार्ग जयवन्त रहे।

२

सं. १९५७, चैत्र सुदी २, शुक्रवार

ॐ अनन्त शान्तमूर्ति चन्द्रप्रभ स्वामीको नमो नमः।

उदयमें आई हुई तथारूप वेदनीयका वेदन करनेमें हर्ष-शोक क्या? ॐ शान्तिः।

श्रीमद्‌के छोटे भाई श्री मनसुखभाई, श्री रेवाशंकरभाई, डॉ. प्राणजीवनदास, लीमडीवाले भाई मनसुखभाई आदि श्रीमद्‌की सेवामें उपस्थित थे। परन्तु इन सबकी प्रेम और हृदयपूर्ण सेवा और शुश्रूषा भी गमनोन्मुख आत्माको नहीं रोक सकी।

श्री मनसुखभाई रवजीभाईने श्रीमद्की अन्तिम अवस्थाका वर्णन एक पत्रमें निम्न प्रकारसे दिया है:

'मनदुःख — मैं अन्तकी पल पर्यन्त असावधान रहा। उस पवित्रात्माने टेढ़ी-मेढ़ी रीतिसे चेताया तो भी रागके कारण न समझ सका। अब स्मरण होता है कि उन्होंने मुझे एकबार चेतावनी दी थी।

'मैं अज्ञानी, अन्ध और मूर्ख उनकी वाणी समझ सकनेको असमर्थ था।

'देहत्यागके पहले दिन सायंकालको मुझे रेवाशंकरभाई, नरभेराम, इत्यादि भाइयोंसे उन्होंने कहा — 'तुम लोग निश्चिन्त रहना, यह आत्मा शाश्वत है, तुम शान्ति और समाधिरूपसे चलना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देह द्वारा कही जानेवाली थी, अब उसको कहनेका समय नहीं है। तुम सब पुरुषार्थ करते रहना।

'ऐसी स्पष्ट चेतावनी होने पर भी हम लोग रागके कारणसे नहीं चेत सके। हम तो इस प्रकारके भ्रममें रहे कि अशक्ति दिखाई देती है।

'रातके अढ़ाई बजे सर्दी हुई, उस समय उन्होंने कहा कि, "निश्चिन्त रहना; भाईका समाधि मरण है।"

'उपचारोंके करनेसे सर्दी कुछ कम हुई।

'पौनेआठ बजे सबेरे दूध दिया, वह उन्होंने पिया। बिलकुल सम्पूर्ण सुधमें मन, वचन और कायाके योग थे।

'पौनेनौ बजे कहा: "मनसुख, दुःखी न होना; माँको अच्छी तरह रखना; मैं अपने आत्मस्वरूपमें लीन होता हूँ।"

'साढ़ेसात बजे जिस बिछौने पर लेटे हुए थे उस परसे एक कोच पर ले जानेकी मुझे आज्ञा दी।

'मुझे लगा कि अशक्ति विशेष मालूम देती है, इस लिए फेरफार नहीं करना चाहिए। तब उन्होंने पुनः आज्ञा की कि त्वरासे फेरफार कर।

'इससे मैंने समाधिस्थ भावसे सो सकें ऐसे कोच पर व्यवस्था की, जिसके ऊपर वह पवित्र देह और आत्मा समाधिस्थ भावसे अलग हुए। लेश मात्र भी आत्माके निकलनेके चिन्ह न दिखाई दिये। ज्यों-ज्यों प्राण कम होने लगे वैसे-वैसे मुख-मुद्राकी कान्ति विशेषरूपसे प्रकाशित होने लगी।

'वढवाण केम्पमें जिस स्थितिमें खडे-खडे चित्र खिचवाया था उसी स्थितिमें कोच पर पाँच घण्टों तक समाधि रही, लघुशंका, दीर्घशंका, मुख या आँखसे पानीका निकलना या प्रस्वेद आदि कुछ भी पौनेआठ बजेसे दो बजे तक, प्राण निकल गये तो भी कुछ न मालूम दिया। दूध पीनेके एक घण्टे बाद हमेशा शौच करने जाना पडता था, उसके बदले आज कुछ भी नहीं था। जिस प्रकार यंत्रमें चाबी देकर उसे वश किया जाता है इस प्रकारसे किया था।

'ऐसे समाधिस्थ भावसे उस पवित्र आत्मा और देहका सम्बन्ध छूटा........।'

इस प्रकार सं. १९५७के चैत्र वदी पंचमी और मंगलवारके दोपहरके दो बजने पर श्रीमद् राजचन्द्रजी इस क्षेत्र और नाशवान शरीरका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त

हुए; परमपद पाया। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

'एह परमपद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में,
गजा वगर ने हाल मनोरथरूप जो;
तोपण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो,
प्रभु-आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो।'

अर्थ: मैंने इस परमपद प्राप्तिका ध्यान किया है। इस समय वह मेरी शक्तिसे बाहर है, मात्र मनोरथरूप है। तो भी राजचन्द्रके मनमें इस बातका निश्चय है कि प्रभुकी आज्ञासे अवश्य उस स्वरूपको पाऊँगा।

श्रीमद्के अन्तिम समयमें नवलचन्दभाई भी उपस्थित थे। उन्होंने अम्बालालको पत्र द्वारा लिखा था:

'निर्वाण समयकी मूर्ति अनुपम, चैतन्यव्यापी, शान्त, मनोहर और देखते हुए तृप्ति न हो ऐसी सुशोभित होती थी, ऐसा हम गुणानुरागियोंको तो लगे, परन्तु जो लोग दूसरे सम्बन्धसे उपस्थित थे उनको भी आश्चर्य और पूज्य-भाव उत्पन्न करती हुई मालूम देती थी। उस समयका अद्भुत स्वरूप वर्णन करनेका आत्मामें जो भाव आता है, वह लिखा नहीं जा सकता।'

जैसा आगे हम देख चुके हैं, उसी पत्रमें श्री मनसुख-भाई लिखते हैं:

'उन्होंने स्वयं बिलकुल वीतराग भावसे प्रवृत्ति की थी, अर्थात् किसी भी प्रकारसे उन्होंने अपनी मानकर प्रवृत्ति नहीं की थी। उदासीनताको ही योग्य माना था। अब हमलोगोंको किसका अवलम्बन रहा — मात्र उनके वचना-

मृतोंका। और उनके सद्‌वर्तनका अनुकरण करना, इसे ही मैं महान् अवलम्बन मानता हूँ।'

श्री अम्बालालभाई अपने हृदयको नीचेके पत्र द्वारा खाली करते हैं:

'विशाल अरण्यमें अति सुन्दर और शान्ति देनेवाला एक ही वृक्ष हो, उस वृक्षमें निःशंकासे, शान्ततासे और कोमलतासे सुखके आनन्दमें पक्षी मुसकराते हों, वह वृक्ष यदि अग्निसे प्रज्वलित हुआ हो तो उस समय उस वृक्षसे आनन्द पानेवाले पक्षियोंको कितना दुःख प्राप्त हो, कि जिसको एक क्षण भी शान्ति न हो। अहाहा! उस समयके दुःखका वर्णन करनेमें बडे-बडे कवीश्वर भी असमर्थ हैं; वैसा ही अपार दुःख भयंकर अटवी (वन) में इन पामर जीवोंको देकर हे प्रभु! तुम कहाँ चले गये?

'हे भारत-भूमि! क्या ऐसे, देह होने पर भी विदेह-रूपसे विचरते हुए प्रभुका भार तेरेसे सहन न हुआ? यदि वैसा ही था तो इस पामरका ही भार तुझे हल्का करना था; व्यर्थमें तूने अपनी पृथ्वी पर बोझारूप कर रखा है।

'हे महाविकराल काल, तुझे जरा भी दया न आई! छप्पनियाके महादुष्कालके समयमें तूने लाखों मनुष्योंका बलिदान लिया, तो भी तू तृप्त न हुआ; और उससे भी तेरी तृप्ति नहीं हुई तो इस देहका ही प्रथम तुझे भक्षण करना था; ऐसे परम शान्त प्रभुके जन्मान्तरका तूने क्यों वियोग कराया? तेरी निर्दयता और कठोरताका मेरे प्रति उपयोग करना था! तू क्या हँसमुख होकर मेरे सामने देखता है?

'हे शासनदेवी! तुम्हारा बल इस समय कालके सन्मुख कहाँ चला गया? तुम्हारे शासनकी उन्नतिकी सेवा करनेमें अग्रसरकी तरह साधनभूत ऐसे प्रभु थे; तुम त्रिकरणयोगसे जिन्हें नमस्कार कर सेवामें उपस्थित रहती थीं एसी तुम इस समय कौनसे सुखमें निमग्न हो गईं कि यह महाकाल क्या करने लगा है, उसका विचार ही न किया?

'है प्रभु! तुम्हारे बिना हम लोग किसके पास शिकायत करेंगे? जब तुमने ही निर्दयता दिखाई तब तो दयालु होगा ही कौन? हे प्रभु! तुम्हारी परम कृपा, अनन्त दया, करुणामय हृदय, कोमल वाणी, चित्तहारक शक्ति, वैराग्यकी तीव्रता, बोधबीजकी अपूर्वता, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्रकी सम्पूर्ण उज्ज्वलता, परमार्थलीला, अपार शान्ति, निष्कारण करुणा, निःस्वार्थ बोध, सत्संगकी अपूर्वता इत्यादि गुणोंका मैं क्या स्मरण करूँ? विद्वान कवि और राजेन्द्रदेव भी आपके गुणोंका स्तवन करनेमें असमर्थ हैं, तो इस लेखनीमें अल्प भी सामर्थ्य कहाँसे आये? आपके परमोत्कृष्ट गुणोंका स्मरण होनेसे मैं अपने शुद्ध अन्तःकरणसे त्रिकरणयोगसे आपके पवित्र चरणारविन्दोंमें अभिवन्दन करता हूँ। आपका योगबल, आपसे प्रकाशित हुए वचन और दिया बोधबीज हमारी रक्षा करे, यही सदा चाहता हूँ। आपने सदाके लिए यह स्मरणमाला दी, अब उसको विस्मृत नहीं करूँ।

'खेद, खेद और खेद, इसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं

सूझता। रो-रोकर रातदिन बिताता हूं। कुछ समझमें नहीं आता।'

यही स्थिति श्रीमद्के सभी भक्तजनोंकी तथा मुमुक्षु जनोंकी हुई थी। धर्मका महान अवलम्बन और पोषण देनेवाले कल्पवृक्षके समान श्रीमद् सद्गुरुका वियोग प्रत्येक मुमुक्षुके लिए असह्य ही था।

श्रीमद्की धर्मपत्नी झबकबाई अपना समय एकान्तमें, श्रीमद् द्वारा दी गई स्मरणकी मालामें व्यतीत करती थीं। बहुत ही थोडे समयमें उनका नश्वर शरीरसे सम्बन्ध छूट गया था।

श्रीमद्की माता देवमाताका हृदय अत्यन्त कोमल था। यदि कोई श्रीमद्की बात निकालता तो उनकी आंखें आंसुओंसे भर जाती थीं।

इस प्रकार परमकृपालु श्रीमद् राजचन्द्रजी सभीके अन्तःकरणमें व्याप गये थे। ऐसे महान् सद्गुरुका देह-विलय होनेसे सभीका हृदय आकुल-व्याकुल हुए विना रहे ही क्यों?

परन्तु यहाँ तो श्रीमद्ने बीस वर्षकी उम्रमें एक पत्रमें जो लिखा था, वह हम लोगोंके हृदयका आश्वासनरूप हो जाता है और श्रीमद्का प्रेरक सन्देश दे जाता है:

'आतमभावमें सब कुछ रखना।

'धर्मध्यानमें उपयोग रखना।

'जगतके किसी भी पदार्थ, सगे, कुटुम्बी, मित्रका कुछ भी हर्ष-शोक करना योग्य नहीं है।

'हे शासनदेवी! तुम्हारा बल इस समय कालके सन्मुख कहाँ चला गया? तुम्हारे शासनकी उन्नतिकी सेवा करनेमें अग्रसरकी तरह साधनभूत ऐसे प्रभु थे; तुम त्रिकरणयोगसे जिन्हें नमस्कार कर सेवामें उपस्थित रहती थीं एसी तुम इस समय कौनसे सुखमें निमग्न हो गई कि यह महाकाल क्या करने लगा है, उसका विचार ही न किया?

'हे प्रभु! तुम्हारे बिना हम लोग किसके पास शिकायत करेंगे? जब तुमने ही निर्दयता दिखाई तब तो दयालु होगा ही कौन? हे प्रभु! तुम्हारी परम कृपा, अनन्त दया, करुणामय हृदय, कोमल वाणी, चित्तहारक शक्ति, वैराग्यकी तीव्रता, बोधबीजकी अपूर्वता, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्-दर्शन और सम्यग्चारित्रकी सम्पूर्ण उज्ज्वलता, परमार्थलीला, अपार शान्ति, निष्कारण करुणा, निःस्वार्थ बोध, सत्संगकी अपूर्वता इत्यादि गुणोंका मैं क्या स्मरण करूँ? विद्वान कवि और राजेन्द्रदेव भी आपके गुणोंका स्तवन करनेमें असमर्थ हैं, तो इस लेखनीमें अल्प भी सामर्थ्य कहाँसे आये? आपके परमोत्कृष्ट गुणोंका स्मरण होनेसे मैं अपने शुद्ध अन्तःकरणसे त्रिकरणयोगसे आपके पवित्र चरणारविन्दोंमें अभिवन्दन करता हूँ। आपका योगबल, आपसे प्रकाशित हुए वचन और दिया बोधबीज हमारी रक्षा करे, यही सदा चाहता हूँ। आपने सदाके लिए यह स्मरणमाला दी, अब उसको विस्मृत नहीं करूँ।

'खेद, खेद और खेद, इसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं

१६

श्रीमद्के स्मारक

'श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल': सं. १९५६के पर्यूषण पर्वमें श्रीमद्की वढ़वाण केम्पमें स्थिति थी। उस समय उनकी शरीर-प्रकृति अस्वस्थ होनेसे अनेक गुणानुरागियोंका समूह वहाँ एकत्र हुआ था। इस अवसर पर श्रीमद्की ऐसी इच्छा हुई कि चिरकाल तक रह सके ऐसा कुछ ज्ञानप्रचारका कार्य हो तो अच्छा। इस इच्छाको एकत्रित हुए गुणानुरागी भाइयोंने स्वीकार किया और उस ही समय एक फंड कायम किया। थोडे ही समयमें उस फंडमें ९,००० रुपये आ गये। इस फंडकी योग्य व्यवस्था करनेके लिए वह रकम सबने मिलकर श्रीमद्को अर्पण की। श्रीमद्ने उसकी एक फेहरिस्त कराई और उसे बम्बई शा. रेवाशंकर जगजीवनके नामसे चलनेवाली पेढ़ी पर भिजवा दिया।

इस प्रकारसे इस मंडलकी स्थापना हुई। श्रीमद्की इच्छानुसार इसका नाम 'परमश्रुत प्रभावक मंडल' रखनेमें आया। परमश्रुत प्रभावक मंडल अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञानका उत्कर्ष करनेवाला मंडल—लोकसमूहमें उत्कृष्ट ज्ञानका

'परम शान्ति पदकी इच्छा करें यही हमारा सर्व सम्मत धर्म है, और यही इच्छा करते करते मिल जायगा। इस लिए निश्चिन्त रहो।

'मैं किसी गच्छमें नहीं, परन्तु आत्मामें हूँ, यह मत भूलना।'

और हमारा आत्मा परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजीके पवित्र चरणकमलोंमें भक्तिभावपूर्वक प्रणाम करते हुए प्रार्थना करता है:

'परम पुरुष प्रभु सद्‌गुरु, परम ज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम.'

अर्थ: परम पुरुष, सद्‌गुरु, परम ज्ञान और सुखके धाम-रूप जिस प्रभुने आत्मका ज्ञान कराया, उसे सदा प्रणाम है।

ॐ

१६

श्रीमद्के स्मारक

'श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल': सं. १९५६के पर्यूषण पर्वमें श्रीमद्की वढ़वाण केम्पमें स्थिति थी। उस समय उनकी शरीर-प्रकृति अस्वस्थ होनेसे अनेक गुणानुरागियोंका समूह वहाँ एकत्र हुआ था। इस अवसर पर श्रीमद्की ऐसी इच्छा हुई कि चिरकाल तक रह सके ऐसा कुछ ज्ञानप्रचारका कार्य हो तो अच्छा। इस इच्छाको एकत्रित हुए गुणानुरागी भाइयोंने स्वीकार किया और उस ही समय एक फंड कायम किया। थोडे ही समयमें उस फंडमें ९,००० रुपये आ गये। इस फंडकी योग्य व्यवस्था करनेके लिए वह रकम सबने मिलकर श्रीमद्को अर्पण की। श्रीमद्ने उसकी एक फेहरिस्त कराई और उसे बम्बई शा. रेवाशंकर जगजीवनके नामसे चलनेवाली पेढ़ी पर भिजवा दिया।

इस प्रकारसे इस मंडलकी स्थापना हुई। श्रीमद्की इच्छानुसार इसका नाम 'परमश्रुत प्रभावक मंडल' रखनेमें आया। परमश्रुत प्रभावक मंडल अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञानका उत्कर्ष करनेवाला मंडल — लोकसमूहमें उत्कृष्ट ज्ञानका

प्रचार करनेवाला मंडल।

'परमश्रुत प्रभावक मंडल'की योजना निश्चितरूप ले इससे पहले ही श्रीमद्का देहत्याग हो गया। उसके बाद जैन भंडारोंमेंसे मूल ग्रन्थोंको प्राप्त करके भाषान्तरका काम न हो सकनेके कारण, श्री वीतरागश्रुतके सिद्धान्तमेंके न्याय और तत्त्व विषयक ग्रन्थोंका प्रकाशन हिन्दीभाषाके अनुवाद-रूपमें द्विमासिक द्वारा प्रारम्भ हुआ। बादमें द्विमासिकके बदलेमें अमुक समयके बाद समस्त ग्रन्थको प्रगट करना शुरू हुआ। इस प्रकार श्रीमद्के स्मारकरूप प्रकाशित ग्रन्थोंका 'श्री राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला' नाम रखनेमें आया। स्व. रेवाशंकरभाई जगजीवनदासके मंत्रित्वमें इस संस्थाने अनेक उत्तम ग्रन्थों द्वारा जन-समाजमें अलभ्य ग्रन्थोंके अभ्यासकी वृद्धि की है।

श्रीमद्की विद्यमानतामें उन्हें अलग-अलग प्रसंगमें मुमुक्षु-भाई तथा मुनि आदिकी ओरसे भिन्न-भिन्न विषय सम्बन्धी पूछे गये प्रश्नोंके जवाबके पत्रोंका संग्रह, खंभात और अहमदाबादके मुमुक्षु भाईयों द्वारा किया हुआ तथा श्रीमद्की बनाई हुई भावनाबोध, मोक्षमाला, आत्मसिद्धि इत्यादि कृतियाँ आदि सामग्री एकत्रित करके तथा उसका संशोधन कराके 'श्रीमद् राजचन्द्र' नामका एक विशाल ग्रन्थ इस मंडलने छपाकर प्रसिद्ध किया है यह भी श्रीमद्का एक अद्भुत स्मारक ही है।

श्री सुबोध पाठशाला: श्री अम्बालालभाई मुमुक्षु उपयोगी पुस्तकें श्रीमद्की सूचना अनुसार मंगाकर रखते और श्रीमद्जी

सूचना करते तदनुसार जिसे जो योग्य हो उसे वे भेजते। जिसे खरीदनेकी इच्छा होती वह मूल्य देकर पुस्तकको रख लेता, नहीं तो अभ्यास कर वापिस भेज देता। इस प्रकार ज्ञानकी प्याऊरूप 'श्री सुबोध पाठशाला'की स्थापना हुई। वहाँ खंभात तथा आस-पासके मुमुक्षु आकर सद्ग्रन्थोंका अभ्यास करते, भक्ति करते, तथा सत्संगका लाभ प्राप्त करते। इस समय भी यह संस्था पुस्तकालय और भक्तिस्थानके तौर पर सत्संगका धामरूप बन गई है।

श्री निजाभ्यास मंडप: श्रीमद् खंभातके पास वडवामें निवृत्तिके लिए अनेक बार आकर रहे थे, उस तीर्थस्थलके स्मरणार्थ तथा सत्संगके लिए यह एकान्त उत्तम स्थल होनेसे एक सुन्दर मकान और मन्दिरकी अनुकूलतासहित 'श्री निजाभ्यास मंडप' नामक श्री पोपटलाल महोकमचन्द तथा उनके परिचित श्रीमद्के प्रशंसकोंने एक संस्था स्थापित की है, वह भी सत्संगका रमणीय स्थान है।

श्रीमद्जीने अपने मुखसे ऐसा कहा था कि सामनेके टीले पर श्री चन्द्रप्रभ प्रभुकी स्थापना होगी।

खंभातके स्टेशनसे एक मील दूर यह आश्रम सुशोभित हो रहा है। वड़के पास वावडी होनेके कारण इसे वडवा कहते हैं।

'श्री सनातन जैन धर्म—श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम': श्री लघुराज स्वामी मुनिचर्याके अनुसार अनेक स्थलोंमें कहीं भी स्थिर स्थिति किये विना विहार किया करते थे। धीरे-धीरे वृद्धावस्था और व्याधिके कारण चलनेकी शक्ति

घट जानेसे, अगासके पास सन्देसर गाँवमें अनेक भक्तोंका समूह भक्तिके लिए एकत्रित हुआ था। उनके आग्रहसे श्री लघुराज स्वामीने, कोई स्थल यदि श्रीमद्के स्मारकके रूपमें और भक्तिधामके तौर पर पसन्द पडे ऐसा मकान बनें तो बहुत समय तक रहनेका स्वीकार किया। इस प्रकार सं. १९७६की कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन सन्देसरमें इस आश्रमका संकल्प हुआ। सन्देसरके स्व. जीजीभाई नामके उदार सद्गृहस्थने आश्रमके लिए जमीन दी और अन्य गृहस्थोंने दानमें अच्छी रकम प्रदान की। इस तरह अगास स्टेशनके पासमें श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी स्थापना हुई।

इस आश्रममें मनोहर मन्दिर है, जिसमें नीचे श्वेताम्बर और ऊपर दिगम्बर जिन प्रतिमायें तथा भौंयरामें श्रीमद् राजचन्द्रकी संगमरमरकी ध्यानस्थ भव्य प्रतिमा बिराजमान है। इस प्रतिमाकी एक ओर प्रणव ॐ कारकी स्थापना है तथा दूसरी ओर श्रीमद्जीके चरणोंकी स्थापना है।

आश्रमके विशाल मुख्य द्वारके ऊपर 'क्षमा ही मोक्षका भव्य दरवाजा है' यह वाक्य बडे अक्षरोंसे अंकित किया हुआ है।

'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म-भवन': श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म ववाणियामें हुआ था। यह स्थान भी पवित्र माना जाता है। इससे श्री रवजीभाई पंचाणभाईकी मूल जगह तथा उसके आस-पासकी जगह पर 'श्रीमद् राजचन्द्र भवन' नामका भव्य भवन बनाया गया है।

इस जन्म-भवनमें जिनालय, गुरु मन्दिर, व्याख्यानगृह

तथा धर्मशालाका समावेश होता है।

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञान-प्रकाश मन्दिर': श्रीमद् राजचन्द्रके ववाणियामें सात वर्षकी आयुमें जिस बबूलके वृक्षके ऊपर जातिस्मरण ज्ञान हुआ था उस स्थान पर श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानप्रकाश मन्दिरकी स्थापना की है। उसमें सं. २००८की कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन श्रीमद्‌के चरणोंकी स्थापना की है।

'श्रीमद् राजचन्द्र विहार भवन': श्रीमद् राजचन्द्र एकान्तमें साधनाके लिए बारम्बार ईडरके पहाडोंमें विचरे थे वहाँ घंटिया पहाड़ पर एक बडी शिलाको श्रीमद्‌ने 'सिद्धशिला' कहा था। इस स्थान पर आज सुन्दर मन्दिर, अभ्यास-मंडप और धर्मशाला बनी हुई है। यह आत्मसाधनाके लिए एकान्त और शान्त स्थान है।

'श्री उत्तरसंडा-वनक्षेत्र': सं. १९५४में निरावरण खेतोंके एक मकानमें श्रीमद् एकान्त चर्याके लिए रहे थे। उस मकानको पुनः मन्दिर रूपमें निर्माण करके धर्मशालासहित एक सुन्दर स्थान बनाया गया है।

'श्रीमद् राजचन्द्र समाधि मन्दिर': श्रीमद् राजचन्द्रका अन्तिम अग्निसंस्कार राजकोटमें नदीके किनारे हुआ था। उस स्थान पर एक समाधि-मन्दिर बनाया गया है।

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभंडार': श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभंडार नामकी साहित्य प्रकाशनकी संस्थाका समावेश, अहमदाबादमें गूजरात विद्यापीठ द्वारा संचालित पुरातत्त्व मन्दिरमें किया है। परन्तु पुरातत्त्व मन्दिरके बन्द हो जानेसे इस समय

घट जानेसे, अगासके पास सन्देसर गाँवमें अनेक भक्तोंका समूह भक्तिके लिए एकत्रित हुआ था। उनके आग्रहसे श्री लघुराज स्वामीने, कोई स्थल यदि श्रीमद्के स्मारकके रूपमें और भक्तिधामके तौर पर पसन्द पडे ऐसा मकान बनें तो बहुत समय तक रहनेका स्वीकार किया। इस प्रकार सं. १९७६की कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन सन्देसरमें इस आश्रमका संकल्प हुआ। सन्देसरके स्व. जीजीभाई नामके उदार सद्गृहस्थने आश्रमके लिए जमीन दी और अन्य गृहस्थोंने दानमें अच्छी रकम प्रदान की। इस तरह अगास स्टेशनके पासमें श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी स्थापना हुई।

इस आश्रममें मनोहर मन्दिर है, जिसमें नीचे श्वेताम्बर और ऊपर दिगम्बर जिन प्रतिमायें तथा भौंयरामें श्रीमद् राजचन्द्रकी संगमरमरकी ध्यानस्थ भव्य प्रतिमा बिराजमान है। इस प्रतिमाकी एक ओर प्रणव ॐ कारकी स्थापना है तथा दूसरी ओर श्रीमद्जीके चरणोंकी स्थापना है।

आश्रमके विशाल मुख्य द्वारके ऊपर 'क्षमा ही मोक्षका भव्य दरवाजा है' यह वाक्य बडे अक्षरोंसे अंकित किया हुआ है।

'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म-भवन': श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म ववाणियामें हुआ था। यह स्थान भी पवित्र माना जाता है। इससे श्री रवजीभाई पंचाणभाईकी मूल जगह तथा उसके आस-पासकी जगह पर 'श्रीमद् राजचन्द्र भवन' नामका भव्य भवन बनाया गया है।

इस जन्म-भवनमें जिनालय, गुरु मन्दिर, व्याख्यानगृह

तथा धर्मशालाका समावेश होता है।

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञान-प्रकाश मन्दिर': श्रीमद् राजचन्द्रके ववाणियामें सात वर्षकी आयुमें जिस बबूलके वृक्षके ऊपर जातिस्मरण ज्ञान हुआ था उस स्थान पर श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानप्रकाश मन्दिरकी स्थापना की है। उसमें सं. २००८की कार्तिक सुदी पूर्णिमाके दिन श्रीमद्के चरणोंकी स्थापना की है।

'श्रीमद् राजचन्द्र विहार भवन': श्रीमद् राजचन्द्र एकान्तमें साधनाके लिए बारम्बार ईडरके पहाडोंमें विचरे थे वहाँ घंटिया पहाड़ पर एक बडी शिलाको श्रीमद्ने 'सिद्धशिला' कहा था। इस स्थान पर आज सुन्दर मन्दिर, अभ्यास-मंडप और धर्मशाला बनी हुई है। यह आत्मसाधनाके लिए एकान्त और शान्त स्थान है।

'श्री उत्तरसंडा–वनक्षेत्र': सं. १९५४में निरावरण खेतोंके एक मकानमें श्रीमद् एकान्त चर्याके लिए रहे थे। उस मकानको पुनः मन्दिर रूपमें निर्माण करके धर्मशालासहित एक सुन्दर स्थान बनाया गया है।

'श्रीमद् राजचन्द्र समाधि मन्दिर': श्रीमद् राजचन्द्रका अन्तिम अग्निसंस्कार राजकोटमें नदीके किनारे हुआ था। उस स्थान पर एक समाधि-मन्दिर बनाया गया है।

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभंडार': श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभंडार नामकी साहित्य प्रकाशनकी संस्थाका समावेश, अहमदाबादमें गूजरात विद्यापीठ द्वारा संचालित पुरातत्त्व मन्दिरमें किया है। परन्तु पुरातत्त्व मन्दिरके वन्द हो जानेसे इस समय

'श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानभंडार' गूजरात विद्यापीठ द्वारा उसका संचालन हो रहा है।

गूजरात विद्यापीठकी ओरसे 'श्री राजचन्द्र जयन्ती माला' प्रकाशित होती है। इसमें आज तक तत्त्वज्ञान सम्बन्धी छ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसमें श्रीमद् राजचन्द्र कृत 'आत्मसिद्धिशास्त्र' और 'श्रीमद् राजचन्द्रकी दृष्टान्त कथा' आदिका समावेश होता है।

श्रीमद्के भक्तिवान भाइयोंने अपने अपने गाँवोंमें सत्संग और भक्तिके लिए श्रीमद् राजचन्द्र मन्दिर बनाये हैं। इस प्रकार काविठा, नार, भादरण, सुणाव, सीमरडा, धामण, सडोदरा, आहोर, इन्दौर, अहमदाबाद, वढ़वाण, बोरसद, कलोल, वसो, नरोडा, ववाणिया, बेंग्लोर, वडाली, हम्पी और देवलाली आदि स्थानोंमें 'श्रीमद् राजचन्द्र मन्दिर'की स्थापना की गयी है।

श्रीमद् राजचन्द्रके आत्मानुभवी साहित्य और साधनासे आकर्षित भक्तोंका समुदाय बढ़ता जाता है वैसेवैसे उपासना--साधनाके स्थान, मन्दिर स्मारकके रूपमें बढ़ते जाते हैं।

इन सभी स्मारकोंकी अपेक्षा श्रीमद् राजचन्द्रजीका सबसे श्रेष्ठ स्मारक तो श्रीमद्के जीवन-सन्देशको ग्रहण कर यथाशक्ति प्रयत्न कर आत्म-साधनाका पुरुषार्थ करनेवाले सभी श्रीमद्के भक्त मुमुक्षु ही हैं। वे मुमुक्षु श्रीमद्की शिक्षाको आत्मसात् करके पवित्र तीर्थधामके समान बन सकते हैं, और उनके अन्तःकरणरूपी मन्दिरमें कृपालुदेवका सदा निवास है।

अन्तमें कृपालुदेवके पवित्र चरणकमलोंमें मस्तक नमाकर प्रार्थना करता हूँ।

शुं प्रभुचरण कने धरूँ, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन.'

मैं प्रभुके चरणकमलोंमें क्या रखूँ? सभी पदार्थ आत्मासे तुच्छ हैं, प्रभुने ही उस आत्माको प्रदान किया है; इससे प्रभुके चरणोंके आधीन होकर प्रवृत्ति करूँ यही प्रार्थना है।

आत्मसिद्धिशास्त्र दो. १२५

ॐ

परिशिष्ट–१

पत्र–संदर्भ

जीवन-साधनामें 'श्रीमद् राजचन्द्र' (गूजराती) बृहद ग्रन्थमेंसे लिए हुए लेखके पत्रांक

जीवन-साधना		श्रीमद् राजचन्द्र बृहद ग्रन्थ
पृष्ठ	पंक्ति	सं. २००७की आवृत्तिके पत्रांक
५	१० से १७	८९
६	पूरा पृष्ठ	८९
७	१ से १४	८९
७	१९ से २४	१७-मोक्षमाला पृ. ५७
८	१ से ५	,,
९	५ से १५	८९
१२	१८ से २५	९६० हाथ नोंध-१ (३२)
१३	१ से ५	,,
१३	१३ से १४	७७
१४	१३ से १७	४२४
१५	८ से १९	८९
१५	२५ से	१२८
१६	पूरा पृष्ठ	१२८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
१७	१ से २१	१२८
१८	७ से १०	८९
१९	७ से ८	८९
१९	१५ से २०	८९
२०	१ से २	८९
२०	४ से ७	८९
२१	२२ से २४	१२६
२२	१ से ३	१२६
२३	१५ से २०	८९
३४	१६ से २४	१८
३५	१ से ७	१८
४३	२ से ५	७१८-आत्मसिद्धि गा. ११७
४५	८ से १५	२१(७६); २१(८०); २१ (१२)६०(११); ६०(१२)
४७	४ से ९	१७ मो. मा. पाठ ८४
४७	१३ से २०	४०
४८	६ से १८	१७ मो. मा. पाठ ९९
४९	५ से १४	४९६
४९	२० से २१	६
४९	२२ से २४	८
५०	१ से ३	८
५०	४ से ५	२१ (१२)
५०	६ से १२	८४
५०	१३ से १५	१०८
५०	१६ से १७	११२
५०	१८ से १९	१०८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
५०	२० से २३	२१ (२६); २१(३४)
५०	२४	७
५१	१ से ४	७
५१	१५ से २४	१९(१० -८३ -८४ -२०१ -३१५ -६७८ -९० -२४५ -४०१ -४०९ -५४४ -५४३ -५४५ -५५९ -५६०)
५२	१ से १३	१९(७५ -१९० -३९५ -४२३ -४२४ -४३६ -४५८ -४५९ -५०५ -५०६ -६३८ -२८७ -३१८ -२९७ -२९८ -७० -७२ -७३ -६४ -१३९ -२३५)
५२	२१ से २२	१०१
५२	२३ से २४	१९(५४९ -४६)
५३	१ से २	१९(१३७ -१७३)
५३	१५ से २४	१७ मो. मा. पाठ ६४
५४	१ से २३	,,
५४	२४	१७ मो. मा. पाठ ६५
५५	१ से २०	१७ मो. मा. पाठ ६५
५६	१५ से १७	१०३
५७	१ से ३	१०३
५७	८ से २१	३०
५९	११ से २४	७८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
६०	१ से १३	७८
६०	१५ से २१	८२
६०	२४	११३
६१	पूरा पृष्ठ	११३
६२	१ से १०	११३
६२	१६ से २४	८२
६३	पूरा पृष्ठ	८२
६४	१ से ७	८२
६४	२१ से २४	९६० हाथ नोंध– १(३२)
६६	७ से १७	१३३
६७	१ से २०	१३३
६८	३ से ५	१५२
६९	१ से २	१५२
६९	५ से १८	३२
६९	२० से २४	९१
७०	१ से ७	९१
७०	१३ से १८	१५७ (११)
७०	२२ से २४	१८७
७१	पूरा पृष्ठ	१८७
७२	१ से ७	१८७
७२	९ से १३	१८९
७२	२० से २२	२०१
७३	४ से २४	२५५
७४	पूरा पृष्ठ	२५५
७५	१ से २१	२५५
७६	१ से १२	२५८

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
७७	३ से १०	९६० हाथ नोंध- १(३२)
७७	२२ से २३	७३८
७८	१ से २	७३८
७९	११ से १५	३१३
७९	१७	३२४
८०	१ से ८	३२४
८१	२३ से २४	३२९
८२	१ से २१	३२९
८२	२४	३९८
८३	१ से १२	३९८
८३	१५ से २४	४१५
८४	१ से २	४१५
८४	१३ से १४	८९
८४	२४	१५७ (१३)
८५	पूरा पृष्ठ	,,
८६	१ से १६	,,
९१	१७ से २४	७३८
९८	१ से ७	४००
९९	१५ से १७	४६५
१००	१	४६५
११९	१५ से १९	३७३
१२०	१ से ५	८६६
१२४	१५ से १९	११६
१२५	५ से ७	११७
१२५	११ से २४	११७
१२६	१ से ६	११७

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
१२६	७ से १९	११८
१२९	२० से २१	१३२
१२९	२४	१३३
१३०	१	१३३
१३३	२३ से २४	७८२
१३४	१ से १०	७८२
१३४	१३ से १५	७८६
१३५	६ से १३	९६० हाथ नोंध- २ (२०)
१४१	१० से २२	५००
१६४	१६ से २४	९५६ (३२)
१६५	१ से ४	९५६ (३२)
१७४	१४ से २२	९५६ (१०)
१७५	पूरा पृष्ठ	९५६ (१०)
१८३	१ से ५	९५६ (७)
१८३	९ से १५	९५६ (२४)
१८३	१९ से २४	१७ शि. प और मु. मुद्रा
१८४	१ से १०	,,
१८४	१७ से २०	१७ मो. मा. पृ- १
१८६	१४ से २४	१७ अुपोद्घात
१८७	१ से ३	१७ अुपोद्घात
१८७	५ से २४	१७ पाठ २१
१८८	१ से २२	१७ पाठ २१
२००	२ से ५	७३८
२००	१० से ११	१७ पाठ ५०
२०१	१ से २	,, ,,
२०१	८ से २४	,, ,,

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
२०२	१ से २	१७ पाठ ५०
२०२	७ से १४	७३८
२०३	३ से ४	७३८
२०३	१२ से २४	२१७
२०४	१ से १८	२१७
२०५	२ से १९	३३४
२०५	२३ से २४	७७
२०६	१ से ५	३३४
२०६	८ से १७	४३९
२०६	१८ से २४	३८०
२०७	१ से ४	३८२
२०७	५ से १०	४२०
२०७	१३ से १७	१७३
२०८	२ से २४	७०८
२०९	पूरा पृष्ठ	७०८
२१०	४ से ७	५८२
२१०	१० से १२	९६० हाथ नोंध– १(३२)
२१०	१८ से २४	७०९
२११	१ से ३	७०९
२१६	६ से ९	९५६ (२४)
२१७	११ से १९	९५२–९५३
२२०	२ से ५	७३८
२२३	२१ से २४	३७
२२४	१ से ५	३७
२२४	९ से १०	२६६
२३१	३ से ४	७१८–गाथा १२५

कुछ ग्रन्थादिके पत्रांक

श्री राजचन्द्र बृहद ग्रन्थ सं. २००७की (गूजराती) आवृत्तिके—

पृष्ठ	पंक्ति	पत्रांक
२०२	१ से २	१७ पाठ ५०
२०२	७ से १४	७३८
२०३	३ से ४	७३८
२०३	१२ से २४	२१७
२०४	१ से १८	२१७
२०५	२ से १९	३३४
२०५	२३ से २४	७७
२०६	१ से ५	३३४
२०६	८ से १७	४३९
२०६	१८ से २४	३८०
२०७	१ से ४	३८२
२०७	५ से १०	४२०
२०७	१३ से १७	१७३
२०८	२ से २४	७०८
२०९	पूरा पृष्ठ	७०८
२१०	४ से ७	५८२
२१०	१० से १२	९६० हाथ नोंध– १(३२)
२१०	१८ से २४	७०९
२११	१ से ३	७०९
२१६	६ से ९	९५६ (२४)
२१७	११ से १९	९५२–९५३
२२०	२ से ५	७३८
२२३	२१ से २४	३७
२२४	१ से ५	३७
२२४	९ से १०	२६६
२३१	३ से ४	७१८–गाथा १२५

कुछ ग्रन्थादिके पत्रांक

श्री राजचन्द्र बृहद ग्रन्थ सं. २००७की (गूजराती) आवृत्तिके—

परिशिष्ट–२

सूचि

शब्दार्थ

अंतरंग—भीतरी, अंतरका, अंदरका

अतिचार—जैन दर्शनके अनुसार दोप, जिसका प्रायश्चित्तसे निवारण किया जा सके

अनुप्रेक्षण—सूक्ष्म विचार

अनुसार—परिणाम

अन्यथा—दूसरा, अन्य, विपरीत

अपरिच्छेद रूपसे—समग्रतया

अभिष्ट—इच्छित, इष्ट

अवगाहन—गहरा अध्ययन

अवधान—अेक साथ अनेक कार्योंमें लक्ष्य रखकर स्मृति-शक्ति तथा अद्‌भुत अेकाग्रता बताना

अवधारना—अंतरमें अुतारना, धारण करना

अव्यावाध—अक्षय; जिसमें बाधाकी प्राप्ति न हो वैसा

असाता—असुख, दुःख

असाता वेदनीय—कर्मके फलरूप दुःखका भोगना

आगति—आना, आगमन

आगम—जैन दर्शनके ४५ मूल सूत्र-ग्रंथ

आत्मपरिणाम—जैन दर्शनमें हरअेक पदार्थ द्रव्य, गुण और पर्यायसे युक्त माना गया है। पर्याय यानी परिणति अर्थात् पदार्थमें होनेवाला और उसीमें समानेवाला परिवर्तन। पदार्थकी हर क्षण जो स्थिति होती है अुसे पर्याय, परिणति, परिणाम, भाव आदि कहते हैं। विशिष्ट-विशुद्ध अैसे आत्माके भाव-परिणामसे ध्यावन

आस्रव—आना; कर्म आएँ अैसा आत्माका भाव

अुदय कर्म—पूर्वजन्मोंमें किये -अुपार्जित हुअे कर्मोंकी

शब्दार्थ

अंतरंग—भीतरी, अंतरका, अंदरका

अतिचार—जैन दर्शनके अनुसार दोप, जिसका प्रायश्चित्तसे निवारण किया जा सके

अनुप्रेक्षण—सूक्ष्म विचार

अनुसार—परिणाम

अन्यथा—दूसरा, अन्य, विपरीत

अपरिच्छेद रूपसे—समग्रतया

अभिष्ट—इच्छित, इष्ट

अवगाहन—गहरा अध्ययन

अवधान—अेक साथ अनेक कार्योंमें लक्ष्य रखकर स्मृति-शक्ति तथा अद्‌भुत अेकाग्रता वताना

अवधारना—अंतरमें अुतारना, धारण करना

अव्यावाध—अक्षय; जिसमें वाधाकी प्राप्ति न हो वैसा

असाता—असुख, दुःख

असाता वेदनीय—कर्मके फलरूप दुःखका भोगना

आगति—आना, आगमन

आगम—जैन दर्शनके ४५ मूल सूत्र-ग्रंथ

आत्मपरिणाम—जैन दर्शनमें हरअेक पदार्थ द्रव्य, गुण और पर्यायसे युक्त माना गया है। पर्याय यानी परिणति अर्थात् पदार्थमें होनेवाला और उसीमें समानेवाला परिवर्तन। पदार्थकी हर क्षण जो स्थिति होती है अुसे पर्याय, परिणति, परिणाम, भाव आदि कहते हैं। विशिष्ट-विशुद्ध अैसे आत्माके भाव-परिणामसे व्यावन

आस्रव—आना; कर्म आएँ अैसा आत्माका भाव

अुदय कर्म—पूर्वजन्मोंमें किये-अुपार्जित हुअे कर्मोंकी

फल–प्राप्ति
अुद्योत – प्रकाश
अुपसर्ग—देव, मनुष्यादि अन्यकृत दुःखदायी प्रसंग
अुपालंभ—अुलहना, ताना
अुपाश्रय—साधु-साध्वियोंके लिअे ठहरनेका स्थान
अेकान्तिक—अेकपक्षीय मान्यता
कदाग्रह—दुराग्रह
कषाय—आत्माको दुःख दे अैसे राग, द्वेष, मोह और मायारूप मनके भाव
कायोत्सर्ग—शरीरकी ममता छोड़ आत्माके सम्मुख होना; आत्म-ध्यान धरना
क्रम—अनुक्रम
क्षयोपशम—शास्त्रादि समझ सकने योग्य बुद्धि या शक्ति
गच्छ—समुदाय
चुटकुला – तुक्का
जातिस्मरण—पूर्वभवोंका स्मरण
जुगुप्सा—घृणा, घिन
तथारूप वेदनीय—असाताका अनुभव; जैसी है वैसी वेदना
त्रिकरण योग—मन, वचन, काया इन तीनोंका योग
दुर्निमित्त—खराब निमित्त
दुषमकाल—कलियुग; कष्टमे धर्म-प्राप्ति हो अैसा काल; धर्मके निमित्तोंकी न्यूनताका काल
दूधपाक—खीर; दूध और चावलसे बना खाद्य
नय—अेक अपेक्षित दृष्टि, point of view
निराबाध—बाधा – विघ्न – पीडा रहित
निरुपाधिक—कर्मकी अुपाधिसे रहित
निर्ग्रंथ—रागद्वेषादि आंतरग्रंथियोंसे और परिग्रहादि बाहरी ग्रंथियोंसे मुक्त; सच्चे अर्थमें साधु
निर्जरा भाव—जिस भावनासे पूर्वके अुपार्जित कर्म निवृत्त हों
निहार—शौचादि क्रिया; मल-त्याग
परिसह—जैनोंमें बाईस परिसह—क्षुधा, तृषा आदि माने गये हैं। आत्माको अुलझनमें डालनेवाले कर्मके प्रसंग।
पुद्गल—अचेतन पदार्थ
पुनर्जन्मादि—पुनर्जन्म आदि परिणाम

प्रतिक्रमण—जैन क्रिया—किये गये दोषोंकी निवृत्ति हो इसके लिये पश्चात्तापकी क्रिया .

प्रतिबंध—अैसे सयोग जिनसे बंधन हो

प्रतिबद्धता—किसी भी निमित्तसे बंधन हो थैसी ममताकी वृत्ति-प्रवृत्ति

प्रमाण—सर्व अपेक्षायुक्त दृष्टि-समग्र दृष्टि

बाह्याभ्यंतर रहित—बाहर-भीतर दोनों रूपमें कर्म रहित

बीजज्ञान—अैसा वचन जो सम्यग् दर्शनका हेतुरूप-बीजरूप हो

बोधग्रंथ—अुपदेश ग्रंथ

बोधबीज—सम्यग् ज्ञान

भद्रिकता—सरलता

भव—जन्म, पुनर्जन्म

भव-स्थिति—देवादि योनिमें अुत्पत्तिके कालकी मर्यादा

भव-स्थिति पके तब—योनिमें भटकनेकी अवधि पूरी होनेका समय

भाव—परिणाम, गुण. पदार्थ

मतार्थी—मतका दुराग्रही

मार्ग—जैन धर्मानुसार मोक्ष-प्राप्तिका मार्ग

मार्ग प्रभावना—विश्वमें धर्म-मार्गका विस्तार हो अैसी प्रवृत्ति

मुहूर्त—दो घड़ीका समय (४८ मिनट)

यत्ना—आत्मलक्ष्यपूर्वक

राहस्यिक विश्राम—जीवनका मर्म—अंतर्भेद कहने योग्य व्यक्ति

लब्धि प्रगट—इच्छित-प्राप्ति हो अैसी शक्तियोंका प्राकट्य

लिंग देह—दस इंद्रिय, पाँच विषय और मन—इस रूपमें जीवनका सूक्ष्म शरीर

लोकसंज्ञा—लौकिक दृष्टिसे लोक-प्रवृत्तिमें आदर और श्रद्धा रखकर प्रवृत्ति करना

लोकालोकज्ञान—लोक और अलोकका ज्ञान। जैन दर्शनमें जड़, चेतन आदि छः द्रव्य माने गये हैं। जहाँ ये छः द्रव्य विद्यमान हैं वह लोक और जहाँ केवल अेक आकाश द्रव्य हि विद्यमान है वह अलोक। इन दोनोंका ज्ञान यानी संपूर्ण जगतका ज्ञान।

वास्तविक—यथार्थ

विकल्प —तर्क-वितर्क
वितिगिच्छा—घृणा, घिन
विदेही दशा—देह होते हुअे भी शुद्ध आत्मस्वरूपमय स्थितिमें रहनेकी दशा—जैसे श्रीमद् राजचंद्रजीकी दशा थी।
विपर्यासिता—विपरीतता
विषमात्मा—रागद्वेषयुक्त आत्मा
विहार—गमन, प्रवास
वीतराग—रागद्वेषरहित
वेदनीय कर्मका वेदन—साता-असाता रूप वेदनीय कर्मका वेदन यानी अनुभव
शासन—धर्मराज्य
श्रीमद्के अतिशय—श्रीमद्का प्रभाव, प्रभावक शक्ति
श्रुत—शास्त्र; भगवानके अुपदेशों-का—आगमका प्रकाशन
सत्वानुकंपा—प्राणीमात्र पर दया
समकित—आत्मज्ञान
समकिती—आत्मज्ञान जिसे हुआ है वह व्यक्ति
समाधि—आत्म-स्वभावकी स्थिति
समाहित—स्थितप्रज्ञ
सम्यक्त्व—यथार्थ आत्मदर्शन
सर्वविरति —पापकर्मोंसे सब तरहसे निवृत्ति
साता वेदनीय—कर्मके फलरूप सुखका भोगना
सामायिक—अेक जैन क्रिया—दो घटिकाओं तक समता भावमें रहना और वाचन मनन आदि करना
स्थिति—मुकाम
स्याद्वाद मत—सापेक्षवाद, अनेक गुणोंसे युक्त पदार्थको यथार्थ-रूपसे कहनेवाला; जैनमत

शुद्धिपत्रक

प्रस्तावना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१६	नके	अुनके
१५	४	ये	यह
१५	१५	अहापोहमें	अुहापोहमें

पुस्तक पृष्ठ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	आत्म साधना	आत्म-साधना
२	११	शराकी	सराकी
३	७	आडतिया	आढतिया
४	३	पूर्णिमाकी	पूर्णिमाका
६	१९	आती थी	आती थीं
७	२४	मरा	भरा
१०	२२	काट खाया	काटा
१८	७	निरपराधी	निरपराध
२०	१०	विद्यार्थीयोंका	विद्यार्थियोंका
२०	१२	,,	,,
२३	१४	वांचन	वाचन
३२	१५	उस समयके जानकारी, अनुसार	उस समय, जानकारीके अनुसार
३७	५	गे।	गये।
४०	१४	काट खाया	काटा
४६	१५	ढांकनेकी	ढाँकनेकी

शुद्धिपत्रक

प्रस्तावना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१६	नके	अुनके
१५	४	ये	यह
१५	१५	अहापोहमें	अुहापोहमें

पुस्तक पृष्ठ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	आतम साधना	आत्म-साधना
२	११	शराकी	सराकी
३	७	आडतिया	आढतिया
४	३	पूर्णिमाकी	पूर्णिमाका
६	१९	आती थी	आती थीं
७	२४	मरा	भरा
१०	२२	काट खाया	काटा
१८	७	निरपराधी	निरपराध
२०	१०	विद्यार्थीयोंका	विद्यार्थियोंका
२०	१२	,,	,,
२३	१४	वांचन	वाचन
३२	१५	उस समयके जानकारी, अनुसार	उस समय, जानकारीके अनुसार
३७	५	गे।	गये।
४०	१४	काट खाया	काटा
४६	१५	ढांकनेकी	ढँकनेकी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	५	जव तक	जहाँ तक
६०	९	मेरी	मुझे
६१	१७	इसे	उसे
६३	२२	ओर	और
७४	१	शकता	सकता
७४	५	हमारे जैसे	हमसे सन्मुख ऐसे सत्संगी
७४	२१	जिसमें	जिसे
७८	४	सम्बन्धसे	संबंधके
७९	५	आन्तर	अंतर
८०	३	हौता	होता
८४	२४	तेरा जो होना	तेरा जो कुछ भी होता
९०	२	'मुक्तानद 'का	'मुक्तानंद 'के
९४	४	स्वाभाविक	स्वाभाविक
१०१	१९	परमवोधका	परमबोधको
१०२	९	कुछ दिखाई	कुछ न दिखाई दे
१०९	९	पंचा	छोटी धोती
१११	१०	प्रेमसे करें	प्रेमसे आराधन करें
१११	२२	ककियाससुर	चचियाससुर
११४	१	धून	धुन
१२९	१६	इस	यह
१२९	२३	यह	इस
१३०	७	सौभाग्यभाईने	सौभाग्यभाईको
१३०	८	उपाधिसेदूर	उपाधिसे दूर
१३०	१०	विचारका भाव	विचारनेके भाव
१४१	१६	उपदेश वोध है	उपदेश-बोध है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४२	१०	हों	हो
१४५	५	श्रीमद् अंबालाल	श्रीमद्, अंबालाल
१४७	२३	आदि भाई	और दूसरे
१५६	२३	खिच	खिंच
१६५	२१	कौनसी	कौनसा
१९०	१५	काली (कृष्ण) चौदस	(आश्विन) काली (कृष्ण) चौदस
१९३	३	पद्योंमे	पद्यमें
१९५	१३	इस	यह
२०३	११	दिखते हैं	लिखते हैं
२०४	२१	स्वयं	अपनेको
२११	१७	वे दरमियान	दरमियान वे
२१६	१९	अरसामें	अरसेमें
२१७	२	खिचवायी	खिंचवायी
२१८	९	देहत्यागके पहले दिन	देहत्यागके अगले दिन
२१८	९	मुझे	मुझसे
२१९	९	चिन्ह्	चिह्न
२२०	१३	सुशोभित होती थी	शुशोभित थी
२२१	६	नि:शंकासे	नि:शंकतासे
२२१	९	प्राप्त हो,	प्राप्त हो ?
२२१	,,	कि जिसको एक क्षण	अरेरे! उनको एक क्षण
२२२	८	है प्रभु !	हे प्रभु !